सुविख्यात सांसद
मोनोग्राफ सीरीज

डा० राजेन्द्र प्रसाद

लोक सभा सचिवालय
नई दिल्ली
1990

सुविख्यात सांसद
मोनोग्राफ सीरीज

डा० राजेन्द्र प्रसाद

लोक सभा सचिवालय
नई दिल्ली
1990

लो० स० स० (स० शो० सू० से०-एल सी)/सु० सां० मो०/7

© लोक सभा सचिवालय, 1990

दिसम्बर, 1990

मूल्यः 30 रुपये

लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन संबंधी नियम (सातवां संस्करण) के नियम 382 के अधीन प्रकाशित तथा प्रबंधक, फोटो-लिथो विंग, भारत सरकार मुद्रणालय, मिन्टो रोड, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

यह एक अच्छी बात है कि भारतीय संसदीय ग्रुप ने इस वर्ष के आरम्भ में देश के सुविख्यात सांसदों की वर्षगांठ मनाने का निर्णय किया, ताकि देश के संसदीय जीवन और राजनीति के क्षेत्र में उन सांसदों के योगदान को स्मरण किया जा सके और उसे लेखनीबद्ध किया जा सके। इस क्रियाकलाप के एक अंग के रूप में मार्च, 1990 से "सुविख्यात सांसद मोनोग्राफ सीरीज" के नाम से एक मोनोग्राफ श्रृंखला प्रारम्भ की गई है जिसके अन्तर्गत सबसे पहले डा० राम मनोहर लोहिया पर मोनोग्राफ प्रकाशित किया गया था। तत्पश्चात डा० लंका सुन्दरम, डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी, पंडित नीलकंठ दास, श्री पनमपिल्ली गोविन्द मैनन और श्री भूपेश गुप्त की वर्षगांठ के अवसरों पर मोनोग्राफ प्रकाशित किए गए हैं।

वर्तमान मोनोग्राफ — जो इस श्रृंखला का सातवां मोनोग्राफ है—डा० राजेन्द्र प्रसाद की सेवाओं और उनके योगदान को स्मरण करने का एक छोटा सा प्रयास है। डा० राजेन्द्र प्रसाद ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के तीन बार अध्यक्ष रह कर, संविधान सभा के अध्यक्ष के रूप में और अन्ततः तेरह वर्ष की लम्बी अवधि तक हमारे गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति के रूप में इस देश की नियति को दिशा प्रदान की।

इस ग्रंथ के तीन भाग हैं। भाग-एक में भारत के प्रथम राष्ट्रपति के घटनापूर्ण जीवन की कुछ झलकियों का उल्लेख किया गया है। भाग-दो में उनके समकालीन और घनिष्ठ सहयोगियों तथा वर्तमान तथा भूतपूर्व सांसदों, जिनमें से कुछेक को डा० राजेन्द्र प्रसाद को निकट से देखने का अवसर प्राप्त हुआ था, द्वारा लिखे गए 20 लेख सम्मिलित हैं। भाग-तीन में डा० राजेन्द्र प्रसाद द्वारा संविधान सभा में, जिसका उन्हें अध्यक्ष होने का सम्मान प्राप्त हुआ था, दिए गए कुछ चुनींदा भाषणों से उद्धरण सम्मिलित किए गए हैं।

उनकी वर्षगांठ के अवसर पर हम डा० राजेन्द्र प्रसाद की स्मृति में अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं और आशा करते हैं कि इस मोनोग्राफ को उपयोगी एवं रुचिकर पाया जाएगा।

रवि राय
अध्यक्ष, लोक सभा
और
प्रेसीडेंट, भारतीय संसदीय ग्रुप

नई दिल्ली;
दिसम्बर, 1990

विषय सूची

प्राक्कथन

भाग एक

उनका जीवन

1

डा० राजेन्द्र प्रसाद
जीवन वृत्त
(3)

भाग दो

लेख

2

राष्ट्र निर्माताः राजेन्द्र बाबू
डा० शंकर दयाल शर्मा
(19)

3

प्रथम राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद को श्रद्धांजलि
प्रोफेसर एन० जी० रंगा
(23)

4

मानवरत्नः डा० राजेन्द्र प्रसाद
एस० निजलिंगप्पा
(26)

5

राजन बाबू
डा० बलराम जाखड़
(31)

6
देशरत्न डा० राजेन्द्र प्रसादः सच्चाई और सादगी के विरल साक्ष्य
भागवत झा आजाद
(37)

7
महान देश के महान राष्ट्रपति
आर० रामानाथन चेत्तियार
(40)

8
डा० राजेन्द्र प्रसादः उनका बचपन और ग्रामीण जीवन
वाल्मीकि चौधरी
(42)

9
हमारे प्रथम राष्ट्रपतिः डा० राजेन्द्र प्रसाद
एस० डब्ल्यू० धाबे
(53)

10
डा० राजेन्द्र प्रसादः भारत के प्रथम राष्ट्रपति के रूप में उनकी भूमिका
प्रोफेसर बलराज मधोक
(59)

11
राजेन्द्र प्रसादः एक सर्वगुण सम्पन्न राष्ट्रपति
प्रोफेसर पी० जी० मावलंकर
(64)

12
डा० राजेन्द्र प्रसादः एक विशिष्ट व्यक्तित्व
डा० सुशीला नायर
(72)

13
भारत रत्नः डा० राजेन्द्र प्रसाद
रामलाल राही
(82)

14

डा० राजेन्द्र प्रसादः हमारी संस्कृति के एक प्रतीक
चौधरी रणवीर सिंह
(86)

15

राजन बाबूः कुछ झलकियां
चौधरी रणधीर सिंह
(90)

16

डा० राजेन्द्र प्रसादः भारत के राष्ट्रपति के रूप में
सोमनाथ रथ
(93)

17

डा० राजेन्द्र प्रसादः मेरी दृष्टि में
बीरेन राय
(97)

18

डा० राजेन्द्र प्रसादः एक महान व्यक्तित्व
प्रोफेसर राजा राम शास्त्री
(99)

19

भारतीय राजनीति के अर्द्धनारीश्वर
प्रोफेसर सिद्धेश्वर प्रसाद
(102)

20

राजन बाबूः महान एवं विनम्र
सत्येन्द्र नारायण सिंह
(113)

21

डा० राजेन्द्र प्रसादः जीवन, विचारधारा और कृतित्व
डा० सवाई सिंह सिसोदिया
(117)

भाग तीन
उनके विचार

संविधान सभा/संसद में डा० राजेन्द्र प्रसाद द्वारा दिए गए कुछ चुनिदा भाषणों में से उद्धरण

22

संविधान सभा के सभापति के रूप में निर्वाचित होने पर
(125)

23

स्वाधीनता की पावन बेला
(129)

24

नवोदित राष्ट्र को आह्वान
(132)

25

महात्मा गांधी के चित्र का अनावरण
(137)

26

संविधान के मसौदे पर विचार करने की प्रक्रिया
(139)

27

संविधान सभा एवं संविधान
(143)

28

अन्तरिम राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचित होने पर
(160)

29

संसद् सदस्यों के समक्ष प्रथम अभिभाषण
(162)

भाग एक

जीवन वृत्त

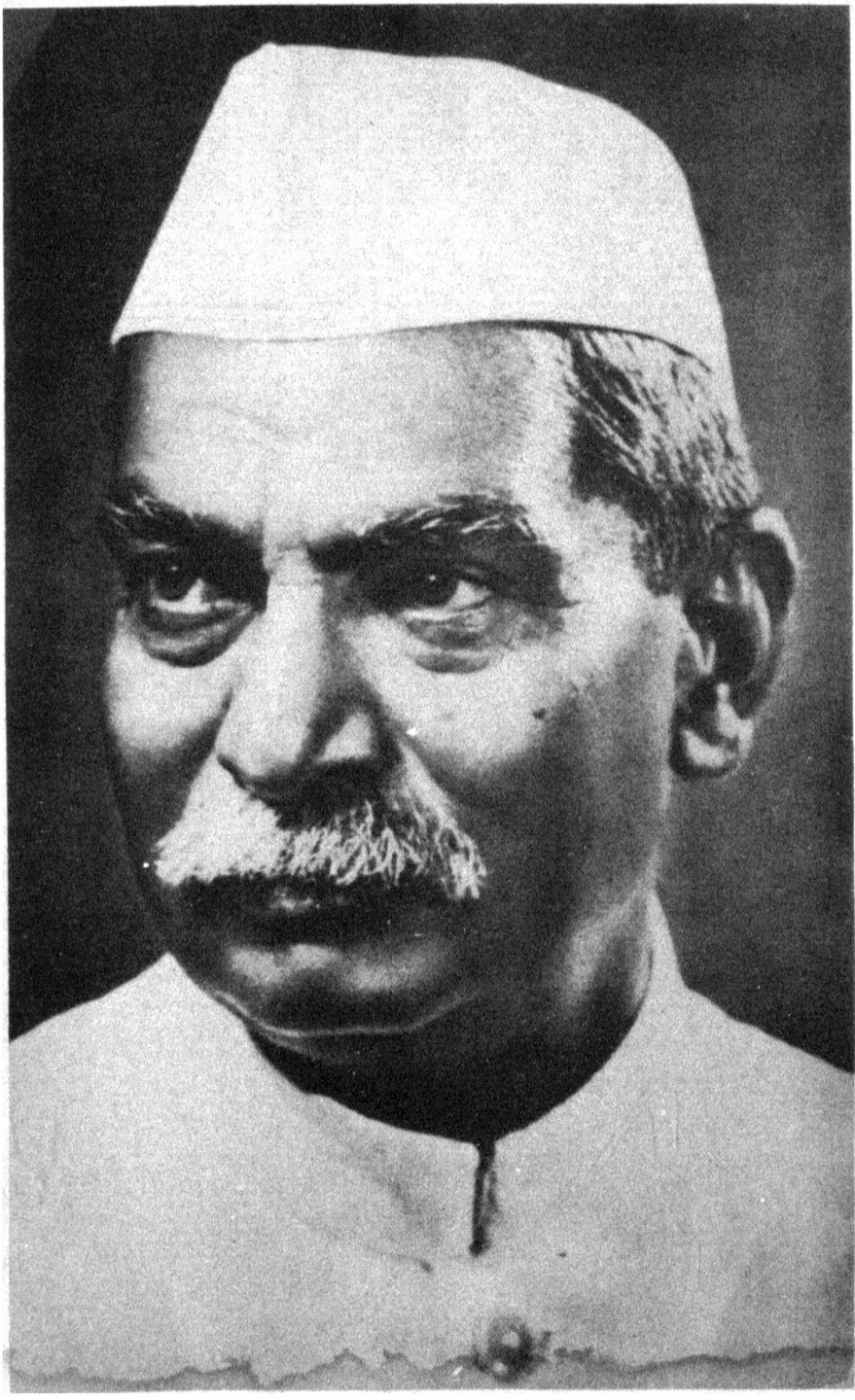

1

डा० राजेन्द्र प्रसाद : जीवनवृत्त

डा० राजेन्द्र प्रसाद आधुनिक भारत के प्रमुख निर्माताओं में से एक हैं। वह एक अग्रगण्य स्वतंत्रता सेनानी, एक प्रख्यात विधिवेत्ता, एक वाकपटु सांसद, एक सुयोग्य प्रशासक, एक श्रेष्ठ राजनेता होने के साथ-साथ एक महान मानवतावादी व्यक्ति थे। महात्मा गांधी के पक्के अनुयायी और विश्वासपात्र होने के साथ-साथ वे भारतीय संस्कृति की सभी उत्तम विशेषताओं से युक्त थे। संविधान सभा के अध्यक्ष तथा तत्पश्चात लगातार दो पदावधियों तक देश के शीर्षस्थ पद पर आसीन रहकर राष्ट्रपति के रूप में उन्होंने राष्ट्र के भाग्यनिर्माण में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और हमारे राष्ट्रीय जीवन तथा प्रशासन व्यवस्था पर अपनी अमिट छाप छोड़ी।

अपने मित्रों तथा प्रशंसकों द्वारा प्रेम से "राजन बाबू" कहे जाने वाले डा० राजेन्द्र प्रसाद का जन्म भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से एक वर्ष पूर्व 3 दिसम्बर, 1884 को बिहार के सारन जिले के एक दूरस्थ गांव में हुआ था। अन्त में वह इसी संगठन अर्थात् भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के एक बार नहीं, अपितु तीन बार अध्यक्ष बने। उनके पिता, महादेव सहाय और माता, कमलेश्वरी देवी का जीवन बहुत सरल, शुद्ध और समर्पित था। यद्यपि उनके परिवार के पास पर्याप्त भू-सम्पदा थी, किन्तु उनके परिवार वालों के रहन-सहन में दिखावा बिल्कुल नहीं था, और वे अपने सभी ग्रामवासियों के साथ विशेषकर उत्सवों और पूजा अवसरों पर बेझिझक और निःसंकोच मिलते थे। महादेव सहाय एक सीधे-सादे ग्रामीण व्यक्ति होते हुए भी फारसी और संस्कृत के जाने माने विद्वान थे। अपने पास आने वाले रोगियों को आयुर्वेदिक और यूनानी औषधियाँ निःशुल्क देने में उन्हें अपार हर्ष होता था। उनकी माता जी पूर्णरूपेण धार्मिक स्वभाव की थी और बालक "राजन" को प्रायः रामायण और महाभारत जैसे प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों से कहानियाँ सुनाया करती थीं। सामान्य रूप से उनके गांव का और विशेष रूप से उनके घर के वातावरण का, जो शांति और पवित्रता से पूर्णतः ओत-प्रोत था, बालक "राजन" के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा जिसके परिणामस्वरूप कालान्तर में उनमें सहानुभूति निस्वार्थ सेवा, शुचिता, त्याग, विनम्रता और सादगी के आदर्श गुण प्रकट हुए।

उनकी शिक्षा

राजन बाबू का गांव उन्नीसवीं शताब्दी के उन अनेक भारतीय गांवों में से एक था, जहां बुनियादी शिक्षा सुविधा के लिए प्रारंभिक स्कूल तक न था। अतः उन्हें अपनी प्रारम्भिक शिक्षा गांव के मौलवी से प्राप्त हुई थी, जिन्होंने उन्हें फारसी भी पढ़ाई थी। इसके बाद उन्हें छपरा जिले के एक हाई स्कूल में भेजा गया, जहां से उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय की प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण की, जिसका क्षेत्राधिकार उस समय बंगाल, बिहार, उड़ीसा, असम और बर्मा तक फैला था। इस परीक्षा में राजन बाबू ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया और सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। यह एक उल्लेखनीय उपलब्धि थी जो बिहार के किसी छात्र को प्रथम बार प्राप्त हुई थी।

1897 में तत्कालीन हिन्दू समाज में प्रचलित परम्परा के अनुसार, तेरह वर्ष की अवस्था में उनका विवाह राजवंशी देवी से हुआ था, जो सच्ची भारतीय महिला के समान पूर्णतः अपने पति को समर्पित हो गयी थीं और उन्होंने दो पुत्रों को जन्म दिया।

प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् राजन बाबू ने सुविख्यात प्रेसीडेन्सी कालेज कलकत्ता में प्रवेश लिया। कालेज में कनिष्ठ छात्र होने के बावजूद, वह एक लोकप्रिय छात्र नेता बन गये और बहुत भारी मतों से कालेज यूनियन के सेक्रेटरी चुने गये।

कालेज में, जगदीश चन्द्र बोस जैसे महान वैज्ञानिक तथा अन्य शिक्षकों ने उनसे विज्ञान विषय लेने का आग्रह किया किन्तु उन्होंने किन्हीं कारणों से कला के विषय लिये। छात्र काल में ही उनमें देशभक्ति की भावना प्रबल हो गई थी। 1905 में बंगाल के विभाजन के बाद हुए विभाजन विरोधी आन्दोलन के दौरान राष्ट्रवादियों द्वारा निकाले गये जुलूसों, उनके द्वारा दिये गये नारों और भाषणों का उन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। 1906 में, जब वह कलकत्ता विश्वविद्यालय के छात्र थे, उन्होंने प्रथम बार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की बैठक में भाग लिया। 1908 में उन्होंने कलकत्ता में बिहार के छात्रों को संगठित किया और बिहार "स्टूडेन्ट्स कांफ्रेन्स" की स्थापना की जो पूरे भारत में अपने किस्म का प्रथम संगठन था। यही वह संगठन था जिसने आने वाले वर्षों में बिहार से अनेक उत्तम राजनीतिक नेता पैदा किये। यह राजेन्द्र प्रसाद के प्रबंध-कौशल का प्रथम परिचय था, जो आने वाले वर्षों में दूसरों के लिए उदाहरण बन गया था। पढ़ाई-लिखाई में भी वह अव्वल थे। वह स्नातक परीक्षा में प्रथम आये और तत्पश्चात् उन्होंने अंग्रेजी में स्नातकोत्तर कक्षा में प्रवेश लिया। स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग ले रहे अन्य अनेक आंदोलनकारियों की भांति उन्होंने भी विधि पाठ्यक्रम में प्रवेश लिया। लगभग इसी समय वह श्री गोपालकृष्ण गोखले के सम्पर्क में आये, जो युवा राजेन्द्र के सम्भ्रान्त परिवार के परिवेश और उनके प्रतिभापूर्ण शैक्षिक जीवन को देखते हुए यह चाहते थे कि वह "सर्वेन्ट्स आफ इंडिया सोसाइटी" के सदस्य बन

जायें। हालांकि, परिवार के सदस्यों के भारी दबाव के कारण वे समिति में शामिल नहीं हुए।

वकील के रूप में

कानून की पढ़ाई समाप्त करने के बाद, सन् 1911 में कलकत्ता में राजन बाबू अपने आपको एक वकील के रूप में स्थापित करने में जुट गए। अपने सद्चरित्र, सत्यनिष्ठा के कारण शीघ्र ही न केवल उनके मुवक्किलों की संख्या बढ़ गई बल्कि अपनी तीक्ष्ण बुद्धि, अभूतपूर्व स्मरण शक्ति तथा व्यावसायिक आचारों पर दृढ़ रहने जैसे गुणों के कारण वे न्यायाधीशों की प्रशंसा और आदर के पात्र भी बन गए। न्यायाधीशों को कानून के विषय पर गहरे और सम्यक अध्ययन से प्राप्त उनकी कानूनी ज्ञान और तर्कसम्मत दलीलों पर बहुत अधिक विश्वास था। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि अपनी बुद्धि और विद्वता के कारण उन्हें कानून के क्षेत्र में सफलता भी प्राप्त हुई। एक बार, जब वह एक प्रसिद्ध विधिवेत्ता और विद्वान न्यायाधीश आशुतोष मुखर्जी, जो कलकत्ता विश्वविद्यालय के उप-कुलपति भी थे, के समक्ष एक मामले में दलील दे रहे थे, तो श्री मुखर्जी उनके द्वारा मुकदमे को प्रस्तुत करने के तरीके तथा ठोस दलीलों से इतना अधिक प्रभावित हुए कि उन्हें विश्वविद्यालय के विधि विभाग में एक प्राध्यापक का पद देने का प्रस्ताव रखा जिसे राजन बाबू ने विनम्रतापूर्वक स्वीकार कर लिया। एक उदीयमान वकील के रूप में वे विभिन्न साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेते रहे तथा अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रति उन्होंने विशेष रुचि दिखाई।

वकालत करने के साथ-साथ कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्राध्यापक के पद पर रहते हुए उन्होंने सन् 1915 में विधि में स्नातकोत्तर की परीक्षा उत्तीर्ण की जिसमें उन्होंने सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। सन् 1916 में, पटना उच्च न्यायालय की स्थापना के बाद राजेन्द्र प्रसाद वकालत के लिए पटना चले आए, जिससे उनके जीवन में एक मोड़ आया, जैसा कि उनके जीवन की बाद की घटनाओं से पता चला है।

महात्मा गांधी के अनुयायी के रूप में

डा० राजेन्द्र प्रसाद सन् 1917 में महात्मा गांधी के सम्पर्क में आए, जब गांधीजी ने ब्रिटिश नील उत्पादकों के शोषण से किसानों को मुक्त कराने के लिए चम्पारन सत्याग्रह शुरू किया था। इससे पहले उन्हें सन् 1916 में, अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के लखनऊ सत्र में महात्मा गांधी जी को देखने का अवसर प्राप्त हुआ था। चम्पारन सत्याग्रह ने महान अहिंसक राष्ट्रीय संघर्ष की नींव रख दी थी, जो महात्मा गांधी के नेतृत्व में किया गया था।

ब्रिटिश सरकार और नील उत्पादक निश्चय ही महात्मा गांधी की वहां उपस्थिति से

अप्रसन्न थे। उन्हें न्यायालय में उपस्थित होने के लिए बुलाया गया और जैसा कि आशा थी, वहां उन्होंने "सत्याग्रह" के सिद्धान्त पर प्रवचन किया और सत्याग्रह के पक्ष में अपनी दलीलें पेश की। गांधी जी ने किसानों के हितों की रक्षा करने में सहायता देने के लिए राजेन्द्र प्रसाद और अन्य वकीलों को आमंत्रित किया। युवक राजेन्द्र प्रसाद ने गांधी जी के आह्वान पर "सत्याग्रह" के इस प्रयोग में भाग लिया। चम्पारन सत्याग्रह से वे न केवल महात्मा गांधी के निकट आए बल्कि उनकी सम्पूर्ण जीवन धारा ही बदल गई। गांधी जी से प्रेरित होकर राजेन्द्र प्रसाद ने एक सच्चे गांधीवादी का जीवन जीना प्रारम्भ कर दिया—वे अपने बर्तन और कपड़े स्वयं धोने लगे। रेलों में तीसरे दर्जे में यात्रा करने लगे और उन्होंने बिना किसी हिचक के प्रत्येक सुख-सुविधा को त्याग दिया। राष्ट्राध्यक्ष के उच्चतम पद पर आसीन होने के बाद भी वे साधारण और—विनीत जीवन व्यतीत करते रहे। अपने सलाहकार के निर्देशन में उन्होंने बिहार में कई आंदोलनों को नई दिशा दी, जिनका लक्ष्य राष्ट्र को स्वतंत्रता के निकट पहुंचाना और आर्थिक सुधार करना था।

चम्पारन में गांधीजी द्वारा किए गए "सत्याग्रह" के प्रयोग को कैरा में पूरा किया गया। कैरा जिले के किसानों ने भी, सत्याग्रह की तकनीक को अपनाते हुए, साम्राज्यवादी सरकार द्वारा दंडात्मक उपाय किए जाने के बावजूद भू-राजस्व देने से इन्कार कर दिया। सरकार के सामने किसानों के आगे झुकने के सिवाय और कोई चारा न था। अगर चम्पारन सत्याग्रह ने राजेन्द्र प्रसाद में गांधीवादी सत्याग्रह के प्रति विश्वास पैदा किया तो कैरा में प्राप्त अभूतपूर्व सफलता उन्हें गांधीजी के और निकट ले आई और इसने उनके इस विश्वास को दृढ़ किया कि विदेशी शासकों द्वारा किए जा रहे शोषण के विरुद्ध सत्याग्रह ही एकमात्र प्रभावी उपाय था। इस प्रकार राजेन्द्र प्रसाद पूर्वी क्षेत्र से गांधीजी के साथ जुड़ने वाले पहले प्रमुख व्यक्ति थे, जिस प्रकार पश्चिम क्षेत्र से वल्लभभाई गांधीजी से जुड़ने वाले पहले व्यक्ति थे।

स्वतंत्रता सेनानी के रूप में

राजन बाबू के कलकत्ता में स्नातक डिग्री प्राप्त करने के लिए आने से काफी पहले उनका हृदय और मस्तिष्क देशभक्ति और राष्ट्रवादी विचारों से औतप्रोत थे, क्योंकि उनके बड़े भाई ने उन्हें पहले ही "स्वदेशी" धारा से परिचित करवा दिया था। गांधीवादी विचारधारा देशवासियों को उनके द्वारा किए गए आह्वान और औपनिवेशिक शासकों के विरोध के उनके अभूतपूर्व और भिन्न तरीके से प्रेरित होकर राजेन्द्र प्रसाद देश को औपनिवेशिक दासता से स्वतंत्र कराने के अटल इरादे से वे राजनीतिक संघर्ष में कूद पड़े। वर्ष 1918 के रॉलेट ऐक्ट और 1919 के जलियांवाला हत्याकाण्ड के बाद राजेन्द्र प्रसाद गांधी जी की इस बात पर सहमत हो गए कि ब्रिटिश सरकार को अमानवीय कार्यवाही और दमनकारी कानूनों से निपटने का मात्र कारगर शस्त्र "असहयोग आन्दोलन" ही है।

बिहार से वह ऐसे पहले नेता थे जिन्होंने इस प्रस्ताव पर हस्ताक्षर किए और शपथ ली, जिसके तहत प्रत्येक सत्याग्रही से रॉलेट ऐक्ट का विरोध करते समय अहिंसक रहने की अपेक्षा की गई थी। रॉलेट ऐक्ट को "ब्लैक ऐक्ट" (काला अधिनियम) का नाम दिया गया था। लगभग इन्हीं दिनों राजेन्द्र बाबू ने वकालत की अपनी बढ़िया चलती प्रैक्टिस को छोड़ दिया और इस प्रकार उन्होंने अपने आपको पूरे जोर-शोर से देश की सेवा में लगा दिया अर्थात् वह अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता के निमित्त पूर्णरूपेण समर्पित हो गए। वर्ष 1924 में गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन के निमित्त एक देशव्यापी सत्याग्रह चलाया, जिससे लोगों का भारी समर्थन मिला। तथापि, चौरी-चोरा की उस घटना के बाद, जब एक क्रुद्ध भीड़ ने एक थाने को आग लगा दी, जिससे वहां कई पुलिस कर्मी मारे गए, महात्मा गांधी को मजबूरन इस आन्दोलन को वापिस लेना पड़ा। कई नेता गांधी जी के आन्दोलन वापिस लेने के आह्वान से सहमत नहीं हुए और उन्होंने इसे एक "अधम वापसी" माना। तथापि राजेन्द्र प्रसाद उनके कुछ अनुयायियों में से एक थे, जो गांधी जी के इस निर्णय से सहमत हुए और उनकी इस मान्यता से सहमत हुए कि देश "अभी तक अहिंसक सहयोग आन्दोलन के लिए परिपक्व नहीं है।" यह शायद उन कारणों में से एक कारण था, जिसकी वजह से गांधी जी ने राजन बाबू में अपनी एक गहरी छाप देखी और उन्हें स्वयं राजद्रोह के आरोप में जेल जाने से पहले, लोगों को सत्याग्रह के लिए तैयार करने का रचनात्मक कार्य सौंपा। जब राजन बाबू ने महात्मा गांधी को 6 वर्ष के कारावास की सजा दिए जाने के निर्णय के बारे में सुना तो वे एक छोटे बच्चे की तरह फूट-फूट कर रो पड़े। गांधी से उनका इतना भावात्मक लगाव और स्नेह था।

वर्ष 1923 में राजन बाबू ने नागपुर में फ्लैग-सत्याग्रह में सक्रिय रूप से भाग लिया। सरकार ने राष्ट्रीय नेताओं द्वारा गड़बड़ी फैलाने की आशंका को महसूस करते हुए, एहतियाती उपाय के रूप में प्रतिबन्धात्मक आदेश जारी कर दिए। दण्डात्मक आदेश के विरुद्ध सत्याग्रह का नेतृत्व करने के कारण गिरफ्तार हुए सेठ जमनालाल बजाज के बाद यह आन्दोलन सरदार बल्लभभाई पटेल द्वारा चलाया गया और जब उनका गिरफ्तार होना भी लगभग तय सा हो गया तो सत्याग्रह का नेतृत्व राजन बाबू ने संभाला। इसी समय वे सरदार पटेल के घनिष्ठ सम्पर्क में आए जिनकी मित्रता और साहचर्य को उन्होंने अपने जीवन काल में अत्यन्त सुखद यादगार के रूप में संजोए रखा।

वर्ष 1930 में ब्रिटिश सरकार ने राजन बाबू को नमक सत्याग्रह में भाग लेने के कारण गिरफ्तार कर लिया। तथापि उन्हें अपनी कारावास अवधि पूरी होने से पहले वर्ष 1934 में रिहा कर दिया गया क्योंकि सरकार को बिहार में भूकम्प पीड़ितों की सहायता

करने के लिए उनकी सेवाओं की अत्यन्त आवश्यकता थी। राजन बाबू की कारावास की दूसरी लम्बी अवधि वर्ष 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन संबंधी प्रस्ताव पारित होने के तुरन्त बाद की है जब उन्हें लगभग तीन वर्ष के लिए 1945 तक जेल में रहना पड़ा था।

एक अग्रणी कांग्रेसी के रूप में

राजन बाबू भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से उस समय जुड़े जब वे कलकत्ता में स्नातक डिग्री के लिए अध्ययन कर रहे थे। वर्ष 1906 में कलकत्ता में हुए अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के अधिवेशन के दौरान राजेन्द्र प्रसाद को, जिन्होंने इसमें स्वयं सेवक के रूप में कार्य किया, सरोजिनी नायडू, पंडित मदन मोहन मालवीय और मोहम्मद अली जिन्ना जैसे राष्ट्रवादी नेताओं के प्रेरक और देशभक्ति के भाषण सुनने का अवसर मिला।

तथापि, वर्ष 1911 में अपना अध्ययन पूरा करने के बाद ही वह इस राष्ट्रीय संगठन में शामिल हुए जिसने स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व किया। वकालत की अपनी अच्छी चलती प्रेक्टिस के साथ-साथ भी उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को अपना अमूल्य समय दिया। वह वर्ष 1916 में गांधी जी के सम्पर्क में उस समय आए, जब गांधी जी दक्षिण अफ्रीका से लगभग दो दशक के बाद भारत वापिस लौटे और उन्होंने पहली बार कांग्रेस अधिवेशन में भाग लिया।

वर्ष 1920 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने नागपुर में हुए अपने अधिवेशन में अपने अन्तिम लक्ष्य के रूप में स्वराज की घोषणा की। इस सन्देश को तथा कांग्रेस के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को समूचे देश में प्रसारित करने के लिए पार्टी को सक्षम और समर्पित कार्यकर्ताओं की आवश्यकता थी। राजेन्द्र प्रसाद ने एक रचनात्मक और समर्पित कार्यकर्ता के रूप में समूचे बिहार का दौरा किया। लोगों को कांग्रेस की योजनाओं एवं कार्यक्रमों के बारे में बताया और इस प्रकार उनके साथ व्यक्तिगत संबंध स्थापित किया। छात्रजीवन के दौरान सम्मेलनों को आयोजित करने के अपने पूर्वानुभव से वह उन हजारों प्रतिनिधियों के वास्ते सफलतापूर्वक व्यवस्था करने में कामयाब रहे, जो वर्ष 1922 में गया में कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने आए।

वर्ष 1937 में जब कांग्रेस ने प्रान्तों में अपनी सरकार का गठन किया उस समय उस संसदीय बोर्ड ने जिसमें राजन बाबू, सरदार पटेल और मौलाना आजाद शामिल थे, क्षमतापूर्वक एवं कारगर ढंग से इनका पथ प्रर्दशन किया।

राजन बाबू वर्ष 1911 में एक साधारण कार्यकर्ता के रूप में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में शामिल हुए और उन्होंने चार दशक से भी अधिक अवधि तक अलग-अलग हैसियत से इस संगठन की सेवा की। उनके लिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस जनता की सेवा और भारत की स्वतंत्रता के निमित्त संघर्ष का एक साधन था। साधारण कार्यकर्ता से वह संगठन के

अध्यक्ष के पद तक पहुंचे। वह संगठन के अध्यक्ष एक बार नहीं बल्कि तीन बार बने। बिहार में आए भूकम्प से संबंधित राहत कार्यों में उन्होंने जो कुशलता और योग्यता प्रदर्शित की थी, उसे ध्यान में रखते हुए, 1935 में उन्हें प्रथम बार कांग्रेस का अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। वर्ष 1939 में सुभाष चन्द्र बोस द्वारा अध्यक्ष पद से त्याग पत्र दिए जाने के बाद वह पुनः इस पद पर आसीन हुए। आचार्य जे०बी० कृपलानी द्वारा त्यागपत्र दिए जाने के बाद, 1947 में राजन बाबू तीसरी बार अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष चुने गए। उस समय वह अंतरिम सरकार में खाद्य और कृषि मंत्री थे और संविधान-निर्माण निकाय के अध्यक्ष भी थे।

लेखक के रूप में

राजेन्द्र प्रसाद एक स्वयंभू साहित्यकार थे। अपनी मातृभाषा हिन्दी के अलावा वह संस्कृत, उर्दू, फारसी और अंग्रेजी के भी ज्ञाता थे। साहित्यिक क्षेत्र में भी वह प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक भारत की परम्पराओं को अपने में संजोए हुए थे। राजेन्द्र प्रसाद ने अपने लेखों, साहित्यिक रचनाओं तथा पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से जनमत को अत्यधिक प्रभावित किया। कुछ समाचार पत्रों का सम्पादन करने के अतिरिक्त, उन्होंने अंग्रेजी तथा हिन्दी में अनेक पुस्तकें लिखी थीं। 1920 के दशक के आरम्भिक वर्षों में, उन्होंने हिन्दी साप्ताहिक "देश" और अंग्रेजी पाक्षिक "सर्चलाइट" का सम्पादन किया। उनकी पुस्तक "हिस्ट्री आफ चम्पारन सत्याग्रह" का प्रकाशन 1917 में तथा एक अन्य पुस्तक "इंडिया डिवाइडेड" का प्रकाशन 1946 में हुआ था। उनकी आत्मकथा हिन्दी में 1946 में और अंग्रेजी में 1957 में प्रकाशित हुई थी। भारत के स्वतंत्रता संग्राम को दर्शाने वाली इस आत्मकथा को एक अत्यधिक महत्वपूर्ण अभिलेख समझा जाता है। इसके पश्चात् भी, "एट दी फीट आफ महात्मा गांधी" नामक इनकी एक अन्य पुस्तक 1955 में प्रकाशित हुई, जिसमें उनके एक विवेकशील परामर्शदाता रूप की बताई गई दार्शनिक और शिक्षाप्रद बातें सम्मिलित हैं।

एक प्रभावशाली समझौता वार्ताकार के रूप में

राजेन्द्र प्रसाद को एक समझौता वार्ताकार के रूप में, जब कभी आमंत्रित किया गया, उनकी इस कार्य में प्रभावशीलता और चतुराई सदैव स्पष्ट दिखलाई पड़ी। लॉर्ड माउन्टबेटेन की अध्यक्षता में गठित विभाजन परिषद् में उन्होंने अपने अंतरंग साथी सरदार पटेल के साथ भाग लिया। इस परिषद् में दूसरे पक्ष के प्रतिनिधि मोहम्मद अली जिन्ना और लियाकत अली खां थे। डा० राजेन्द्र प्रसाद की सम्बद्ध मामलों की गहन जानकारी, उनका विधिसम्मत विवेक, उनकी बुद्धिमत्ता और विनम्रता ने उन्हें भारत का एक प्रभावशाली समझौता-वार्ताकार बना दिया था। अपने मौलिक प्रत्यक्ष ज्ञान, दूरदर्शिता और

निपुणता के परिणामस्वरूप ही वह प्रभावी ढंग से समझौता करने तथा भारत के लिए परिसम्पत्तियों, दायित्वों तथा अन्य समस्याओं यथा केन्द्रीय सेवाओं, करेंसी और सिक्कों, आर्थिक संबंधों, सशस्त्र सेनाओं आदि का न्यायसंगत, समुचित और निष्पक्ष समाधान करने में समर्थ हो सके थे।

लोकोपकारी-मानव के रूप में

राजेन बाबू ने अपने जीवन के अधिकांश अमूल्य वर्ष न केवल स्वतंत्रता संग्राम को ही समर्पित कर दिए अपितु वह जीवन पर्यन्त सुख-सुविधाओं से वंचित लोगों के उत्थान के लिए कार्य करते रहे। वह एक महान लोकोपकारी मानव थे, जिनका हृदय सदा ही निर्धनों और दलितों से द्रवीभूत रहता था। उनका अपना व्यक्तित्व जरूरतमंदों और सुख-सुविधाओं से वंचित व्यक्तियों के साथ पूर्णरूपेण घुल-मिल गया था और उनके प्रति उनकी भावनाएं पूर्णरूपेण समर्पित थीं। इन्हीं कारणों से वह अपने देश के करोड़ों व्यक्तियों के मन मंदिर में बस गए थे। शाहाबाद जिले के बाढ़ पीड़ितों की सेवा करते हुए उन्हें सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में अपार ख्याति मिली। पटना नगर निगम के अध्यक्ष के रूप में, वह अनेक कार्यक्रम आरम्भ करना चाहते थे, जिनका उद्देश्य जनता को बेहतर नागरिक सुविधाएं उपलब्ध कराना था, किन्तु धनाभाव तथा नये कर लगाने के विरोध के कारण वह अपने प्रस्तावों को अधिक सफलतापूर्वक कार्यान्वित नहीं कर सके। इसके परिणामस्वरूप कुछ समय पश्चात् उन्होंने त्यागपत्र दे दिया।

वर्ष 1930 में, नमक सत्याग्रह में भाग लेने के बाद जब उन्हें लम्बी अवधि के लिये कारावास में डाल दिया गया था, तभी उन दिनों बिहार में एक भयानक भूकंप आया, जिससे हजारों व्यक्ति मारे गये और करोड़ों बेघर हो गए। उनकी निस्वार्थ और समर्पित समाज सेवा से प्रभावित, ब्रिटिश सरकार ने राजेन बाबू को रिहा कर दिया, जिससे कि वह इस भारी आपदा के शिकार व्यक्तियों के राहत कार्य में सेवारत समिति का नेतृत्व कर सकें। राजेन बाबू पूर्णरूपेण राहत कार्य में जुट गए और उन्होंने बहुत ही थोड़े समय में 38 लाख रुपये से भी अधिक राशि एकत्र कर ली। दूसरी ओर वायसराय राजेन बाबू द्वारा एकत्र धनराशि के एक तिहाई भाग के बराबर ही राशि जुटा पाए, जबकि उनके पास शक्ति, प्रतिष्ठा, हैसियत और संसाधन सभी उपलब्ध थे। राजेन बाबू ने राहत सेवाएं जिस उत्साह, निष्ठा और लोकोपकारी रूप से आयोजित की थीं, उस की पूरे राष्ट्र ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। यहां तक कि ब्रिटिश सरकार ने भी उनके कार्य की सराहना की। एक वर्ष बाद जब दूसरी बार, क्वेटा में भूकंप आया, तब राजेन बाबू की विगत सेवाओं को ध्यान में रखते हुए उन्हें क्वेटा भूकंप राहत समिति का

अध्यक्ष चुना गया। उन्होंने अपने हाथ में जो भी कार्य लिया, उसे उन्होंने पूर्ण निष्ठा, निष्काम भावना और सतर्कता से पूरा किया। इस दृष्टिकोण से वह वास्तव में एक कर्मयोगी थे।

मंत्री के रूप में

वर्ष 1946 में राजेन बाबू ने पंडित जवाहर लाल नेहरू के प्रधानमंत्री के नेतृत्व में गठित अस्थाई सरकार में खाद्य और कृषि मंत्री के रूप में कार्य किया। अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि और किसानों के हित से सक्रिय रूप से जुड़े होने के कारण राजेन बाबू कृषि संबंधी कार्यों और प्रणालियों के बारे में सभी कुछ जानते थे। उन्होंने महसूस किया कि बढ़ते हुए औद्योगीकरण से लम्बे समय से एकजुट और संघटित रहे ग्रामीण जीवन के ताने-बाने को बाधा पहुंची है। उनका विश्वास था कि ग्रामीण जीवन को संघटित करने का कोई नया प्रयास गांधीवादी मूल्यों पर आधारित होना चाहिए। कृषि उत्पादन को अधिक से अधिक बढ़ाने और किसानों के दुखदर्द को दूर करने के दृढ़ पक्षधर के रूप में उन्होंने "अधिक अन्न उपजाओ" का नारा दिया था। उनके कुशल और सक्रिय मार्गनिर्देश में खाद्य और कृषि मंत्रालय ने, इस प्रयोजनार्थ एक प्रभावकारी अभियान चलाया था।

जब राजेन बाबू ने खाद्य और कृषि मंत्री का पदभार ग्रहण किया था, उस समय देश अंग्रेजों की विभिन्न पाबन्दियों, राशनिंग और अनिवार्य वसूली संबंधी नीति के परिणामस्वरूप पैदा हुई खाद्यान्न की भारी कमी से जूझ रहा था। कांग्रेस ने शुरू में युद्ध के दौरान तथा युद्ध के फौरन बाद इस प्रकार की पाबन्दियों का विरोध किया था, लेकिन बाद में इसने जनता के असहाय वर्गों के वास्ते सस्ते अनाज की वसूली और वितरण हेतु इन पाबन्दियों का समर्थन किया। तथापि, गांधीजी सहित कई कांग्रेस नेताओं ने इसका विरोध किया और अन्ततः राजेन बाबू को पाबंदियों वाली इस व्यवस्था से छुटकारा पाकर ही सन्तोष मिला।

संविधान सभा के अध्यक्ष के रूप में

वर्ष 1946 में स्वतंत्र भारत के लिए संविधान बनाने हेतु जब संविधान सभा की स्थापना की गई, तो डा० राजेन्द्र प्रसाद को, जिन्हें बिहार प्रान्त से इसके लिए चुना गया था, बिना विरोध के इसका अध्यक्ष बनाया गया। संविधान-निर्माण निकाय के अध्यक्ष के लिए चुने जाने पर राजेन बाबू को बधाई देते हुए डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा था:

> "डा० राजेन्द्र प्रसाद हम में से एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिनमें सौम्यता की भावना है उनमें अच्छाइयां कूट-कूट कर भरी हुई है। उनमें अदम्य धैर्य और साहस है। उन्होंने अनेक पीड़ाएं झेली हैं। राजेन्द्र प्रसाद भारत के, कांग्रेस के एक वास्तविक सेवक हैं, जिन्होंने उस भावना को जागृत किया, जिसकी देश को आवश्यकता है। मेरा विश्वास है कि सौहार्दता, मैत्री और समन्वय की इस भावना से, जो हमें सिन्धु

घाटी की सभ्यता में शिव की प्रतिमा से लेकर, महात्मा गांधी और डा० राजेन्द्र प्रसाद से मिली है, हमारे प्रयासों को उत्प्रेरणा मिलेगी।"[1]

डा० राजेन्द्र प्रसाद के चुने जाने पर उन्हें बधाई देते हुए डा० सरोजिनी नायडू ने कहा था:

"राजेन्द्र प्रसाद ने दया, समझबूझ, बलिदान और प्रेम की आध्यात्मिक भावना भगवान बुद्ध से ग्रहण की है। इस सभा में, जहां प्रत्येक ने दृढ़ता से कहा है कि वह सभा के अभिभावक और पिता होंगे। मैं उन्हें एक चमकती हुई तलवार के रूप में नहीं मानती बल्कि उनका रूप लिली-फूल लिए एक ऐसे फरिश्ते का रूप है, जो मनुष्यों के दिलों को जीतता है, क्योंकि उनमें मधुरता का एक ऐसा रस है जो उन्हें अपने अनुभव से प्राप्त हुआ है। उनमें दूरदृष्टि, सर्जनात्मक विचार शक्ति और मौलिक विश्वास की स्पष्ट झलक है, जो उन्हें भगवान् बुद्ध के चरणों के सन्निकट लाती है।"[2]

लगभग तीन वर्षों के विचार-विमर्श के दौरान, संविधान सभा से उनकी सम्बद्धता उनके उदात्त गुणों का उदाहरण प्रस्तुत करती है।

इस दौरान उन्होंने सभा की कार्यवाही को पूर्ण दृढ़ता, असीम धैर्य, सूझबूझ और अत्यंत शालीनता से संचालित किया। उन्होंने सदस्यों को विभिन्न मुद्दों पर पूरी स्वतंत्रता से बहस में भाग लेने की छूट दी और उनके कौशल विषयनिष्ठता और निष्पक्षता की सभा में सभी सदस्यों ने प्रशंसा की।

26 नवम्बर, 1949 को संविधान को अंतिम रूप से स्वीकार करते समय राजेन बाबू ने संविधान सभा के पीठासीन अधिकारी के रूप में अंतिम टिप्पणी के रूप में इस संविधान को जिसकी गिनती विश्व के सबसे बड़े संविधानों में की जाती है अंतिम रूप देने के महती कार्य को पूरा करने के लिये सदस्यों को बधाई दी। संविधान की व्यवहार्यता के संबंध में उन्होंने टिप्पणी की कि:

"संविधान में चाहे व्यवस्था हो या न हो, देश का हित तो शासन करने के तरीके पर निर्भर करेगा। यह शासन करने वालों पर निर्भर करेगा————————यदि निर्वाचित सदस्य सक्षम और सच्चरित्र तथा निष्ठावान हों तो वे दोषपूर्ण संविधान से भी देश को अच्छी से अच्छी तरह चला सकते हैं। यदि शासन करने वालों में इन गुणों का अभाव है तो संविधान देश की सहायता नहीं कर सकता है।"[3]

---

[1]संविधान सभा वाद-विवाद, खण्ड I, 11 दिसम्बर, 1946, पृष्ठ 36
[2]वही पृष्ठ 47
[3]वही, पृष्ठ 993

राजेन बाबू ने जीवन की अत्यंत महत्वपूर्ण और स्मरणीय घटना यह थी कि ब्रिटिश सरकार से भारत सरकार को सत्ता का अंतरण संविधान सभा के अध्यक्ष के रूप में उनके हाथों के माध्यम से हुआ था।

गणतंत्र के राष्ट्रपति के रूप में

संविधान सभा के अंतिम सत्र के पहले दिन, दिनांक 24 जनवरी, 1950 को राजेन्द्र प्रसाद को सर्वसम्मति से भारत का अनन्तिम राष्ट्रपति चुना गया। उन्होंने 26 जनवरी, 1950 को पद की शपथ ली। यह परम सौभाग्य की बात है कि जिस व्यति ने संविधान निर्मात्री संस्था के अध्यक्ष का पद संभाला था उसे ही उस संविधान की रक्षा और संरक्षण की भारी जिम्मेदारी सौंपी गई । इसके बाद, वयस्क मताधिकार के आधार पर 1952 में जब प्रथम आम चुनाव हुए तो वे संविधान के उपबंधों के अनुसार इस गणतंत्र के राष्ट्रपति चुने गये । 1957 में उन्हें पुनः इस पद के लिये निर्वाचित किया गया।

भारत के प्रथम प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू और राजेन बाबू ने कई स्थायी नजीरें और परंपरा स्थापित की हैं । जिसके फलस्वरूप राज्याध्यक्ष और शासनाध्यक्ष के मध्य स्वस्थ राजनैतिक संबंध कायम हो सका। समय के साथ ये नजीरें हमारी संसदीय लोकतंत्र की आधार शिला बन गई हैं और इनसे लोकतंत्र की जड़े मजबूत हुई हैं।

भारत के सर्वोच्च पद पर आसीन होने और राष्ट्रपति भवन की चकाचौंध से घिरे होने के बावजूद राजेन बाबू सादगी से रहते थे । वे प्रतिदिन चरखा चलाते थे । अपनी सहज निष्ठावादिता, सच्चरित्रता, नम्रता और समर्पण भाव, मानवीय प्रेमभावना और दूरदर्शिता ने उन्हें एक विशिष्ट व्यक्ति की कोटि में ला खड़ा किया था। उन्हें अजात शत्रु की संज्ञा ठीक ही दी गई थी।

12 वर्ष तक राष्ट्रपति के पद को सुशोभित करने के पश्चात् 1962 में वे इससे पदमुक्त होने के बाद वे पटना में सदाकत आश्रम चले गए ताकि अपने जीवन का शेष भाग शांतिपूर्वक तथा शांत वातावरण में व्यतीत कर सकें । भारत माता का यह महान सपूत 28 फरवरी, 1963 को केवल अपने उच्च विचारों और आदर्शों जिन्हें देशवासी सदैव याद करते रहेंगे की छाप छोड़कर स्वर्गवास सिधार गया । भारत के इस महान सपूत द्वारा की गई उत्कृष्ट सेवाओं को मान्यता देते हुए, उन्हें, उसी वर्ष देश का सर्वोच्च नागरिक सम्मान "भारत रत्न" प्रदान किया गया।

श्रद्धांजलि

राष्ट्रीय मंच पर दशकों तक, विशेषकर स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत पहले की अवधि तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, छाए रहे इस महापुरुष के निधन पर पूरे राष्ट्र-संसद, राज्य विधान सभाओं, प्रेस, सभी वर्गों के नेताओं, विदेशों के प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने श्रद्धा सुमन पेश किए।

उनके निःस्वार्थ जीवन, और भारत के लोगों को अर्पित सेवाओं के प्रति भाव-भीनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए, तत्कालीन लोकसभा अध्यक्ष स० हुकम सिंह ने कहा था कि:—

"वह एक महान स्वतंत्रता सेनानी और कट्टर देशभक्त थे। संविधान सभा के अध्यक्ष के नाते, उन्होंने इसकी कार्यवाही को बड़े धैर्य और दूरदर्शिता से संचालित किया। बहुत ही कठिन और आरम्भिक चरण में वह भारत के प्रथम राष्ट्रपति बने। मानवता और नम्रता से ओत-प्रोत उस प्रतिभाशाली व्यक्ति ने निर्धनों और दुर्बलों के बीच कार्य किया, उनकी कठिनाइयों को समझा। उन्होंने अपने पद की गरिमा को बनाए रखते हुए साधारण और समर्पित जीवन व्यतीत किया। उन्होंने ऐसी परम्परा स्थापित की जो एक राज्य के संवैधानिक प्रमुख के लिए उपयुक्त होती है।"[4]

राज्य सभा में, इसके सभापति (डा० एस. राधाकृष्णन्) ने उनके गुणों पर प्रकाश डालते हुए कहा था कि:

"उनके बारे में कुछ और कहने की बजाय यह कहना उचित होगा कि वह एक सज्जन पुरुष थे जोकि भारतीय जीवन पद्धति और सच्चे भारतीय के प्रतीक थे। हमारे देश के स्वतंत्रता के इतिहास में उनकी सेवाएं एक पारम्परिक कथा बन गई हैं.....उनकी असाधारण सरलता, महान मानवता और आडंबरहीन जीवन उन्हें उन लोगों का जनप्रिय का दर्जा प्रदान करता है। जिनके लिए उन्होंने स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए संघर्ष किया और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जनजीवन को नया रूप प्रदान करने में मार्ग दर्शन किया। लगातार पूरी दो अवधि तक भारत के राष्ट्रपति के रूप में इस सर्वोच्च प्रतिष्ठित और प्राधिकार वाले पद को असाधारण सम्मान के साथ सुशोभित किया। उन्होंने सही संवैधानिक परम्पराओं के मानक स्थापित किए।"[5]

---

[4]लोक सभा वाद-विवाद, 1 मार्च 1963

[5]राज्य सभा वाद-विवाद 1 मार्च, 1963 का 1381-82।

5 मई, 1964 को संसद के केन्द्रीय कक्ष में डा० राजेन्द्र प्रसाद के चित्र के अनावरण समारोह के अवसर पर, तत्कालीन प्रधान मंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने उनकी वर्षों की सेवाओं और उनके सेवा करने के तरीके के बारे में कहा था कि:

"……अनेक वर्षों तक वह गांधी जी से सम्बद्ध रहे और उनके साथ कार्य किया। गांधीजी द्वारा भारत में अपना मिशन आरम्भ किए जाने के समय से लेकर गांधीजी की मृत्यु के पश्चात् तक, जब तक वह भारत के राष्ट्रपति के रूप में रहे, उनका जीवन सेवा के प्रति समर्पित रहा[6]……।"

---

[6]द जर्नल ऑफ पार्लियामेंट इन्फारमेशन वोल्यूम। X, 1964, पृष्ठ 12।

संदर्भ स्रोत

1. सेन, एस॰पी॰ (सम्पादित): डिक्शनरी आफ नेशनल बायोग्राफीस्, वोल्यूम III, कलकत्ता, इन्स्टीटयूट् ऑफ हिस्टोरिकल स्टडीज, 1973।
2. अहलुवालिया, शशी: फाउन्डर ऑफ मॉडर्न इंडिया, नई दिल्ली, मानस पब्लिकेशनस्, 1986।
3. चौधरी बाल्मीकि (सम्पादित) डा॰ राजेन्द्र प्रसाद, कास्पोन्डेन्स एण्ड सलैक्ट डाक्यूमेंटस्, वाल्यूम 12, नई दिल्ली, सलाइड पब्लीशर्स लिमिटेड, 1989।
4. हान्डा, आर.एल.: राजेन्द्र प्रसाद—टवेल्व ईयर ऑफ ट्रिम्प एण्ड डिसपेयर, नई दिल्ली, स्टर्लिंग पब्लीशर्स प्रा॰ लि॰, 1978।
5. दि जर्नल ऑफ पार्लियामेंटरी इन्फारमेशन, वोल्यूम X, 1964।
6. रंगा, एन.जी.: डिस्टिंग्विश्ड एक्वेन्टेन्सेज, हैदराबाद, देशी बुक हाऊस, 1976।
7. संविधान सभा वाद-विवाद।
8. लोक सभा वाद-विवाद
9. राज्य सभा वाद-विवाद।

भाग दो
लेख

2

राष्ट्र निर्माता: राजेन्द्र बाबू

— डॉ० शंकर दयाल शर्मा*

हमें जो आजादी मिली और उस आजदी के बाद राष्ट्र-निर्माण का जो कार्य हुआ, उसमें हमारे देश के अनेक महान् नेताओं का योगदान रहा है। इन महापुरुषों में कुछ ऐसे हुए, जिन्हें स्वतंत्रता आंदोलन तथा स्वतंत्र भारत के निर्माण, दोनों में अपना योगदान करने का अवसर मिला। सरदार पटेल को यह अवसर थोड़े समय के लिए मिला। लेकिन सौभाग्यवश डॉ० राजेन्द्र प्रसाद और पंडित जवाहरलाल नेहरू की प्रतिभा और सेवा भाव को इन दोनों कालों में व्यक्त होने का अवसर मिला।

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद देश की संस्कृति और देश के लोगों के प्रति गहरे रूप से जुड़े हुए थे। आम लोगों के सुख-दुख में उनकी प्रत्यक्ष भागीदारी थी। सन् 1914 में बिहार बंगाल की बाढ़ तथा सन् 1934 में बिहार में आए भूकंप में उन्होंने जिस सेवा और समर्पण भाव का परिचय दिया था, वह एक अनुपम उदाहरण था। उनके इस कार्य की प्रशंसा में बापू ने लिखा था:

> "राजेन्द्र बाबू के नेतृत्व का अपने प्रांत पर जो प्रभाव है, वैसा किसी प्रांत पर किसी नेता का नहीं है। उन्होंने भूकम्प के दिनों में अपनी सेवा के लिए जो ख्याति और विश्वास प्राप्त किया, उसके कारण वे सारे देश के विश्वास पात्र बन गए। बिहार के वे शांतिदूत हैं, और मेरी आशा है कि वे बिहार के माध्यम से पूरे भारत के शांति दूत बनेंगे।"

बापू की यह आशा पूरी हुई, इसमें कोई संदेह नहीं।

राजेन्द्र बाबू ने अपनी ओर से राष्ट्र-निर्माण का कार्य आम लोगों की आम समस्याओं से जुड़कर शुरू किया था। बाद में जब चम्पारन सत्याग्रह के दौरान बापू से उनकी

---

*डा० शर्मा भारत के उपराष्ट्रपति और राज्य सभा के सभापति हैं।

मुलाकात हुई तब उनके सेवा की इस भावना को एक व्यवस्थित राजनैतिक दर्शन और स्वरूप प्राप्त हुआ, और इसके बाद वे बापू द्वारा दर्शाये पथ पर चलते गए। चंपारन सत्याग्रह के दौरान डॉ० राजेन्द्र प्रसाद की कर्तव्यनिष्ठा एवं श्रम का स्मरण करते हुए बापू ने अपनी आत्मकथा में लिखा था:

> "मेरे साथ काम करने वालों में सबसे अच्छे लोगों में राजेन्द्र बाबू एक हैं। उन्होंने अपने प्रेम से मुझे ऐसा अपंग बना दिया था कि उनके बिना मैं एक कदम भी आगे न रख सकता।"

अपने इसी प्रेमभाव के कारण राजेनदर बाबू ने महात्मा गांधी का अटूट और अगाध विश्वास प्राप्त किया—इतना विश्वास कि बापू मानने लगे कि उनके कहने पर वे जहर का प्याला भी पी लेंगे। बापू के सत्य और अहिंसा के सिद्धांत पर उनका अटूट विश्वास था। कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में 1934 में अपने अध्यक्षीय भाषण में डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने पूरी मुखरता के साथ कहा था:

> "सत्य और अहिंसा के प्रति विश्वास से बढ़कर कोई सिद्धांत नहीं है, और हमारे देश का यह दृढ़ निश्चय है कि हमें शोषकों का नहीं बल्कि देश के लोगों का शोषण करने वाली शक्तियों का अंत करना है।"

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने बापू के रचनात्मक कार्यों का प्रचार करने में अपने आपको लगाया। वे सर्वोदय के विचारों के समर्थक थे। खादी और ग्रामोद्योग का काम उन्होंने सदाकत आश्रम के माध्यम से शुरू किया। उनके इस कार्य पर बापू ने नव जीवन में लिखा था:

> "बिहार रत्न राजेन्द्र बाबू जिस प्रकार चर्खे और खद्दर का प्रचार कर मेरी सहायता कर रहे हैं, यदि सब प्रांत के नेता वैसी ही सहायता करें तो मैं विश्वास दिलाता हूं कि स्वराज बहुत जल्दी अपने-आप मिल जाएगा। इसके लिए मुझे दूसरा आन्दोलन करने की आवश्यकता ही न पड़े।"

खादी और चर्खे के प्रति राजेन्द्र बाबू की निष्ठा को जानने के लिए एक यह उदाहरण देना उपयुक्त होगा। संविधान सभा में राष्ट्रीय ध्वज के लिए जो समिति बनी थी, उसके अध्यक्ष राजेन्द्र बाबू थे। राजेन्द्र बाबू के ही प्रयास से संविधान में यह व्यवस्था की गई कि झण्डा चाहे सूती हो, ऊनी हो अथवा रेशमी हो—वह खादी का होगा और वह भी सूत हाथ से कता हुआ और हाथ से बुना हुआ होगा। बापू की राष्ट्रीय शिक्षा के विचार को मूर्त रूप देने के लिए उन्होंने बिहार विद्यापीठ की स्थापना की। उन्होंने हरिजन एवं आदिवासियों के विकास में रुचि ली और आदिमजाति सेवक संघ के अध्यक्ष भी रहे।

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद एक कर्मठ और निर्भीक स्वतंत्रता सेनानी थे। चंपारण सत्याग्रह के

दौरान बापू के संपर्क में आने के बाद से उन्होंने अपनी वकालत छोड़ दी और अपने आपको पूरी तरह से राष्ट्र के कार्यों के प्रति समर्पित कर दिया। सन् 1920 के सत्याग्रह और असहयोग आंदोलन तथा 1940-41 के सविनय अवज्ञा आंदोलन में उन्होंने बढ़-चढ़कर भाग लिया और अनेक बार जेल गए। यह बात उल्लेखनीय है कि वे आजादी से पहले तीन बार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष रहे। पहली बार 1934 में, दूसरी बार सुभाषचन्द्र बोस द्वारा त्यागपत्र देने पर सन् 1939 में तथा तीसरी बार देश की आजादी मिलने के वर्ष 1947 में। डॉ० राजेन्द्र प्रसाद अजातशत्रु थे, इसलिए उन्हें कांग्रेस के संगठन के प्रधान की भूमिका निभाने में विशेष सफलता मिली। उनके नेतृत्व में पार्टी और अधिक संगठित तथा मजबूत हुई। राजनीति में सक्रिय होने के बावजूद उनका ध्यान हमेशा आम लोगों की ओर बना रहता था। कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में उन्होंने भूमि संबंधी असमानता को दूर करने के लिए कुमारप्पा समिति (कांग्रेस किसान सुधार समिति) की स्थापना की थी। इस समिति की रिपोर्ट के दूरगामी प्रभाव हुए। खाद्य और कृषि मंत्री के रूप में 'अधिक अन्न उपजाओ' का नारा उन्होंने ही दिया था, जो उनकी दूरदृष्टि का सूचक है।

डॉ० राजेन्द्र तीक्ष्ण स्मरण शक्ति तथा प्रखर प्रतिभा से युक्त एक मेधावी कानूनविद् थे। उनके इस व्यक्तित्व का लाभ देश को तब मिला, जब वे भारत की संविधान सभा के निर्विवाद अध्यक्ष बनाए गए। हमारे संविधान का जो लोक कल्याणकारी स्वरूप आज प्रस्तुत है, उसे बनाने में, उसे सींचने और उसका पोषण करने में राजेन्द्र बाबू का संभवत सबसे बड़ा हाथ है। 26 जनवरी, 1950 को भारत के प्रथम राष्ट्रपति का पदभार ग्रहण करते हुए उन्होंने हमारे संविधान की मूल आस्था को बड़े सरल और स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया था। उन्होंने कहा था:

> "हमारे गणतंत्र का यह उद्देश्य है कि वह अपने नागरिकों को न्याय, स्वतंत्रता और समता प्राप्त कराये तथा उसके विशाल प्रदेशों में बसनेवाले तथा भिन्न-भिन्न धर्मों के मानने वाले, भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलने वाले और भिन्न-भिन्न आचार-विचार वाले लोगों में भाईचारे की अभिवृद्धि करे।"

वस्तुतः राष्ट्र के प्रति अटूट निष्ठा के कारण राजेन्द्र बाबू का कद अपने आप इतना बढ़ गया था कि उन्हें सर्वसम्मति से स्वतंत्र भारत का प्रथम राष्ट्रपति घोषित किया गया। देश के इस सर्वोच्च पद पर वे लगातार 12 वर्षों तक रहे। इस रूप में उन्होंने संविधान और लोकतंत्र की मर्यादा के अनेक स्मरणीय उदाहरण प्रस्तुत किए। संवैधानिक सर्वोच्च के इस पद पर रहते हुए उन्होंने केवल संविधान के ही नहीं बल्कि देश के एक कर्तव्यनिष्ठ अभिभावक की भूमिका निभाई। उन्हें भारतीय दर्शन, संस्कृति तथा स्वरूप की गहरी समझ

थी। उनके विचार हमारे देश के इसी स्वरूप के अनुकूल होते थे। उनके विचारों में धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद और लोकतंत्र की स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलती है। उन्होंने 25 दिसंबर, 1959 को मथुरा नगर पालिका द्वारा आयोजित अभिनंदन समारोह में कहा था:

> "यह बड़ा देश है। इसमें अनेक धर्मों के मानने वाले, अनेक भाषाओं के बोलने वाले तथा अनेक प्रांत के लोग रहते हैं। यद्यपि इन सबमें विभिन्नताएं हैं, मगर उनमें अंतर्गत एकता है, जो अनंतकाल से भारतवर्ष को एक करके रखे हुए है, और हजार मुसीबतों के आने पर भी तरह-तरह के राजनैतिक उलट-फेर होते रहने पर भी भारत की वह एकता आज भी कायम है। ..... इस एकता को हमें सुरक्षित रखना है।"

उनके लिए राष्ट्र का हित प्रधान हित था। इसलिए वे देश की तत्कालीन समस्याओं पर अपने विचार व्यक्त करने तथा विभिन्न विषयों पर पंडित नेहरू सहित अन्य नेताओं को अपनी निष्पक्ष, तटस्थ और विचारपूर्ण सलाह देते थे। डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के सद्य प्रकाशित पत्रों को मैंने पढ़ा है। इन पत्रों को पढ़ने के बाद मेरी उपरोक्त धारणा और भी दृढ़ हुई है। स्वयं पंडित नेहरू ने कहा था कि "हमारे गणतंत्र के शुरू के बारह वर्ष राजेन्द्र काल के रूप में इतिहास में अमर रहेंगे।" निःसंदेह राजेन्द्र बाबू के कार्य हमारे देश के इतिहास के पन्नों पर अमिट रहेंगे।

3

प्रथम राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद को श्रद्धांजलि

— प्रोफेसर एन० जी० रंगा*

डा० राजेन्द्र प्रसाद का, हमारे गणतंत्र के पहले राष्ट्रपति के रूप में उदय कांग्रेस के आन्दोलन से हुआ था। वह वर्ष 1952 से 1962 की लगातार दो अवधियों तक हमारे जनप्रिय राष्ट्रपति रहे। यद्यपि मुख्य रूप से वह शांतिप्रिय व्यक्ति थे और उन्हें "अजात शत्रु" की संज्ञा दी जाती थी। फिर भी उन्होंने दूसरे विशव युध के दौरान उत्पन्न हुए संकट का डटकर मुकाबला किया।

डा० राजेन्द्र प्रसाद, जिन्हें प्यार से ने केवल गांधी जी, बल्कि सभी कांग्रेसी "राजन बाबू" कहकर सम्बोधित करते थे, वर्ष 1917 में ही गांधी जी के सम्पर्क में आ गए थे जबकि उन्होंने साम्राज्यवादी शासन के विरुद्ध अपना प्रथम संघर्ष—चम्पारन सत्याग्रह के नाम से विख्यात—शुरू किया था। एक विश्वसनीय और समर्पित अनुयायी के रूप में वह अपने मार्गदर्शक गांधीजी के साथ उनके "स्वर्गारोहण" तक रहे।

यह मेरा सौभाग्य था कि वर्ष 1935 में अखिल भारतीय किसान कांग्रेस का गठन करते समय मुझे उनका पूरा समर्थन प्राप्त हुआ। जब मैं अखिल भारतीय किसान कांग्रेस का अध्यक्ष था और राजन बाबू कैबिनेट मंत्री थे, तब भी हम किसानों के हितों की रक्षा करने का कार्य मिल कर करते रहे। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान, जब खाद्य पदार्थों की खरीद पर युद्ध के समय लगाया गया नियंत्रण जवाहरलाल जी और किसान कांग्रेस के कई नेताओं के बीच कटु विवाद का मुद्दा बन गया, तब गांधीजी ने खाद्य-नियंत्रण संबंधी व्यवस्था के बारे में हमारे पक्ष का समर्थन किया तथा गांधी के सच्चे अनुयायी और किसानों को सचमुच प्रेम करने वाले राजन बाबू ने इस प्रश्न पर मंत्रिमंडल से त्यागपत्र देने की पेशकश की।

राजन बाबू गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित थे और उन्होंने सारे भारत में खादी तथा चरखे से कताई का प्रचार निष्ठापूर्वक किया। सदाकत

*प्रोफेसर रंगा संविधान सभा के सदस्य एवं संसद सदस्य, (लोक सभा) हैं।

आश्रम में उनका कार्य और मेरठ का आचार्य कृपलानी खादी केन्द्र समान रूप से लोकप्रिय हुए। वे दोनों ही देश के किसानों और दस्तकारों के स्वरोजगार में विश्वास करते थे और उन्होंने "स्वरोजगार के माध्यम से आर्थिक स्वतंत्रता" शीर्षक वाले मेरे शोध प्रबन्ध की काफी प्रशंसा की।

कांग्रेसियों के लिए सरदार पटेल ने जो अनुशासन और संहिता बनायी थी, उसका राजन बाबू ने श्रेष्ठ और सरल ढंग से प्रतिपादन किया। निस्संदेह वे दोनों ही महात्मा गांधी के सद्शिष्य के रूप में जाने जाते थे।

कांग्रेस आन्दोलन के दौरान विशेष रूप से राजन बाबू के मंत्रित्व काल में हम में से बहुतों के लिए यह आश्चर्य ही बना रहा कि गांधी जी की हल्की सी चेतावनी से आन्दोलन में संलग्न करोड़ों कांग्रेसी कैसे नियंत्रित हो जाते थे और उस चेतावनी को प्रभावी आदेश के रूप में कैसे स्वीकार कर लेते थे और मान लेते थे।

संविधान सभा के अध्यक्ष के रूप में, वह कानूनविदों को यह नेक सलाह देते थे कि वे हम में से अनेक लोगों के क्रांतिकारी विचारों के साथ अपने रूढ़िवादी दृष्टिकोण का सामंजस्य स्थापित कर लें। हमारे लिए यह हमेशा आश्चर्य की बात रही कि वह और डा० अम्बेडकर प्रगतिशील विचारों एवं दृष्टिकोणों के साथ सामंजस्य कर लेने वाले सूत्र ऐतिहासिक सीमाओं के अन्दर रहते हुए कैसे खोज लेते थे। कुल मिलाकर, राजन बाबू के नेतृत्व से न केवल डा० अम्बेडकर को, बल्कि समाजवादी विचारधारा के संविधान सभा के अन्य सदस्यों को भी विभिन्न रूप में सहायता मिली।

जब संविधान सभा के सदस्य कन्स्टिट्यूशन क्लब में अनौपचारिक रूप से यह निर्णय लेने के लिए इकट्ठा हुए थे कि प्रथम राष्ट्रपति के रूप में किसे चुना जाए, मैंने राजन बाबू, जिनके नाम पर जवाहरलालजी को कुछ आपत्तियां थी, का समर्थन करके एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की और उस पर प्रसन्नता और सन्तोष अनुभव किया। जैसे ही मैंने इस उच्च पद के लिए राजन बाबू के नाम का सुझाव देने के लिए अपने कारण बताए, जवाहरलालजी ने अपने सुझावों पर जोर नहीं दिया।

प्रथम राष्ट्रपति के रूप में राजन बाबू ने संवैधानिक मर्यादाओं और नैतिक आचार के जो भी उदाहरण प्रस्तुत किए, वे निश्चित रूप से प्रगतिशील सिद्ध हुए और परवर्ती राष्ट्रपतियों के लिए उन्होंने प्रकाश स्तम्भ का काम किया। अनेक अवसरों पर जब उन्होंने महसूस किया कि जवाहरलालजी का रुख अनुचित, असहनीय और सुस्थापित मानदंडों के विपरीत है, तो लिखित संवैधानिक उपबंध न होने के बावजूद उन्होंने उच्चतम न्यायालय को उनकी राय हेतु मामला भेजने का सुझाव देकर कटुता से बचने में अपनी बुद्धिमानी का परिचय दिया। उन्होंने अपने और प्रधान मंत्री के बीच मत-भिन्नता को कभी भी

सार्वजनिक रूप से उजागर नहीं होने दिया। उनके बाद के राष्ट्रपतियों ने इन पूर्वोदाहरणों को प्रेरणादायक तो नहीं, किन्तु अत्यधिक उपयोगी और संतोषप्रद पाया।

राजन बाबू गांधीवादियों में से जवाहरलालजी के अनुकूलतम साथी सिद्ध हुए और राजाजी प्रशासन और कांग्रेस की विचारगोष्ठियों में योग्यतम सिद्ध हुए। यह सचमुच में विधि का ही विधान था कि राजन बाबू और राजाजी दोनों ही गांधीजी के सच्चे साथी और पक्के विश्वासपात्र रहे।

4

मानवरत्नः डा० राजेन्द्र प्रसाद

—एस० निजलिंगप्पा*

सन् 1941 में व्यक्तिगत रूप से मेरे डा० राजेन्द्र प्रसाद के सम्पर्क में आने से पूर्व ही पूरे भारतवर्ष में इस बात के लिए उनकी गिनती महान नेताओं में शीर्ष नेताओं के रूप में होने लगी थी कि उन्होंने गांधीजी का अनुकरण करने और चम्पारन में प्रथम सत्याग्रह में भाग लेने के लिये वकालत जैसे उस लाभप्रद धंधे को त्याग दिया था जिसमें उन्हें काफी ख्याति मिल रही थी।

मैसूर कांग्रेस, जोकि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से पृथक थी, का तीसरा वार्षिक अधिवेशन चित्तदुर्ग जिले में वर्ष 1939 में शुरू हुए वन सत्याग्रह की सफलता, जिसमें हजारों व्यक्तियों को न्यायालय से सजा मिली थी, के बाद उस जिले के हरिहर नगर के निकट एक गांव में 1941 में हुआ था। हमें सितम्बर, 1940 में रिहा कर दिया गया था। इस राज्य के लोग, विशेषकर इस जिले के लोगों में इस अधिवेशन को एक ऐतिहासिक अधिवेशन बनाने के लिये काफी उत्साह था। मैं स्वागत समिति का अध्यक्ष था। हमने वहा एक सफल खादी और ग्रामोद्योग प्रदर्शनी की व्यवस्था की थी और हमारे द्वारा आयोजित प्रदर्शनी सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शनियों में से एक थी। अतः हम गांधीजी के पास गए और उनकी अनुमति से अपने संगठन को "मैसूर कांग्रेस" का नाम दिया। उस समय मैसूर दूसरा सबसे बड़ा और सबसे प्रगतिशील राज्य था और सभी राज्यों में मैसूर कांग्रेस सबसे शक्तिशाली राजनैतिक दल था। हमने गांधीजी से अनुरोध किया कि कांग्रेस अधिवेशन करने और खादी प्रदर्शनी का उद्घाटन करने के लिये बाबू राजेन्द्र प्रसाद को हमारे यहां भेजा जाए। वह उन्हें भेजने के इच्छुक नहीं थे परन्तु हमारे बार-बार कहने और हमारे द्वारा प्रदर्शनी के लिये की गई व्यापक व्यवस्था को देखते हुए वे मान गए और हमें चेतावनी दी कि—"मैं आपको एक मानवरत्न भेज रहा हूं। उनका ध्यान रखें। वे अस्वस्थ हैं।"

तदनुसार, राजन बाबू हरिहर अधिवेशन में आए, इसका उद्घाटन किया और प्रदर्शनी

*श्री निजलिंगप्पा, संविधान सभा के सदस्य एवं कर्नाटक राज्य के भूतपूर्व मुख्यमंत्री हैं।

शुरू करके उनको अपार प्रसन्नता हुई। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि हमने इतनी विशाल प्रदर्शनी का आयोजन किया है और वें बड़े प्रभावित और प्रसन्न हुए। उन्हें इस बात की भी खुशी थी कि वहां का मौसम गर्म था और इससे उनको दमा (श्वास) रोग से कोई कठिनाई नहीं हुई। हमने उन्हें पर्याप्त मात्रा में गन्ने का रस दिया, जिसे उन्होंने बहुत पसन्द किया। हमने उनसे राज्य का दौरा करने का अनुरोध किया और उन्होंने राज्य का दौरा किया। इससे हमारी लोकप्रियता में काफी वृद्धि हुई और इसके परिणामस्वरूप हमारी प्रतिष्ठा और शक्ति में भी वृद्धि हुई। इसके लिये, हम उनके आभारी थे।

सन् 1946 में कर्नाटक प्रदेश कांग्रेस समिति का अध्यक्ष बनने के बाद, मुझे कस्तूरबा ट्रस्ट के लिये चन्दा एकत्र करने हेतु, डा० प्रसाद का बम्बई राज्य के चार कन्नड़ जिलों—धारवाड़, बेलगांव, बीजापुर और उत्तरी कैनारा जिलों का दौरा आयोजित करने का अनुपम अवसर प्राप्त हुआ। भारी संख्या में लोगों द्वारा यहां तक कि गावों में भी उनके भव्य स्वागत और अपनी क्षमता से अधिक दान को देखकर मैं अति प्रसन्न हुआ और इसके दो मुख्य कारण थे—एक धन एकत्रित—दान करने का उद्देश्य और दान प्राप्तकर्ता के प्रति लोगों की श्रद्धा और मान।

उसी वर्ष मैं संविधान सभा के लिए निर्वाचित हुआ । भारतीय संविधान सभा के अध्यक्ष पद के लिये बाबू राजेन्द्र प्रसाद सर्वसम्मत और निर्विरोध चुने गए। इस सभा ने नवम्बर, 1946 से जनवरी, 1950 तक तीन वर्ष तक विचार विमर्श करने के बाद संविधान तैयार किया जो विश्व के सर्वश्रेष्ठ संविधानों में से एक है।

डा० बी० आर० अम्बेडकर के नेतृत्व में, उस समय राष्ट्र में उपलब्ध सबसे अधिक बुद्धिमान व्यक्तियों द्वारा तैयार किए गए संविधान में स्वतन्त्र भारत की आकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित किया गया है। डा० राजेन्द्र प्रसाद भारत को अच्छी प्रकार से जानते थे और गांधीजी के सर्वश्रेष्ठ अनुयायी थे, जो गांधीजी के सिद्धान्तों को, जिन्हें बहुत कम लोग समझते थे, अच्छी प्रकार से समझते थे और वे यह जानते थे कि भारत की समस्याओं के लिये गांधीजी के सिद्धान्तों का किस प्रकार उपयोग किया जाये। राष्ट्रपति के रूप में डा० प्रसाद ने पूरी समझदारी और सावधानी से संविधान का पालन किया। अपने समय के और आज तक के वे सब से बुद्धिमान कानून विशेषज्ञ थे। उनकी गरिमा, विनम्रता और निष्पक्षता दूसरों के लिए आदर्श थी। देखने में वे एक लम्बे-तगड़े बिहारी किसान लगते थे। परन्तु वे सबसे बुद्धिमान कानूनज्ञाता और चतुर व्यक्ति थे। संविधान सभा की

अध्यक्षता की अवधि और भारत का राष्ट्रपति बनने के बाद, दोनों ही अवधियों में मुझे उनसे मिलने के अनेक अवसर प्राप्त हुए । मैंने हमेशा ही उन्हें दयालु, शिष्ट और समझबूझ वाला व्यक्ति पाया। हमेशा ही ऐसी बैठकों के बाद मैंने अपने आपको सन्तुष्ट और पहले से अधिक समझदार अनुभव किया। मेरे लिये वे सबसे अधिक मूल्यवान क्षण थे।

सन् 1948 से लेकर 1969 (दो वर्षों को छोड़कर) के कांग्रेस विभाजन तक की अवधि के दौरान, मुझे कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के सदस्य के रूप में कांग्रेस के सभी नेताओं के साथ कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ। चार शीर्षस्थ नेताओं के बारे में धारणा इस प्रकार है—गांधीजी के प्रति सभी श्रद्धा रखते थे; सरदार से अनावश्यक रूप से डरते थे; नेहरू को प्यार करते थे और राजेन्द्र प्रसाद का सभी सम्मान करते थे। एक बार बंगाल और बिहार के विवादग्रस्त सीमा-निर्धारण पर चर्चा के अवसर पर, राजेन्द्र प्रसाद ने अपना धैर्य खोया था। सरदार पटेल और राजेन्द्र प्रसाद की राय अलग-अलग थी। सरदार पटेल एक विशेष तर्क पर बल दे रहे थे और राजेन्द्र प्रसाद किसी दूसरे पर। मेरे विचार से राजेन्द्र प्रसाद ठीक थे। काफी चर्चा के बाद जब उनके मत को स्वीकार नहीं किया गया तो वह अपना धैर्य खो बैठे और गुस्से में कहा: "यदि ऐसा है तो फिर बल का प्रयोग होगा।" राजन बाबू के मुख से निकले ये शब्द इतने सशक्त थे कि संपूर्ण समिति में कुछ समय के लिये सन्नाटा छा गया और इस मुद्दे को ही त्याग दिया गया था। मैं समझता हूं कि उन्होंने अपनी बात मनवा ली।

एक अन्य अवसर पर ऐसा तब हुआ जब उन्होंने दोहरे सदस्य निर्वाचन क्षेत्रों के मामले पर कड़ा रुख अपनाया जिसमें अनुसूचित जाति का उम्मीदवार केवल गैर-अनुसूचित जाति के उम्मीदवार के साथ मिलकर ही खड़ा हो सकता था। कार्यकारी समिति में जब यह मामला उठा तो बाबू राजेन्द्र प्रसाद ने इसे, दोहरे सदस्य निर्वाचन क्षेत्रों के खिलाफ एक सशक्त मामला बना कर पेश करते हुए कहा था कि हम अभागे लोगों को कब तक अन्य समुदायों के लोगों पर निर्भर बनाये रखेंगे। हमें उन्हें अपने पैरों पर खड़ा होकर संघर्ष करने की छूट देनी चाहिये। उन्होंने अपनी यह बात मनवा ली।

संविधान पारित कर भारत के गणराज्य बनने और पहली लोक सभा के चुनाव होने के बाद अगला मुद्दा भारत के राष्ट्रपति का चुनाव था। इण्डियन नेशनल कांग्रेस स्वाभाविक ही शासक दल था और पंडित नेहरू भारत के प्रधान मंत्री।

कांग्रेस दल को संसद में संविधान को पारित किए जाने के बाद भारत के राष्ट्रपति का चयन करना था। इस प्रयोजन हेतु बुलाई गई दलीय बैठक में प्रधान मंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने राजाजी (श्री सी॰ राजगोपालाचारी) के नाम का सुझाव देकर तथा इस

उच्चपद के लिये राजाजी को योग्य सिद्ध करने के लिये 45 मिनट तक तर्क प्रस्तुत करके हमें आश्चर्य में डाल दिया। लेकिन सभी ने संपूर्ण पहलुओं पर विचार करने के बाद एक ही व्यक्ति, डा० राजेन्द्र प्रसाद, को इस महान पद के योग्य बताया। पंडितजी जानते थे कि कब और किस स्थिति में उन्हें हार स्वीकार कर लेनी चाहिये। मेरा संदेह है कि दोनों नेताओं के बीच सब कुछ इतना ठीक नहीं था। शायद यह मनमुटाव डा० राजेन्द्र प्रसाद की मृत्यु तक बना रहा।

राष्ट्रपति पद का पहला कार्यकाल पूरा होने के बाद कांग्रेस दल को राष्ट्रपति का चयन करना था। मैं समझता हूं कि नेहरू और राजाजी के बीच मतभेद थे और इस बार पंडित जी ने राजाजी की बजाय डा० राधाकृष्णन् के नाम के बारे में सदस्यों से आग्रह किया। इस बार भी सदस्यों की आम धारणा आड़े आ गई और वे नहीं चाहते थे कि जब तक राजेन्द्र प्रसाद जीवित हैं किसी अन्य व्यक्ति के नाम को सहन किया जाये और उन्होंने अपनी इस राय को स्पष्ट कर दिया। डा० प्रसाद को दूसरी बार इतनी ही गर्म-जोशी के साथ चुना गया जितनी पहली बार चुना गया था। नामांकन पत्र आदि भरने के लिये दी गई अल्प अवधि के दौरान, मैं डा० प्रसाद के पास गया था और उन पर दबाव डाला था कि वह किसी भी स्थिति में अपना नाम वापस न लें। वह तो नामांकन पत्र भी नहीं भरना चाहते थे, लेकिन अपने प्रशंसकों और मित्रों के दबाव में आकर उन्होंने नामांकन पत्र भरा। उन्होंने मुझसे कहा था कि वह आगे इस बारे में इच्छुक नहीं है और अब पद-मुक्त होना चाहते हैं। लेकिन मैंने और अन्य व्यक्तियों ने उन पर दबाव डाला। इस दौरान शायद पंडित नेहरू भी उनके पास गये। उन दोनों की बीच क्या हुआ हमें नहीं मालूम। सिर्फ अफवाहें थीं।

एक और मौके को मैं कभी नहीं भूल सकता जब 1956 में संसद द्वारा राज्य-पुनर्गठन विधेयक पारित करने के बाद भाषायी आधार पर राज्यों का गठन किया गया था। मैं राज्य का पहला मुख्यमंत्री बना और मैसूर के महाराजा श्री जयचमराजा वाडियर को राज्य का राज्यपाल नियुक्त किया गया। उस समय वह नये कर्नाटक राज्य का उद्घाटन करने बंगलौर आये थे। मेरा ऐसा विचार है कि इस नये राज्य का श्रीगणेश उनके शुभ आशीर्वाद के साथ हुआ।

भारत के राष्ट्रपति के तौर पर उनकी सेवाओं को भुलाया नहीं जा सकता और ये ठोस ऐतिहासिक तथ्य हैं। उन्होंने भावी राष्ट्रपतियों के लिये संविधान में निहित इस पद की गरिमा के अनुसार कार्य करने की शुरुआत की। उन्होंने इस उच्चपद की गरिमा और अधिकारिता को परिपुष्ट किया, हालांकि उनके और प्रधान मंत्री के बीच कतिपय मतभेद थे।

डा० प्रसाद के बाद अगले राष्ट्रपति सिर्फ डा० राधाकृष्णन् ही हो सकते थे और वही विकल्प थे और ठीक ही उन्हें निर्वाचित किया गया था। यह सर्वोत्तम विकल्प था और डा० राधाकृष्णन् ने इस उच्च पद की गरिमा को उतना ही बनाये रखा, जितना उनके पूर्ववर्ती डा० राजेन्द्र प्रसाद ने बनाये रखा था।

जैसी आशा थी, डा० प्रसाद अपने सदाकत आश्रम चले गये और वहां उन्होंने अपने जीवन की अन्तिम सांस तक सादा और उत्कृष्ट जीवन जिया। वह गांधी जी द्वारा शुरू किए गए स्वतन्त्रता संग्राम के बड़े नेताओं में से एक थे। उनका नाम ऐसे कुछेक लोगों में शामिल है, जिन्होंने गांधी जी के सिद्धान्तों को आत्मसात किया तथा उनके अनुयायी बने।

बाबू राजेन्द्र प्रसाद ने एक गौरवपूर्ण जीवन जिया। वह भारत के एक महान सपूत थे। जैसा कि गांधी जी ने कहा था कि वह एक "मानव रत्न" थे।

5

राजन बाबू

—डा० बलराम जाखड़*

बिहार के एक साधारण से गांव में जन्मे डा० राजेन्द्र प्रसाद सादगी, विनम्रता और गांधीवादी मूल्यों के मूर्त रूप थे तथा हमारी संस्कृति का सर्वोत्तम स्वरूप उनके व्यक्तित्व में समाया हुआ था। मगध की ऐतिहासिक भूमि में पलकर वह इतने उभरे कि उनकी गिनती भारत के स्वतंत्रता-आन्दोलन के अग्रगण्य नेताओं में होने लगी तथा कालांतर में वह हमारे गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति बने।

डा० प्रसाद को प्यार से राजन बाबू के नाम से पुकारा जाता था। पंडित नेहरू और सरदार पटेल के साथ मिलकर वह एक ऐसी पावन त्रिमूर्ति के रूप में सामने आए, जिसने हमारे स्वतंत्रता संघर्ष को गांधीवादी नेतृत्व की विशिष्टता प्रदान की। गांधीजी के नेतृत्व में भारत की स्वतंत्रता के लिए किए गए संघर्ष के प्रति उनकी निष्ठा और त्याग अनुकरणीय है, वह सम्भवतः गांधी जी के सबसे अधिक वफादार और निष्ठावान सिपाही थे, जिसका प्रमाण गांधी जी द्वारा एक बार स्वयं कही गई निम्नलिखित पंक्तियां हैं:

> "कम से कम एक आदमी के बारे में तो मैं यह कह सकता हूं कि वह मेरे हाथ से विष का प्याला पीने में भी नहीं हिचकेगा।"

सन् 1908 में, कलकत्ता विश्वविद्यालय के एक विद्यार्थी के रूप में, राजेन्द्र बाबू ने उन दिनों सम्पूर्ण भारत में अपनी प्रकार की पहली बिहारी स्टुडेन्ट्स कान्फ्रेंस आयोजित की थी। इस संगठन की महत्ता इस तथ्य से पता चलती है कि इसके बाद आगामी दशक में बिहार का सारा राजनीतिक नेतृत्व मुख्यतः इस संगठन में से उभरा था। यह राजन बाबू की संगठनात्मक योग्यता का प्रथम परिचय था। तत्पश्चात् आने वाले वर्षों के दौरान, उन्होंने अपने आप में एक राजनेता, एक विद्वान, एक इतिहासविद्, एक शिक्षाविद्, एक समाज सुधारक और इनसे भी ऊपर एक रचनात्मक विचारक और दार्शनिक के उत्कृष्ट गुणों का समावेश कर लिया।

---

*डा० जाखड़ लोक सभा के भूतपूर्व अध्यक्ष हैं।

डा० राजेन्द्र प्रसाद ने विशेष रूप से स्वतंत्रता मिलने से ठीक पहले और बाद में, देश की नियति का अत्यंत कुशलता से मार्ग-निर्देशन किया। स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान, वे तीन बार कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष चुने गए। जब सन् 1946 में भारत का संविधान बनाने के उद्देश्य से संविधान सभा बनाई गई, तो राजेन्द्र बाबू इसके अध्यक्ष चुने गए। सन् 1950 में, वह इस गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति बने और तेरह वर्षों की लम्बी अवधि तक अर्थात् सन् 1962 तक वह पद को सुशोभित करते रहे।

संविधान सभा के अध्यक्ष के रूप में उनके द्वारा किया गया कार्य उनकी उच्च योग्यताओं का एक उत्तम उदाहरण है। इस रूप में उन्होंने संविधान सभा के कार्य का बड़ी दक्षता, संयम और दूरदृष्टि से निर्देशन, नियंत्रण और संचालन किया। ऐसा नहीं कि सभा के कार्य के संचालन के बारे में कभी किसी को कोई शिकायत अथवा आपत्ति न हुई हो, लेकिन सभी ने यह अनुभव किया कि वाद-विवाद बेलाग और स्पष्ट था। संविधान सभा के पहले ही सत्र के दौरान, उन्होंने घोषणा की थी कि हालांकि सभा की स्थापना सीमाओं के अन्तर्गत हुई है, लेकिन यह खुल कर तथा एक प्रभुसत्ता प्राप्त इकाई के रूप में काम करेगी और किसी बाहरी प्राधिकरण को मान्यता नहीं देगी। उन्होंने ने केवल भारतीय गणतंत्र के जन्म में ही सहायता की, बल्कि इसके परवान चढ़ने के वर्षों के दौरान अपने भरपूर प्रेम और गर्व से इसका पालन-पोषण किया।

संविधान सभा के अध्यक्ष के रूप में अपने अंतिम भाषण में राजन बाबू ने कहा था:

> "यह संविधान किसी बात के लिए उपबन्ध करे या न करे, देश का कल्याण उस रीति पर निर्भर करेगा, जिसके अनुसार देश का प्रशासन किया जाएगा। देश का कल्याण उन व्यक्तियों पर निर्भर करेगा, जो देश पर प्रशासन करेंगे ... हम में साम्प्रदायिक भेद है, जातिगत भेद है, भाषा के आधार पर भेद हैं, प्रान्तीय भेद है और इसी प्रकार के अन्य भेद हैं। इसके लिए ऐसे दृढ़ चरित्र व्यक्तियों की, ऐसी दूरदर्शी लोगों की और ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता है, जो छोटे-छोटे समूहों और क्षेत्रों के लिए पूरे देश के हितों का परित्याग न करें और जो इन भेदों से उत्पन्न हुए पक्षपात से परे हों। हम केवल यह आशा ही कर सकते हैं कि देश में ऐसे लोग बहुत मिलेंगे।"

भारत के राष्ट्रपति के पद पर आसीन रहने के दौरान, उन्होंने अपने गौरवपूर्ण आदर्शवाद, उद्देश्य के प्रति निष्ठा और चरित्र की सम्पूर्णता से प्रत्येक का हृदय जीत लिया। हालांकि संविधान की योजना के अनुसार, वह केवल नाममात्र के प्रमुख थे,

लेकिन उन्होंने अपने नियंत्रित प्रभाव का ही प्रयोग किया और शांतिपूर्वक और सहज रूप से अपने उच्च पद की गरिमा बनाए रखते हुए सरकार की नीतियों और कार्यों का संचालन किया।

भारत के राजनीतिक और सार्वजनिक जीवन में, राजन बाबू द्वारा की गई सेवाएं और योगदान अतुलनीय हैं। उनकी विद्वता और हृदय की सरलता, विशेषकर उनके सम्पर्क में आए लोगों को भुलाये नहीं भूलेगी। वह अच्छाई और नम्रता के मूर्तरूप थे। उनमें बुद्धिमत्ता के साथ शक्ति तथा विनम्रता के साथ प्रतिष्ठा का संयोग था। वह एक ऐसे व्यक्ति थे, जिनमें तीक्ष्ण विद्वता, अद्भुत स्मरणशक्ति, अटूट निष्ठा और आदर्श चरित्र तथा मानवीयता एवं कर्तव्यपरायणता के गुण कूट-कूट कर भरे हुए थे। इन सबसे बढ़कर वह मानवता के सच्चे पुजारी थे। ये सब गुण उन्हें एक विशिष्ट एवं महान व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं, वह वास्तव में एक राजर्षि और अजातशत्रु थे।

राजन बाबू के साथ पांच दशकों के संबंधों का स्मरण करते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरू ने एक बार कहा था कि:

> "वह एक साधारण से पद से भारत के सर्वोच्च पद तक पहुंचे और फिर भी, इससे उनके रहन-सहन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह एक महान व्यक्ति थे तथा बहुत ही साधारण और विनम्र स्वभाव के थे। उन्होंने एक ऐसा उदाहरण स्थापित किया, जिससे भारत की मर्यादा और सम्मान को बढ़ावा मिला.....वास्तव में, वह भारत के एक प्रतीक बन गए थे।"

राजन बाबू के बहुमुखी व्यक्तित्व के बारे में कोई विचार-विमर्श करना, धर्म के प्रति उनकी आस्था और दृष्टिकोण तथा समाज में, उनके द्वारा निभाई गई भूमिका का उल्लेख किए बिना अपरिपूर्ण होगा। राजन बाबू वास्तव में एक सनातन हिन्दू और धार्मिक व्यक्ति थे। परन्तु वे धार्मिक आडम्बरों से प्रभावित नहीं हुए। उनके लिए धार्मिक आस्था का आधार भौतिक नहीं बल्कि आध्यात्मिक स्वरूप का था, उन्होंने कहा था कि सबसे उत्तम धर्म मनुष्य के आंतरिक अनुभवों से सम्बद्ध होता है, जोकि मानव मस्तिष्क में धार्मिक आस्था को जन्म देता है। दूसरी ओर, इसका अन्य स्वरूप किसी के भी दैनिक जीवन के व्यवहार और कृत्यों में देखा जा सकता है। व्यापक रूप से कहें तो इसका अर्थ है धर्म उन आस्थाओं और विचारों से मिलकर बना है, जो जीवन-उत्पत्ति तथा मनुष्य और ईश्वर के बीच के संबंधों के रहस्य की कुंजी है। उनके विचार में, धर्म ने ही शांति को वास्तविक आधार प्रदान किया। यह सभी साहित्यिक प्रयासों का भी अंतिम लक्ष्य था। इस प्रकार उन्होंने इस बात पर बल दिया कि धर्म मनुष्य के लिए एक व्यक्ति के रूप में तथा समाज में एक सदस्य के रूप में अत्यावश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य भी है।

राजन बाबू को इस तथ्य पर गर्व था कि भारत के संविधान में सभी नागरिकों के लिए धर्म, आस्था, विश्वास और उपासना की स्वतंत्रता के मूल अधिकार को सम्मिलित किया गया था। इसका कारण यह था कि इतिहास की उत्पत्ति के समय से ही हमारे पूर्वजों, संतों, फकीरों तथा अन्य धार्मिक नेताओं ने हमें सभी धर्मों के प्रति सहनशीलता, आस्था और सम्मान का पाठ पढ़ाया। कुछ लोग अक्सर यह कहते हैं कि एक धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र होने के कारण हम धर्म अथवा आध्यात्मिक भावनाओं में विश्वास नहीं करते। इन लोगों के बारे में उनका कहना है कि "इसका वास्तविक अर्थ यह है कि इस देश में सभी लोग अपनी इच्छा की आस्था का पालन अथवा प्रचार करने के लिए स्वतंत्र हैं तथा हम सभी धर्मों की सफलता की कामना करते हैं और उन्हें बिना किसी बाधा के अपने ढंग से ही विकसित होने देना चाहते हैं।"

एक सच्चे धार्मिक व्यक्ति होते हुए भी राजन बाबू ने किसी को भी उसके द्वारा इच्छित धार्मिक आस्था में बाधा खड़ी नहीं करना चाहा। उन्होंने इसे निम्न शब्दों में स्पष्ट किया है:

> "इसका अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य स्वयं को उन सभी निषेधादेशों तथा सामाजिक प्रतिबंधों से मुक्त समझे जो प्रारम्भ से ही संगठित और नियमित जीवन का आधार रहे हैं और जो उसकी व्यक्तित्वता तथा आदर्श सामाजिक व्यवस्था के विकास के लिए अनिवार्य है। इसका अर्थ यह है कि किसी भी व्यक्ति अथवा समाज को अन्य व्यक्तियों अथवा समाजों का दमन करके स्वयं प्रबल नहीं होना चाहिए और इन सभी को विकास के लिए पूर्ण अवसर मिलना चाहिए। यह तब ही सम्भव होगा जब प्रत्येक व्यक्ति और पत्येक समाज अन्य व्यक्तियों एवं समाजों की भावनाओं और हित के प्रति सम्मान प्रकट करेगा। अन्य व्यक्तियों और समाजों के दमन को केवल ईमानदारी के सिद्धान्तों के विरुद्ध ही नहीं समझा जाना चाहिए बल्कि इसे किसी भी व्यक्ति के हित के विपरीत समझना चाहिए। इस प्रकार, सच्चे प्रेम और सहनशीलता की भावना पैदा की जा सकती है, जिसके बिना व्यक्ति और समाज की सच्ची शांति और खुशहाली केवल एक कल्पना ही रह जाएगी।"

राजन बाबू, भारत में विभिन्नता से पूर्णतया अवगत थे। वे जानते थे कि भारत में बोली जाने वाली हमारी 15-16 मुख्य भाषाएं हैं। इसके अतिरिक्त, देश के अधिकांश भागों में अनेक बोलियां बोली जाती हैं। विश्व में ऐसा कोई भी धर्म नहीं है जिसके हमारे देश में लाखों अनुयायी न हों। उन्होंने हमारी संस्कृति के बारे में कहा है कि:

> "यह एक मिश्रित संस्कृति है, जो भी इस देश के सम्पर्क में आया, उन सभी का प्रभाव हमारी संस्कृति पर पड़ा है। इस देश ने विदेशियों के लिए कभी भी दरवाजे बन्द नहीं किये। हमारे सम्पूर्ण इतिहास में हमने किसी पर आक्रमण की पहल नहीं की।

हमें आक्रमणों का नुकसान भुगतना पड़ा, परन्तु हमने किसी अन्य देश पर कभी भी आक्रमण नहीं किया।"

14 अगस्त, 1957 को त्रिवेन्द्रम में शहीद स्तम्भ का उद्घाटन करते हुए उन्होंने कहा था कि:

"भारत विभिन्न संस्कृतियों, भाषाओं, धर्मों, रहन सहन के तरीकों का एक समूह है और इसकी विविधताओं में ही ऐसी एकता है जो सर्वोपरि है तथा जो राजनैतिक क्षेत्र में मतैक्य न होने तथा प्रकृति और मनुष्य द्वारा पैदा की गई सभी कठिनाइयों के बावजूद भी बरकरार रही है। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि भारत जैसे एक बड़े देश में ऐसी विविधताएं हैं। यदि आप याद करें तो हमारी जनसंख्या, आज की स्थिति के अनुसार, रूस को छोड़कर लगभग सम्पूर्ण यूरोप की जनसंख्या के बराबर है, तो आप इस विविधता तथा एकता के महत्व को समझ सकते हैं।"

"यूरोप में ऐसे अनेक देश हैं जो एक दूसरे से न केवल अलग हैं, बल्कि सदियों से एक दूसरे के शत्रु हैं। दूसरी तरफ भारत में 100 साल या 30 साल यहां तक कि 7 साल का भी युद्ध नहीं हुआ। कभी-कभी हमने आपस में लड़ाइयां लड़ीं, पर ये यूरोप के युद्धों जैसी विनाशकारी नहीं हुई और राजनैतिक विभाजन के बावजूद लोगों का सांस्कृतिक जीवन बिना किसी हस्तक्षेप के निर्बाध चलता रहा। यह महान एकता इसलिए संभव हो सकी, क्योंकि हमारे लोगों ने अनादि काल से जीओ और जीने दो, एक दूसरे को सम्मान देने तथा सहिष्णुता के उस सिद्धान्त को स्वीकार किया है, जिसे आधुनिक भाषा में सहअस्तित्व कहा जा सकता है।"

प्राचीन काल के लोगों का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि वे अपने संयम और धैर्य के लिए जाने जाते थे। भौतिक सम्पन्नता के सामने न तो उन्होंने जीवन के आध्यात्मिक पक्ष की उपेक्षा की और न ही अपनी आध्यात्मिक आवश्यकताओं के लिए भौतिक जीवन की उपेक्षा की। उनका उद्देश्य जीवन के इन दो पक्षों का संश्लेषण करना था और अपने प्रयासों में यह कुल मिलाकर असफल नहीं थे। ये वास्तव में देववचन हैं। क्या सद्भाव और संश्लेषण के उन भावों को पुनरुज्जीवित करना उचित नहीं है, जिससे कि हम एक सम्पन्न भारत का निर्माण करने योग्य हो सकें तथा साथ ही अपने लोगों का नैतिक स्तर ऊंचा उठा सकें।

एक दूसरे अवसर पर राज्न बाबू ने कहा था कि दूसरों के विचारों के प्रति सहिष्णुता की भावना ने ही हमारे देश में विभिन्न विचारों और दर्शन को पुष्पित किया, जो कि एक दूसरे के कभी अनुरूप नहीं थे तथा तार्किक और प्रत्यक्ष रूप से अनेक मामलों में एक दूसरे के विरोधी थे। "हमने इन विभिन्न विचारों के संस्थापकों को केवल ऋषि ही नहीं

माना, अपितु कभी-कभी इन्हें देवता भी बना दिया.....। संश्लेषण के एक उत्तम उदाहरण के रूप में हम देखते हैं कि आधुनिक भारत में बौद्ध धर्म का चर्च वाला रूप नहीं है, फिर भी बुद्ध के उपदेश प्रत्येक हिन्दू के जीवन का अभिन्न अंग बन गए हैं। उन्होंने फिर कहा कि "आज का हमारा राजनैतिक पंचशील" इसी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के स्वाभाविक विकास के रूप जन्मा है और हमारे संबंध में यह केवल नियम ही नहीं है, अपितु सक्रिय विश्वास की वस्तु है तथा हमारे वर्तमान के हित का आवश्यक अंग है, ये सब मिलकर हमें यह अस्तित्व के सिद्धान्त की शिक्षा देते हैं।"

राजन बाबू सच्चे अर्थों में एक महान देशभक्त और एक राजर्षि थे। उन्होंने कहा—

> "हम अपनी समृद्धि अवश्य चाहते हैं, परन्तु दूसरों की समृद्धि की कीमत पर नहीं। हम अपनी उन्नति अवश्य चाहते हैं, परन्तु अपनी उन्नति की इच्छा के लिए हम किसी को नष्ट करना नहीं चाहते, हम विकास करना चाहते हैं, परन्तु उग्र होकर नहीं, हम अपने लिए आजादी तो चाहते ही हैं परन्तु साथ ही साथ यह भी सुनिश्चित करना चाहते हैं कि दूसरे लोग भी स्वतंत्र हों। यही "अहिंसा" के सिद्धान्त का, जिस पर हमार सम्पूर्ण जीवन और संस्कृति टिकी हुई है, तात्पर्य है और यदि मैं कहूं, तो विश्व की राजनैतिक, धार्मिक और नैतिक विचार-धारा में यही सबसे बड़ा योगदान हो सकता है, जो किसी देश ने किया हो।"

6

देशरत्न डा० राजेन्द्र प्रसादः सच्चाई और सादगी के विरल साक्ष्य

—भागवत झा आजाद*

किसी राष्ट्र की ही नहीं समस्त विश्व के महान विरासत में भौतिक सम्पदा से अधिक उसकी बौद्धिक और रागात्मक सत्तायें उल्लेखनीय होती है। इसी प्रसंग में गणतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति देशरत्न डा० राजेन्द्र प्रसाद की महनीम स्मृति अपनी सर्जनात्मकता संपद्रित करती है। निश्चयपूर्वक देशरत्न का व्यक्तित्व सेवा, समर्पण और शील के उच्चतर मूल्यों का प्रतिमान है। यह इस देश का परम सौभाग्य है कि इसे अपनी आजादी की लड़ाई में और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद डा० राजेन्द्र प्रसाद जैसी विभूति का बहुमूल्य मार्गदर्शन मिला। इस राष्ट्र का यह भी सौभाग्य है कि गणतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति के रूप में डा. राजेन्द्र प्रसाद का मनोनयन हुआ। डा. राजेन्द्र प्रसाद ने लगभग बारह वर्षों तक देश की नियति को अपनी अद्भुत तेजस्विता और विनम्रता के प्रकाश से आलोकित किया।

भारतीय संस्कृति में जो भी सत्य, सहजता और उदारता अपने सारभूत में व्याप्त है, डा. प्रसाद वस्तुत; उसके प्रमाणिक साक्ष्य थे। महीयसी महादेवी वर्मा ने उनके सरल व्यक्तित्व को याद करते हुये रेखांकित किया है कि: "राजेन्द्र बाबू की मुखाकृति ही नहीं, उनके शरीर के सम्पूर्ण गठन में एक सामान्य भारतीय जन की आकृति और गठन की छाया थी, अतः उन्हें देखने वाले को कोई न कोई व्यक्ति स्मरण हो आता था और वह अनुभव करने लगता था कि इस प्रकार का व्यक्ति पहले भी कहीं देखा है। आकृति तथा रहन-सहन में सामान्य भारतीय या भारतीय कृषक का ही प्रतिनिधित्व करते थे। प्रतिभा और बुद्धि-विशिष्टता के साथ-साथ उन्हें जो गंभीर संवेदना प्राप्त हुई थी, वही उनके सामान्यता को गरिमा प्रदान करती थी। व्यापकता ही सामान्यता की शर्त है, परन्तु व्यापकता संवेदना की गहराई से स्थिति रखती है।"

*श्री आजाद भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री और बिहार के भूतपूर्व मुख्य मंत्री हैं।

आज कई शब्दों की तरह "नेता सेवा" आदि की भी तटस्थ अर्थवत्ता अपनी आभा खोती जा रही है। सनातन भारत की मूलभूत रचना के विशेष प्रसंग में नेता तो वही है या हो सकता है जो सच्ची भारतीयता के साँचे में ढला विरल व्यक्तित्व हो। वह ऐसा हो जिसमें "सुजलाँ सुफलाँ शस्य श्यामलाँ मातरम" की राष्ट्रीयता सहज किन्तु परम रूप में प्रतिभाषित होती हो।

डा. प्रसाद ने कई रूपों में राष्ट्र निर्माण में अपनी ऐतिहासिक भूमिका सम्पन्न की। जब भारत माता अपने सपूतों से त्याग और सेवा की अपेक्षा करती थी तब डा. प्रसाद ने देश के चरणों में अपना सब कुछ न्यौछावर करके राष्ट्रसेवा को ही अपना परम धर्म बनाया। भारत के संविधान की रचना में डा. प्रसाद का व्यक्तित्व और स्वभाव सहज रूप में परखा जा सकता है। राष्ट्रपति के रूप में इन्होंने अपने संदेशों में अहिंसा, शांति, मैत्री आदि उच्चारण मानवीय मूल्यों के अनुसरण का आह्वान किया। इन्होंने ही प्रथम बार बुद्ध और अशोक की पवित्र भूमि से ध्वंस, ईर्ष्या और आतंक से सहमी हुई विश्व मानवता को सभी प्रकार की हिंसा से उबार कर पृथ्वी को एक आत्मीय सुन्दर परिवार मानने का अनुरोध किया। इसके लिये डा. प्रसाद ने शक्तिशाली राष्ट्रों के समक्ष एकपक्षीय परमाणु निरस्त्रीकरण का अमोघ प्रस्ताव रखा। इस प्रकार डा. प्रसाद भारत के प्रथम राष्ट्रपति ही नहीं एक मुखर शांतिदूत भी थे।

राजेन्द्र बाबू ने राष्ट्रपति महात्मा गांधी के सच्चे अनुयायी बनकर सत्य और अहिंसा के मार्ग पर अपनी गौरवशाली जीवन-यात्रा को सार्थक किया। गाँधी जी की मान्यता थी कि हिंसक रास्ते से पाई हुई स्वतंत्रता सच्ची स्वतंत्रता नहीं होती, स्थायी नहीं होती। अहिंसा का अर्थ है विश्व प्रेम। महात्मा जी सत्य महात्म्य के बारे में कहते हैं: "कुम्हार मटका बेडोल बनाये तो दोष मटका का है या कुम्हार का? सत्याग्रही में सत्य का आग्रह-सत्य का बल होना चाहिये।" बापू के चरणों में बैठकर और सदा बापू के वचनों को याद करते हुये डा. प्रसाद ने स्वतंत्रता सेनानी, राष्ट्रपति और विशिष्ट भारतीय के रूप में ही नहीं यहां तक भारतीय संविधान का शिलान्यास रखते हुये भी, सत्य, अहिंसा और प्रेम के मूल्यों को सर्वोपरि स्थान दिया। सूक्ष्मता से मूल्यांकन किया जाये तो भारतीय संविधान का मुख्य स्वर मानवीय स्वतंत्रता, भाईचारा, और गरिमा को व्यंजित करता प्रतीत होगा। वस्तुतः डा. राजेन्द्र प्रसाद ने इस बात पर बल दिया कि उदात्त महाभाव ही लोकतंत्र के सुन्दर सुफल हैं।

विश्व के महान शांतिदूत और राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के एक सच्चे अनुयायी के रूप में डा. प्रसाद ने देश में ही नहीं पूरे संसार में हिंसा, युद्ध और द्वेष को त्याग कर शांति, प्रेम और मैत्री का वातावरण बनाने के लिये सभी वर्गों की जनता का आह्वान किया।

इन्होंने विश्व को विध्वंसक युद्ध के खतरों से उबारने के लिये शक्तिशाली देश के समक्ष एक तरफा परमाणु निरस्त्रीकरण का ऐतिहासिक प्रस्ताव रखा। ऐसे मानवीय प्रस्तावों के पीछे डा. राजेन्द्र प्रसाद के अहिंसा और शांतिपरक मूल्यों के प्रति उनकी गहरी निष्ठा को परखा जा सकता है। निस्संदेह अहिंसा अपने प्रभाव में विरल स्वीकारात्मक शक्तिशाली अमोघ अस्त्र है। अहिंसा के संबंध में बापू की यह सूक्ति सर्वथा उल्लेखनीय है कि सत्य के बाद असल में अहिंसा ही संसार में बड़ी से बड़ी सक्रिय शक्ति है, विफल तो वह कभी जाती ही नहीं। हिंसा सिर्फ ऊपर से ही सफल मालूम पड़ती है। इसलिये कि यही उच्चतर भाव, उन्हें एक और अपने गुरू महात्मा गांधी से संयुक्त करता है और दूसरी ओर वह राजेन्द्र बाबू को सत्ता से अधिक सत्य से संयुक्त करता है।

विशेषतः आधुनिक भारत के महान निर्माताओं की श्रेणी में राजेन्द्र बाबू सरल, जीवन और उच्च विचार वाले आदर्श के प्रकाश पुंज थे। डा. प्रसाद के अनुकरणीय जीवन यात्रा में सर्वथा इनके मन-वचन-कर्म की निश्छलता, सरलता और विनम्रता प्रतिभाषित होती रही। यही कारण है कि इनके सम्पर्क में आने के बाद हर व्यक्ति इनके शीलवान व्यक्तित्व से अभिभूत होकर अपने हृदय की क्षमताओं से ऊपर उठने की प्रेरणा पाता था। इसलिये आधुनिक भारत के राष्ट्रीय जीवन में राजेन्द्र बाबू अजातशत्रु ही नहीं अपितु परम श्रद्धेय प्रेमाश्रम व्यक्ति भी थे। सचमुच वे राष्ट्रीय चरित्र के उच्चतम मापदंड थे। इसलिये आज जब हम पग-पग पर चरित्र हनन, उदंड व्यवहार, असत्य, ईर्ष्या-द्वेष से वशीभूत कुत्सित आचरण के नमूने देखते सुनते हैं तो राजेन्द्र बाबू की शुभ मूर्ति हृदय चक्षुओं में अकस्मात् बिम्बित हो उठती है। आज देश अन्य संकटों के साथ-साथ चरित्र संकट से भी गुजर रहा है। भारत ऐसे विकासशील देश को शक्तिशाली अनेकों ताप विद्युतघरों, कल-कारखानों, तेज रफ्तार वाले वाहनों तथा द्रुतगति से बौद्धिक पेचीदगियों को सुलझाने वाले कम्प्यूटर और संयंत्रों की जबर्दस्त जरूरत है। किन्तु इन सभी के संवाहक और चालक तो मानवीय गुणों से पूरित व्यक्ति ही होंगे। अस्तु आज, भारत को पहले से अधिक चरित्रवान नागरिकों की पीढ़ी की परम आवश्यकता है। राजेन्द्र बाबू इसी चरित्र, सच्चाई और सादगी के प्रतीक थे। राजेन्द्र बाबू मानवीय और आध्यात्मिक मूल्यों के एक जीवन्त स्मारक के रूप में सदैव उद्भासित रहेंगे।

7

महान देश के महान राष्ट्रपति

—आर० रामानाथन चेत्तियार*

वर्ष 1949 के अन्त में मद्रास में राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में आयोजित अखिल भारतीय कृषि-आर्थिक सम्मेलन में, इसके स्वागत समिति से सम्बद्ध होने के कारण उस महान व्यक्तित्व, डा० राजेन्द्र प्रसाद, से मेरा परिचय हुआ और सही मायने में कुछ सप्ताह तक उनके साथ कार्य किया। उस समय मैं मद्रास का शैरिफ था। बाद में, 1951 में, जब मैं मद्रास का महापौर था, मैं नई दिल्ली गया और भारत के राष्ट्रपति के रूप में उनकी मद्रास यात्रा के दौरान रिपन बिल्डिंग्स, मद्रास में एक स्वागत समारोह में उपस्थित होने के लिए उनसे अपना विनम्र आमंत्रण स्वीकार करने का अनुरोध किया। उन्होंने मुझसे कहा कि समारोह खुले मैदान में आयोजित किया जाना चाहिए, जहां लोग एकत्रित हो सकें और मुझसे मिल सकें। जब मैंने उन्हें एक नृत्य कार्यक्रम का सुझाव दिया तो उन्होंने मुझसे कहा कि युवा कलाकार पूर्ण रूप से गैर-व्यावसायिक होने चाहिएं। मैं अपने कुछ मित्रों की सहायता से यह व्यवस्था कर सका।

डा० राजेन्द्र प्रसाद, मद्रास के मुख्य मंत्री श्री पी० एस० कुमारस्वामी राजा के साथ मेरे, मद्रास के निगम पार्षदों और अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों के साथ चाय पान हेतु रिपन बिल्डिंग्स में आए। द्रविण मुनेत्र कड़गम के दो पार्षदों ने राष्ट्रपति को परेशानी से बचाने के लिए समारोह में अपने आप को अलग रखने की अनुमति मांगी थी, क्योंकि जिस संविधान सभा के वह अध्यक्ष थे, उसने हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने का संकल्प पारित किया था, इसलिए उनके दल की इसके विरोध में राष्ट्रपति को काले झंडे दिखाने की इच्छा थी। मैं राष्ट्रपति को खुली कार से निगम के स्टेडियम में ले गया, जहां उनके स्वागत के लिए 20,000 लोगों की भीड़ जमा थी। राष्ट्रपति ने युवा कलाकारों को उनके भारत नाट्यम के प्रदर्शन पर अनुग्रहपूर्वक उन्हें स्मृति चिन्ह प्रदान किए।

---

*श्री चेत्तियार भूतपूर्व संसद सदस्य (लोक सभा) हैं।

लोक सभा का सदस्य होने के नाते डा० राजेन्द्र प्रसाद के राष्ट्रपति पद की दूसरी अवधि (वर्ष 1957 से 1962) के दौरान, मैं समय-समय पर उनसे मिलता था। मैं उनका कृपा पात्र था। वे महान विद्वान थे और उन्होंने एक महान देश के महान राष्ट्रपति के रूप में अपना कर्तव्य निभाया। वर्ष 1962 में अपने पद से निवृत्त होने के बाद विशेष रेलगाड़ी द्वारा उनके गृह नगर पटना को प्रस्थान के अवसर पर, उन्हें विदाई देने के लिए नई दिल्ली रेलवे स्टेशन पर उपस्थित व्यक्तियों में मैं भी था। वह सचमुच में एक भाव-विह्वल कर देने वाला दृश्य था।

8

डा० राजेन्द्र प्रसाद: उनका बचपन और ग्रामीण जीवन

—वाल्मीकि चौधरी*

राजेन्द्र प्रसाद के दादा दो भाई थे। बड़े चौधुर लाल और छोटे मिश्री लाल। मिश्री लाल के एकमात्र संतान महादेव सहाय थे। महादेव सहाय ही राजेन्द्र प्रसाद के पिताश्री थे।

महादेव सहाय के तीन लड़कियां और दो लड़के हुए। सबसे बड़ी लड़की भगवती देवी, दूसरी लड़की अनारकली, तीसरी लड़की तो बचपन में ही स्वर्ग सुधार चुकी थी। चौथे महेन्द्र प्रसाद और सबसे छोटे राजेन्द्र प्रसाद हुए।

चौधुर लाल और मिश्री लाल दो आदर्श भाई थे। चौधुर लाल ही हथुआ राज के दीवान थे। हथुआ के महाराजा राजेन्द्र प्रसाद साही, दीवान मुंशी चौधुर लाल की पिता तुल्य इज्जत करते थे। यहां तक कि इनके सामने हुक्का कभी नहीं पीते थे। जब कभी पी रहे होते और मालूम होता कि दीवान जी आ रहे हैं तो तत्काल उसे हटवा दिया करते थे। उनको सम्मान के साथ बैठने को कहते। हरेक काम उनकी सलाह से किया करते थे। राज का सारा काम उनकी राय से चलता था।

राजेन्द्र प्रसाद के दादा मिश्री लाल वैद्य और परोपकारी थे। गांव में दवा बांटने का काम करते थे। जड़ी-बूटियों को अच्छी तरह पहचानते थे। उन जड़ी-बूटियों को घर में कूट कर तरह-तरह की दवाएँ तैयार करते थे। गांव और आस-पास के दूसरे गांव से मरीज लोग इनके पास आते थे। सबको एक समान देखते, दवा देते। गरीबों को मुफ्त बनी बनाई दवा देते थे। इनके हाथ में बड़ा यश था। जिस पर हाथ रखते थे, अच्छा हो जाता था।

मिश्री लाल के एकमात्र संतान महादेव सहाय बड़े तन्दुरूस्त थे; किन्तु गम्भीर और

*श्री चौधरी भूतपूर्व संसद सदस्य (लोक सभा) एवं डा० राजेन्द्र प्रसाद के पूर्व निजी सचिव हैं।

शीलवन्त व्यक्ति थे। उन्हें दीन-हीन की मदद करने में आनन्द मिलता था। गांव और आस-पास के नौजवानों को कुश्ती लड़ने, मुग्दर सीखने और तन्दुरूस्ती बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करते रहते थे।

महादेव सहाय, राजेन्द्र प्रसाद के पिताश्री कुशल गृहस्थ थे। बाग-बगीचा लगाने का भी शौक था। उन्हीं के समय का जो बगीचा लगा है वह अब भी फल दे रहा है। अपने समय में इन्होंने अपने घर की प्रतिष्ठा बढ़ाई। धन-दौलत, जमींदारी, खेती, गृहस्ती सब में अपने परिश्रम से ही वृद्धि की और एक सुन्दर परिवार के बनाने में जो कुछ कर सकते थे, किया।

बहन भगवती देवी राजेन्द्र प्रसाद से पन्द्रह साल बड़ी थी। परिवार में सबसे बड़ी संतान थी। इनका लालन-पालन बड़े लाड़-प्यार से हुआ और शादी बड़े अरमान के साथ की गई। शादी धूम-धाम से इसलिए भी की गई कि महादेव सहाय के समय में लड़की की यह पहली शादी थी। दुर्भाग्य से श्रीमती भगवती देवी पन्द्रह साल की उम्र में विधवा हो गईं। यह एक चोट थी।

विधवा होने के बाद वे अपने मां-बाप के पास लौट आईं। ईश्वर भक्ति, पूजा-पाठ, व्रत, तीर्थाटन में अपना समय व्यतीत करती रहीं। जीवन भर इस परिवार ने भगवती देवी को सिर-आँखों पर रखा। बड़ी होने के नाते वे पितृ-परिवार की मालकिन की तरह रहीं। किसी ने उनका हाथ नहीं रोका, न ही किसी ने उनके सामने अपनी जबान खोली।

राजेन्द्र प्रसाद के परिवार में विधवा की मर्यादा को उच्च स्थान दिया गया। अतः भगवती देवी के मान सम्मान में उनके विधवा हो जाने की वजह से कोई कमी नहीं आई, बल्कि उन्हें घर के और लोगों के साथ उनकी प्रतिष्ठा बनी रही।

जब राजेन्द्र प्रसाद भारत के राष्ट्रपति हो गए तब भगवती देवी भी राष्ट्रपति भवन में रहने लगीं। मृत्यु पर्यन्त वे वहीं रहीं। उनका निधन 26 जनवरी 1956 को प्रातःकाल राष्ट्रपति भवन में हुआ।

भगवती देवी का कुछ विस्तार से उल्लेख यह बताने के लिए किया गया है कि राजेन्द्र प्रसाद के परिवार में विधवा को उस दृष्टि से नहीं देखा गया जैसे उसे साधारणतया देखा जाता है। हिन्दू परिवार में, विशेषतया कट्टर सनातनी परिवार में, विधवा को पग-पग पर घोर अपमान और मानसिक यातना सहनी पड़ती है। मांगलिक अवसरों पर उसकी

उपस्थिति अशुभ मानी जाती है, परन्तु राजेन्द्र प्रसाद के परिवार ने अपनी विधवा बेटी को भरपूर सम्मान दिया। इतना सम्मान कि वह अपनी वैधव्य व्यथा भूल गई।

महादेव सहाय के दो बेटे थे। बड़ा महेन्द्र प्रसाद और छोटा राजेन्द्र प्रसाद। महेन्द्र प्रसाद और राजेन्द्र प्रसाद आदर्श भाई थे। महेन्द्र प्रसाद, राजेन्द्र प्रसाद से आठ साल बड़े थे। सही अर्थों में राजेन्द्र प्रसाद के अभिभावक महेन्द्र प्रसाद ही थे, राजेन्द्र प्रसाद बड़े भाई महेन्द्र प्रसाद से हर विषय पर सलाह और अनुमति लेते थे। यहां तक कि जब कभी राजेन्द्र प्रसाद को परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर दो गुणा तरक्की प्राप्त करना हुआ बगैर भाई से स्वीकृति लिए तरक्की स्वीकार नहीं की। राजेन्द्र प्रसाद को अपने लिए कोई चीज मांगने की कभी जरूरत नहीं पड़ी। इनके बड़े भाई इनकी जरूरत की सभी चीजें बगैर मांगे इनको देते रहे। प्रत्येक व्रत त्यौहार में राजेन्द्र प्रसाद के लिए कपड़े बनवा दिया करते। खान-पान इनका समय पर हो, देखभाल ठीक से हो, इसके लिए एक आदमी छात्र जीवन से ही लगा दिया था। जब तक महेन्द्र प्रसाद जीवित रहे तब तक राजेन्द्र प्रसाद के स्वयं का फिर परिवार घर-गृहस्थी का भार उठाने नहीं दिया। इसलिए कि वह निश्चिंत होकर पढ़ें, वकालत करें, फिर सार्व काम में जब जुट गए तब तो और अधिक इस बात का वह ध्यान देने लगे कि राजेन्द्र प्रसाद को किसी चीज या बात की तकलीफ या चिन्ता न रहे।

राजेन्द्र प्रसाद ऐसे अनुपम भाई को पिता तुल्य मानते थे। बगैर पूछे अनुमति प्राप्त किए कोई काम नहीं करते थे। राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी आत्मकथा लिखी तब उसको पिता तुल्य अपने भाई (महेन्द्र प्रसाद) को ही समर्पित किया। ऐसे भाई का स्वर्गवास 1934 में हुआ। उसके बाद ही राजेन्द्र प्रसाद को मालूम हो सका कि उनकी कितनी जमीन और जमींदारी है तथा घर में क्या-क्या चीज है। उस घर पर कर्ज भी है यह बात महेन्द्र प्रसाद के मरणोपरान्त ही राजेन्द्र प्रसाद जान सके।

बचपन और प्रारम्भिक शिक्षा

राजेन्द्र प्रसाद का जन्म जिला सिवान के जीरादेई गांव में विक्रमी संवत 1941 की अगहन की पूर्णिमा, तदनुसार 3 दिसम्बर, 1884 में हुआ! उस समय कौन कह सकता था कि ऐसे पिछड़े गांव में जन्म लिये बालक में ऐसी असामान्य प्रतिभा होगी। बड़ा होकर यह बालक देशरत्न के नाम से विख्यात होगा। भारत को गुलामी से मुक्त कराने में प्रमुख रूप से भाग लेगा और भारत जैसे विशाल बहुजातीय, बहुभाषी और बहुकर्मी गणतंत्र भारत का प्रथम राष्ट्रपति होगा।

उस समय की परम्परा के साथ उर्दू-फारसी में राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी पढ़ाई प्रारम्भ की। घर पर ही एक मौलवी साहब रखे गये। मौलवी साहब के रहने, खाने-पीने का प्रबन्ध घर पर ही था। मुख्य घर के साथ लगा हुआ बाहर एक कमरा था। उसी में वह

रहते थे। कमरे के सामने बरामदा था— उसी में उनका मकतब लगता था। यह कोई सन् 1889-90 के आसपास की बात है।

राजेन्द्र प्रसाद आठ साल की उम्र तक घर पर ही मौलवी साहब से पढ़ते रहे। तब न तो उस्ताद (अध्यापक) लालची होते थे, न तालिबे इल्म (विद्यार्थी) अभद्र और बेअदब। बेअदबी तब बदनसीबी का कारण मानी जाती थी। तब लोग उम्र का और उस्तादों का लिहाज करते थे।

मकतब में राजेन्द्र प्रसाद अपने दो साथियों के साथ सवेरे ही आ जाया करते थे। तख्तपोश पर सामने डेस्क पर स्लेट किताबें रखते और झूम-झूम कर पढ़ते थे। मौलवी साहब हर रोज पिछले दिन के पाठ को सुनते और लिखवा कर देखते। जब वह पक्का हो जाता तब आगे नया पाठ पढ़ाते।

राजेन्द्र प्रसाद मकतब में सबसे पहले आते। पिछले दिन का पाठ सबसे पहले पढ़कर सुना देते और लिखकर दिखा देते थे। उन्हें नया पाठ भी सबसे पहले मिल जाता जिससे वे तभी याद करना शुरू कर देते थे।

उर्दू-फारसी पढ़ने-लिखने का अभ्यास करने के अलावा राजेन्द्र प्रसाद ने गिनती, पहाड़े, साधारण जोड़-घटाव, गुणा-भाग भी यहीं मकतब में सीखे।

आठ साल की उम्र तक गांव में रहे और मौलवी साहब से पढ़ते रहे।

पढ़ना (रीडिंग), लिखना (राइटिंग) और गणित (अर्थमेटिक) शिक्षा शास्त्र में तीन "र" (थ्री आर्स) की पढ़ाई के नाम से प्रसिद्ध है। ये तीन "र" शिक्षा की नींव के पत्थर हैं। यदि विद्यार्थी बिना किसी मानसिक तनाव के शुद्ध-शुद्ध पढ़ना, शुद्ध व स्वच्छ लिखना और गिनती, पहाड़े तथा गणित की चारों आधारभूत बातों (जोड़-घटाव, गुणा-भाग) को सीख ले तो उसकी यानी शिक्षा की नींव सुदृढ़ हो जाती है।

मकतब की पढ़ाई की एक विशेषता यह थी कि इसमें अभ्यास पर बहुत बल दिया जाता है। अभ्यास में जो निरंतरता रहती है वही पूर्णता की ओर ले जाने वाली मजबूत कड़ी है। कंठाग्र करने के अभ्यास से स्मरण शक्ति बढ़ती है। निरंतर पढ़ने के अभ्यास से पठित वस्तु अधिक से अधिक स्पष्टता के साथ मस्तिष्क में बैठ जाती है।

राजेन्द्र प्रसाद सरल, सुबोध और संकोची स्वभाव के थे। पहली बार आठ साल की उम्र में जीरादेई छोड़कर पढ़ने के लिए छपरा गए। जीरादेई अर्थात् घर छोड़ कर बाहर जाना और छपरा रहना— उनके जीवन का एक नया अनुभव था। इस सम्बंध

में राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी आत्मकथा इस बात की चर्चा बड़े ही हृदय स्पर्शी और भोलेपन के साथ की है— उसको जस का तस यहां देना पाठकों के लिए खासकर आज के विद्यार्थियों के लिए आश्चर्य नहीं तो आत्मबोधक अवश्य होगा।'

राजेन्द्र प्रसाद अपनी आत्मकथा में लिखते हैं— छपरा में एक छोटा सा मकान तीन या चार रुपए मासिक भाड़े में ले लिया गया था। वहीं भाई (महेन्द्र प्रसाद) एक नौकर रसोई बनाने वाले के साथ रहते थे। कुछ दिनों तक शुरू में उनको पढ़ाने के लिए एक मास्टर भी रखे गये थे। पर जब मैं पहुंचा तब दूसरा कोई नहीं था। मैं भी उनके साथ रहने लगा। मेरे छपरा पहुंचने के कुछ ही दिनों बाद जिला स्कूल के आठवें दर्जे में, जो उन दिनों सबसे आरम्भिक दर्जा था, मेरा नाम लिखा दिया गया। मैंने वहीं ए बी सी और नागरी अ आ इ ई की एक साथ शिक्षा आरम्भ की। भाई उस समय दूसरे दर्जे से तरक्की पाकर ओबल दर्जे अर्थात् एण्ट्रेंस क्लास में पहुंचे थे। मेरे लिए कोई मास्टर नहीं रखा गया। मैं स्कूल की पढ़ाई के अलावा अगर कुछ पूछना होता तो भाई से पूछ लेता। घर पर मुझे पढ़ाने के लिए मास्टर का न रखना बहुत अच्छा हुआ। स्कूल की पढ़ाई पर खूब ध्यान देने की आदत लग गई। आरम्भिक काल से ही अपने ऊपर कुछ भरोसा करना ही आ गया। साल के अन्त में भाई एण्ट्रेंस परीक्षा की तैयारी कर रहे थे और मैं अपना सालाना इम्तहान दे रहा था। इम्तहान में मेरा बहुत अच्छा नम्बर आया। मैं अपने दर्जे में औबल हुआ और नम्बर भी इतना ज्यादा आया कि हैडमास्टर ने मुझे डबल तरक्की देने की बात सोची। फलतः सातवां लांघकर मुझे छठे क्लास में उन्होंने भेज दिया। उस समय मेरी अवस्था शायद 10-11 के बीच की होगी।"।

राजेन्द्र प्रसाद को स्कूल में प्रारम्भ से ही परीक्षा में सबसे अधिक नम्बर पाना और पहले साल की परीक्षा में डबल तरक्की पाना हुआ। सत्य तो यह है कि पूत के पैर पालने में दिखाई देने लगे थे।

राजेन्द्र प्रसाद अपने बड़े भाई महेन्द्र प्रसाद के साथ छपरा में किराए का एक छोटा सा घर लेकर रह रहे थे। छपरा में दो साल ही पढ़ पाए कि इनके बड़े भाई एण्ट्रेंस की परीक्षा पास कर पटना पढ़ने चले आए। जब वे पटना चले आए तो राजेन्द्र प्रसाद को भी पटना आना पड़ा। यहीं टी०के० घोष एकेडमी में इनका नाम लिख दिया गया। छपरा से पटना शहर बड़ा था। स्कूल में विद्यार्थियों की संख्या भी कहीं अधिक थी। राजेन्द्र प्रसाद को यहां यह महसूस हुआ कि छपरा में एक क्लास लांघना पड़ा इसलिए यहां मेहनत करके अपनी क्लास में दूसरे लड़कों के मुकाबले में आगे रहने का प्रयत्न करना होगा। पटना में भी उनके लिए कोई मास्टर नहीं रखा गया। स्वयं पढ़कर स्कूल में स्थान बनाए रखने का वह प्रयत्न करते रहे।

बचपन से पढ़ने की एक अच्छी आदत पड़ी थी। प्रतिदिन क्लास की पढ़ाई को घर पर पूरा दोहराया जाता। पाठ को वह ऐसा पढ़ते थे कि करीब-करीब उसे कण्ठस्थ कर लेते। इतना ही नहीं, दूसरे दिन होने वाली पढ़ाई को घर से पढ़कर जाते। इस अभ्यास को पटना में भी जारी रखा और इसका नतीजा अच्छा निकला। वे क्लास में कभी-किसी से पीछे नहीं रहे। परीक्षा में भी सबसे आगे रहे।

छपरा की पढ़ाई से और राजेन्द्र प्रसाद के जीवन से दो प्रमुख उदाहरण मिलते हैं। एक, भाई का आज्ञाकारी होना, अभिभावक के रूप में उन पर अपने को समर्पित कर देना। दूसरा, तरक्की की इच्छा नहीं रखना। नतीजे का ख्याल किए बगैर परिश्रम पर पूरा भरोसा करना।

टी०के० घोष एकेडेमी में दो वर्ष ही पढ़ पाए थे कि इनके बड़े भाई महेन्द्र प्रसाद एफ०एं० की परीक्षा पास कर कलकत्ता चले गये। राजेन्द्र प्रसाद को उस समय कलकत्ता जाना सम्भव नहीं था। उनको अकेले पटना छोड़ना भी उचित नहीं समझा गया। इसलिए राजेन्द्र प्रसाद का नाम हथुआ हाईस्कूल में लिखा दिया गया। हथुआ में पढ़ाई की ठीक व्यवस्था नहीं थी इसलिए छह महीने के बाद छपरा जिला स्कूल में चौथी क्लास में नाम लिखा दिया गया। छपरा जिला स्कूल में लड़कों की संख्या बहुत अधिक थी। खासकर चौथी क्लास में अधिक संख्या होने की वजह से इसमें तीन सैक्शन थे। राजेन्द्र प्रसाद का नाम "क" सैक्शन में लिखा गया। श्री रसिक लाल, बंगाली मास्टर, इनके क्लास टीचर थे। राजेन्द्र प्रसाद की प्रतिभा को देखकर वे इनसे बहुत खुश रहते थे। एक दिन की बात है, उन्होंने इनसे कहा कि अगर तुम इसी तरह पढ़ते रहे तो अन्त में तुम्हारा और रामानुग्रह का ही मुकाबला होगा। इस सम्बंध में राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी आत्मकथा में लिखा है "न मालूम उन्होंने ऐसा क्यों कहा पर बात ऐसी ही हुई, केवल उनकी भविष्यवाणी पूरी होने में दो-तीन साल लग गए।" राजेन्द्र प्रसाद की जब दूसरे दर्जे से अव्वल दर्जे में जाने की परीक्षा हुई तो, उसमें राजेन्द्र प्रसाद अव्वल और रामानुग्रह दूसरे स्थान पर आए।

दूसरे दर्जे की सालाना परीक्षा चल रही थी। उसी समय छपरा में बहुत जोरों से प्लेग की बीमारी फैली। दो दिन परीक्षा देने के बाद राजेन्द्र प्रसाद बीमार हो गए। गले में सूजन आ गई। ज्वर तेज होने के कारण वह गांव (जीरादेई) चले गए। गांव में ही दो महीने रह जाना पड़ा फिर जब स्कूल आए तब तक उनका नाम कट चुका था। इस तरह 'सेंटअप' होने से रह गए थे किन्तु जब उनके दो पर्चों (विषय) के नम्बर देखे गए तब मालूम हुआ, कि सेंटअप होने लायक तो उनके दो विषय के नम्बर थे। ऐसी हालत में उनका नाम भी लिख लिया गया और मैट्रीक की परीक्षा में बैठने की इजाजत दे दी गई। राजेन्द्र प्रसाद पढ़ने में अत्यधिक तेज थे।

ग्रामीण जीवन

राजेन्द्र प्रसाद का बचपन परिवार के सनातनी आस्थावान संस्कारों में बीता। आठ साल की उम्र तक तो वे अपनी मां के पास ही सोते रहे। चार बजे भोर में मां से रामायण की कहानी सुना करते थे। मां और दादी प्रभाती गाती जिसे वे बड़े चाव से सुनते थे। बचपन में सुनी रामायण की कहानियां, प्रभाती और भक्ति रस में सने भजनों और परिवार में मनाए जाने वाले व्रतों-उत्सवों का अमिट प्रभाव बालक राजेन्द्र प्रसाद के छोटे मन पर पड़ा। तन्मयता के साथ सुनने, सुनी हुई बात को समझने और फिर उसे ग्रहण करने की जो आदत बचपन में पड़ी वही पढ़ाई में, वकालत में और सार्वजनिक जीवन में जनसेवा के समय काम में आई।

राजेन्द्र प्रसाद पर ग्रामीण जीवन का बड़ा असर पड़ा। गांव को जीवन तथा समाज के सभी जरूरतों को पूर्ण करने तथा उसे अपने आप में सम्पूर्ण मानते थे। इस सम्बंध में उन्होंने अपनी आत्म कथा में गांव का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है—वह इस प्रकार है—"उन दिनों गांव का जीवन आज से भी कहीं अधिक सादा था। जीरादेई और जमापुर दो गांव हैं, पर दोनों की बस्ती इस प्रकार से मिली-जुली है कि यह कहना मुश्किल है कि वहां जीरादेई खत्म है और कहां से जमापुर शुरू है। इसलिए आबादी के लिहाज से दोनों गांवों को साथ भी लिया जाए तो कोई हर्ज नहीं। दोनों गांवों में प्रायः सभी जातियों के लोग बसते हैं। आबादी दो हजार से अधिक होगी। उन दिनों भी गांव में मिलने वाली प्रायः सभी चीजें वहां मिलती थीं। अब तो कुछ नए प्रकार की दुकानें भी हो गई हैं, जिनमें पान-बीड़ी भी मिलती है। उन दिनों ऐसी चीजें नहीं मिलती थी, यद्यपि काला तम्बाकू और खैनी बिका करती थी। कपड़े की दुकानें अच्छी थी, जहां से दूसरे गांव के लोग और कुछ बाहर के व्यापारी भी कपड़े ले जाया करते थे। चावल, दाल, आटा, मसाला, नमक, तेल इत्यादि वह सब कुछ बिकता था और छोटी-मोटी दुकान दवा की भी थी, जिससे हर्रे-बेहरा-पीपर इत्यादि की कई तरह की चीजें मिल सकती थी। जहां तक मुझे याद है, केवल मिठाई की कोई दुकान नहीं थी। गांव में कोयरी लोगों की काफी बस्ती है, इसलिए साग-सब्जी भी काफी मिलती थी। अहीर कम थे, पर आस-पास के गांवों में उनकी काफी आबादी है, इसलिए दही दूध भी मिलते थे। चर्खे काफी चलते थे। गांव में जुलाहों की भी आबादी थी, जो सूत लेकर बुन दिया करते थे। चुड़ीहार चूड़ियां बना लेते। बिसाती छोटी-मोटी चीजें, जैसे टिकुली इत्यादि, बाहर से लाकर बेचते और कुछ खुद भी बनाते। मुसलमानों में चुड़ीहार, बिसाती, धवई (राज), दर्जी और जुलाहे ही थे। कोई शेख सैयद नहीं रहता था। हिन्दुओं में ब्राह्मण, राजपूत, भूमिहार, कायस्थ, कोयरी, कुरमी, कमकर तुरहा, गौड, डोम, चमार, हुसाद इत्यादि सभी जाति के

लोग बसते थे। मेरा ख्याल है कि सबसे अधिक बस्ती राजपूतों की ही है। उनमें कुछ जो जमींदार वर्ग के हैं। जो पुराने खानदानी समझे जाते हैं और कुछ मामूली किसान वर्ग के हैं। कायस्थों के जीरादेई में ही पांच घर थे, जिनमें तीन तो हमारे सगे थे और दो सम्बंध के कारण बाहर से आकर बस गये थे।

सब कुछ प्रायः गांवों में ही मिल जाता था, इसलिए गांव के बाहर जाने का लोगों को बहुत कम मौका आता था। गांव में हफ्ते में दो बार बाजार भी लगता था, जहां कुछ आस-पास के गांव में दुकानदार भी अपना-अपना मालसौदा सिर पर अथवा बैल, घोड़ा या बैलगाड़ी पर लाद कर लाते थे। बाजार में मिठाई की दुकान भी आ जाती थी और जो चाहते उनको मछली-मांस भी खरीदने को मिल जाते।

मौलवी साहब के यहां दो-चार महीने में एकबार एक आदमी फारसी की छोटी-मोटी किताबों की एक छोटी गठरी और एक दो बोतलों में सियाही (आजकल की ब्लू ब्लैक रोशनाई नहीं) लिए आ जाता था। जब वह आता तो हम बच्चों के कौतुहल का ठिकाना न रहता। कभी-कभी जाड़ों में कोई नारंगी-नींबू की टोकरी लिए बेचने आ जाता तो हम बच्चे इतना खुश होते कि मानों कुछ नायाब मिल गया।

गांव में दो छोटे-मोटे मठ हैं, जिनमें एक-एक साधु रहा करते थे। गांव के लोग उनको भोजन देते हैं और वह सुबह शाम घड़ी-घंटा बजाकर आरती करते हैं। आरती के समय कुछ लोग जुट भी जाते हैं। कभी-कभी हम लोग भी जाया करते थे और बाबाजी तुलसी दल का प्रसाद दिया करते थे। रामनौमी और विशेष कर जन्माष्टमी में मठ में तैयारी होती थी। हम सब बच्चे कागज और पत्ती के फूल काटकर ढाक खादी के दरवाजों और सिंहासन पर साटते थे और उत्सव में शरीक होते थे, व्रत रखते थे और दधि कांदो के दिन खूब दही हल्दी एक-दूसरे पर डालते थे। प्रायः हर साल कार्तिक में कोई-न-कोई पंडित आ जाते जो एक-डेढ़ महीना रहकर रामायण, भागवत अथवा किसी दूसरे पुराण की कथा सुनाते थे। जिस दिन पूर्णाहुति होती थी उस दिन गांव के सब लोग इकट्ठे होते और कुछ-न-कुछ पूजा चढ़ाते। मेरे घर से अधिक पूजा चढ़ती, क्योंकि हम सबसे बड़े समझे जाते थे। अक्सर कथा तो मेरे ही दरवाजे पर हुआ करती थी। उसका सारा खर्च हमको ही देना पड़ता था। जब गांव में पंचायती कथा होती तब गांव भर के लोग बारी-बारी से पंडित के भोजन का सामान पहुंचाते, उसमें मेरा घर भी शामिल रहता। हम बच्चे तो शायद ही कथा का कुछ ज्यादा अंश सुन पाते हों, क्योंकि मैं तो संझौत के बाद ही सो जाता। पर जब आरती होती तो लोग जगाते और प्रसादी खिला देते।

मनोरंजन और शिक्षा का एक दूसरा साधन रामलीला थी। वह आसिन में हुआ करती

थी। रामलीला करने वाली जमात कहीं से आ जाती और पन्द्रह बीस दिनों तक खूब चहल-पहल रहती। लीला कभी जमापुर में होती, कभी जीरादेई में। लीला भी विचित्र होती। उसमें राम लक्ष्मण इत्यादि जो बनते, कुछ पढ़े-लिखे नहीं होते। एक आदमी तुलसी दास की रामायण हाथ में लेकर कहता — "रामजी कही हे सीता" इत्यादि और रामजी वही दुहराते। इसी प्रकार, जिनको जो कुछ भी कहना होता उनको बताया जाता और वह पीछे-पीछे उसे दुहराते जाते। लोगों का मनोरंजन इस वार्तालाप में अधिक नहीं होता, क्योंकि भीड़ बड़ी लगती और सब कारबार 100-200 गज में फैला रहता। मनोरंजन तो पात्रों की दौड़-धूप में और विशेष कर लड़ाई इत्यादि के नाट्य में ही होती। जिस दिन राजगद्दी होती उसी दिन गांव गवार के लोग पूजा चढ़ाते, जो नजर के रूप में रामजी के चरणों में चढ़ाई जाती। लीला वालों को भोजन के अलावा नगद जो कुछ मिलना होता उसी दिन मिलता। दूसरे दिन फिर राम लक्ष्मण जानकी को श्रृंगार करके बड़े-बड़े लोगों के घरों में ले जाते, जहां की स्त्रियां परदे के कारण भीड़-भाड़ में लीला देखने नहीं जाया करती। वहां उनकी पूजा होती और उन पर रुपए चढ़ाये जाते।

एक चीज, जिसका असर मुझ पर बचपन में ही पड़ा है, रामायण पाठ है। गांव में अक्षर ज्ञान तो थोड़े ही लोगों को था। उन दिनों एक भी प्राईमरी या दूसरे प्रकार का स्कूल उस गांव में अथवा कहीं गांव भर में नहीं था। मौलवी साहब हम लोगों को तीन-चार रुपए मासिक और भोजन पाकर पढ़ाते थे। गांव में एक दूसरे मुसलमान थे, जो जाति के जुलाहा थे। मगर कैथी लिखना जानते थे। मुडकट्टी हिसाब भी जानते थे, जिसमें पहाड़ा ड्योढ़ा इत्यादि मन-सेर की बिक्री और खेत की पैमाइश का हिसाब शामिल है। उन्होंने एक पाठशाला खोल रखी थी जिसमें गांव के कुछ लड़के पढ़ते थे।

प्रतिदिन संध्या के समय कुछ लोग कहीं न कहीं, मठ में या किसी के दरवाजे पर, जमा हो जाते और एक आदमी रामायण की पुस्तक से चौपाई बोलता और दूसरे सब उसे दुहराते। साथ में झाल और ढोलक भी बजाते थे। वन्दना का हिस्सा तो जब रामायण का पाठ आरम्भ होता तो जरूर दुहराया जाता। इस प्रकार अक्षर से अपरिचित रहकर भी गांव में बहुतेरे ऐसे लोग थे जो रामायण की चौपाइयां जानते और दुहरा सकते और विशेष करके वन्दना के कुछ दोहों को तो सभी प्रायः वरजबान रखते थे।

त्यौहारों में सबसे प्रसिद्ध होली है। उसमें अमीर-गरीब सभी शरीक होते थे। बसंत पंचमी के दिन से ही होली गाना शुरू होता। उसे गांव की भाषा में "ताल उठना" कहते थे। उसी दिन से होली के दिन तक जहां-तहां झाल ढोलक के साथ कुछ आदमी जमा होते और होली गाते।

दीवाली भी अच्छी मनाई जाती थी। कुछ पहले से ही सब लोग अपने-अपने घरों को

साफ करते। दीवारों को लीपते और काठ के खम्भों और दरवाजों में तेल लगाते। उन दिनों कैरोसीन का तेल नहीं जलाया जाता था शायद मिलता ही नहीं था। सरसों, तीसी, दाना अथवा रेंडी का तेल ही जलाया जाता। दीवाली में मिट्टी के छोटे-छोटे दिये जलाकर प्रायः अमीर-गरीब सब कुछ न कुछ रोशनी जरूर करते।

कथा, रामलीला, रामायण-पाठ और इन व्रत-त्यौहारों द्वारा गांव में धार्मिक जीवन हमेशा जगा रहता था। इसके अलावा मुहर्रम में ताजिया रखने का भी रिवाज था। इसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों शामिल होते थे। जीरादेई और जमापुर में कुछ हिन्दू ही कुछ सम्पन्न थे, इसलिए उनका ताजिया गरीब मुसलमानों के ताजिया से अधिक बड़ा और शानदार हुआ करता था। मुहर्रम भर प्रायः रोज गदका, लाठी, फरी वगैरह के खेल लोग करते और पहलाम के दिन तो बहुत बड़ी भीड़ होती। गांव-गांव के ताजिया कर्बला तक पहुंचाये जाते। तमाम रास्ते में "या अली, या इमाम" के नारे लगाये जाते और गदका इत्यादि के खेल होते। बड़ा उत्साह रहता और इसमें हिन्दु-मुसलमान का कोई भेद नहीं रहता। शीरनी और तिचौरी (भिगोया हुआ चावल और गुड़ बांटी जाती। सभी उसे लेते और खाते।

जिस तरह हिन्दू मुहर्रम में शरीक होते उसी तरह मुसलमान भी होली के शोर-गुल में शरीक होते। हम बच्चे दशहरा, दीवाली और होली के दिन मौलवी साहब की बनाई "इदी" अपने बड़ों को पढ़कर सुनाते और उनसे रुपये मांग कर मौलवी साहब को देते।

उन दिनों गांव मामला-मुकदमा कम हुआ करता था। जो झगड़े हुआ करते थे गांव के पंच लोग उन्हें तय कर देते थे। अगर कोई बात पंचों के मान की न हुई तो वह मेरे बाबा या चाचा साहब के सामने पेश होती। वे लोग भी पंचायत में शरीक होकर तय करा देते।

राजेन्द्र प्रसाद के गृहस्थ जीवन की एक विशेष घटना उल्लेखनीय है। वह अपनी आत्म कथा में लिखते हैं —"मैं पांचवे दर्जे में पढ़ता था या चौथे* में आ चुका था, जब मेरी शादी हुई।" बारह साल की उम्र में सन् 1896 ई० में इनका विवाह राजवंशी देवी के साथ हुआ। उस समय उम्र का ख्याल किए बगैर यह होता था। यही विशेष घटना थी। इनसे क्रमशः दो लड़के मृत्युंजय प्रसाद और धनंजय प्रसाद — एक सन् 1906 में और दूसरा 1909 में हुए।

राजेन्द्र प्रसाद जब छपरा में पढ़ते थे तब वहां उनके अभिभावक पंडित विक्रमादित्य मिश्र थे। वे कट्टर सनातनी थे, वह प्रतिदिन सरयू नदी में स्नान करते थे। पूजापाठ के बाद स्वयं भोजन बनाते, तब खाते थे। वहीं पास में एक ठाकुरवाड़ी में पूजा-पाठ करते।

---

*तब कक्षाओं का क्रम आज से उल्टा होता था। आठवां पहला दर्जा होता और पहला एण्ट्रेंस होता था।

फुर्सत के समय वे राजेन्द्र प्रसाद को कथा कहानी सुनाते। रामायण महाभारत तथा ऐसे ही दूसरे धार्मिक ग्रंथों से कुछ-कुछ सुनाते थे। राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी आत्म कथा में इनकी चर्चा में लिखा है "इनकी संगति का मेरे तथा दूसरे लड़कों के दिल पर जैसा अच्छा असर पड़ना चाहिए था पड़ा।"

9

हमारे प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद

—एस० डब्ल्यू० धाबे*

डा० राजेन्द्र प्रसाद भारत के प्रथम राष्ट्रपति थे। इस पद पर इनका कार्यकाल 1950 से 1962 तक रहा। वह एक महान स्वतंत्रता सेनानी तो थे ही, साथ-ही-साथ वह हमारी संस्कृति की सर्वोत्तम परम्पराओं के परिचायक भी थे। वह एक उत्कृष्ट विद्वान, गहन अध्येता और उच्च विचारक थे। इनका जन्म भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से एक वर्ष पूर्व दिनांक 3 दिसम्बर, 1884 को बिहार राज्य के जीरादेई गांव में हुआ था। उनके पिता, मुंशी महादेव सहाय पारसी और संस्कृति भाषाओं के प्रसिद्ध विद्वान थे तथा ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों का निःशुल्क आयुर्वेदिक और यूनानी उपचार करने के लिए लोकप्रिय थे। उनकी माता एक धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थीं। और उन्होंने राजन बाबू का इस प्रकार लालन-पालन किया कि उनमें भारत की संस्कृति और परम्पराओं के उत्तम आदर्शों का सामन्जस्य हो। उनके चरित्र निर्माण में उनका बहुत योगदान रहा। उनके बड़े भाई महादेव प्रसाद, वास्तव में उनके अभिभावक और पथ-प्रदर्शक थे

विश्वविद्यालय की पढ़ाई के दौरान वह एक मेधावी छात्र थे तथा उन्होंने प्रत्येक परीक्षा में सदैव प्रथम स्थान प्राप्त किया। उन्होंने 1906 में स्नातक की और 1908 में स्नातकोत्तर की डिग्री प्राप्त की। इस दौरान उन्हें अनेक छात्रवृत्तियां भी मिलीं। कानूनी शिक्षा पूरी करने के पश्चात उन्होंने 1908 में वकालत आरम्भ की। कड़ी मेहनत और कानून के अच्छे ज्ञान के कारण, वकालत में उनका नाम चमक गया। श्री आशुतोष मुखर्जी, जोकि कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश थे, उनके कानूनी-नुकते प्रस्तुत करने के ढंग से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने कुलाधिपति की हैसियत से डा० प्रसाद को "प्रोफेसर ऑफ लॉ" के पद पर नियुक्त करने की पेशकश की। डा० प्रसाद ने 1915 में विधि-स्नाकोत्तर की डिग्री प्रथम श्रेणी में प्राप्त की। और उसके दो वर्षों के पश्चात् उन्होंने डाक्टोरेट "इन ला" की डिग्री प्राप्त की। वर्ष 1916 में बंगाल से बिहार उच्च न्यायालय के अलग हो जाने के पश्चात उन्होंने पटना में प्रेक्टिस आरम्भ कर दी। पन्द्रह वर्ष की कड़ी मेहनत से कलकत्ता में जमाई गई अपनी अच्छी चलती वकालत को उन्हें छोड़ना पड़ा। बिहार में भी उनकी गणना प्रमुख वकीलों में होने लगी धार्मिक प्रवृत्ति का होने के कारण, वह अपनी आमदनी

*श्री धाबे भूतपूर्व संसद सदस्य (राज्य सभा) हैं।

का अधिकांश भाग गरीब लोगों की सेवा में खर्च कर देते थे। धीरे-धीरे राजनीतिक गतिविधियों की ओर उनकी अभिरुचि में वृद्धि होने लगी और वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की ओर आकर्षित हुए। वर्ष 1911 में वह कांग्रेस में शामिल हुए और 1917 में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के सदस्य निर्वाचित हुए तथा शीघ्र ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रमुख नेता बन गए।

चम्पारन

उत्तरी बिहार में नील की खेती करवाने वाले जमींदारों द्वारा गरीब काश्तकारों पर विभिन्न प्रकार के जुल्म किए जाने और उन्हें कष्ट पहुंचाने के कारण, वहां एक जन-आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था। इस आन्दोलन में डा० राजेन्द्र प्रसाद ने प्रमुख रूप से भाग लिया, जिसके परिणामस्वरूप 1918 में चम्पारन कृषि संबंधी अधिनियम पारित हुआ, जिससे चम्पारन के उन काश्तकारों को भारी राहत मिली, जो लम्बे समय से सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष कर रहे थे। वास्तव में, सामाजिक न्याय की लड़ाई से ही राष्ट्रीय भावना का जन्म हुआ। इस बारे में गांधी जी ने लिखा था कि यह संघर्ष इस बात का प्रमाण है कि किसी भी क्षेत्र में की गई निष्काम सेवा से राष्ट्र को .जनैतिक रूप से लाभ मिलता है। नैतिक मूल्यों, अहिंसा, उदारतावाद, सामाजिक सुधारों पर बल दिए जाने तथा आर्थिक प्रतिबंधों का समाप्त करने के कारण चम्पारन, नए राष्ट्रवाद का प्रारम्भ सिद्ध हुआ।

इस आन्दोलन को गति देने में डा० राजेन्द्र प्रसाद का महत्वपूर्ण योगदान था। वास्तव में इससे उनकी कार्यवृत्ति में मूलभूत परिवर्तन आया और वह महात्मा गांधी के काफी निकट आ गए। राजन बाबू के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अध्यक्ष बनने के पश्चात, इसी प्रकार के अन्य और आन्दोलन आरम्भ हुए।

स्वतंत्रता आन्दोलन

महात्मा गांधी के सच्चे अनुयायी के रूप में डा० राजेन्द्र प्रसाद ने स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया। वह तीन बार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष रहे और इसकी बैठकों में होने वाले विचार-विमर्श का उपयुक्त मार्गदर्शन किया। कांग्रेस द्वारा चलाए गए असहयोग आन्दोलन और स्वदेशी आन्दोलन भी अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। दिसम्बर, 1920 में नागपुर में आयोजित हुए कांग्रेस के अधिवेशन में ही असहयोग कार्यक्रम को अन्तिम रूप दिया गया था। दिनांक 6 अप्रैल, 1919 को पटना में गंगा के किनारे के मैदान में दिए गए ऐतिहासिक भाषण में उन्होंने घोषणा की थी कि कांग्रेस स्वराज्य चाहती है, और स्वराज्य से कम, किसी भी बात पर सहमत नहीं होगी। सत्याग्रह शुरू किया गया, जोकि सत्य का एक संघर्ष था। एक सच्चे सत्याग्रही को विचलित नहीं

होना चाहिए, हिंसक नहीं होना चाहिए तथा त्याग और कष्ट के लिए तैयार रहना चाहिए। असहयोग आन्दोलन इसी धारणा का विस्तार मात्र है। सत्याग्रही स्वशासन तथा अपने कार्यों का स्वयं संचालन चाहते थे और वे स्वयं ही अपने अनुकूल कानून बनाना और अपने प्रतिकूल कानूनों को रद्द करना चाहते थे। स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास सर्वविदित है। कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में, राजन बाबू ने अक्तूबर 1934 में बम्बई में कांग्रेस के हुए 40वें अधिवेशन में, पहली बार कांग्रेस की अध्यक्षता की थी। तत्पश्चात् कांग्रेस अध्यक्ष के नाते, उन्होंने सारे देश की यात्रा की। वर्ष 1936 में लखनऊ अधिवेशन के पश्चात डा० राजेन्द्र प्रसाद ने गैर हिन्दी क्षेत्रों में हिन्दी के प्रसार के लिए नागपुर में "राष्ट्र भाषा प्रचार समिति" के अध्यक्ष के रूप में इसके द्वारा गठित हिन्दी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता की।

यह संगठन आज भी महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। वर्ष 1939 में जबलपुर के समीप त्रिपुरी में आयोजित हुए अधिवेशन में, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। लेकिन कुछ मतभेदों के कारण उन्होंने यह पद त्याग दिया तथा डा० राजेन्द्र प्रसाद पुनः इसके अध्यक्ष निर्वाचित हुए। भारत छोड़ो आन्दोलन में भी उन्होंने सक्रिय रूप से भाग लिया। केन्द्रीय विधान सभा चुनावों में, कांग्रेस ने भाग लिया और अधिकांश स्थानों पर इसकी विजय हुई। इस बारे में कांग्रेस ने "केबिनेट-मिशन" के उस दीर्घावधि प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया कि संयुक्त और लोकतांत्रिक भारत के संविधान के निर्माण के लिए एक संविधान सभा का गठन किया जाए। फिर इस संविधान सभा के चुनाव हुए और इसमें भी कांग्रेस के सदस्य भारी बहुमत से जीते। दिनांक 2 सितम्बर, 1946 को 12 मंत्रियों वाली एक अन्तरिम सरकार का गठन किया गया। जिसमें डा० राजेन्द्र प्रसाद भी सम्मिलित थे। उन्हें कृषि और भूमि मंत्री नियुक्त किया गया था। एक मंत्री के रूप में उन्होंने खाद्यान्न के क्षेत्र में राष्ट्र को आत्मनिर्भर बनाने के लिए अनेक उपाय किए, आयात घटाने का प्रयत्न किया और देश में से ही अनाज की वसूली पर अधिक बल दिया।

देश के प्रति इतने वर्षों तक की गई उनकी सेवाओं को मान्यता देते हुए, 11 दिसम्बर 1946 को उन्हें सर्वसम्मति से संविधान सभा का अध्यक्ष चुना गया। उनके चयन पर उन्हें बधाई देते हुए डा० एस० राधाकृष्णन, एन०जी०एस० आयंगर सहित अनेक सदस्यों ने राष्ट्रीय जीवन में उनके योगदान का उल्लेख किया। इस संबंध में श्रीमती सरोजिनी नायडू द्वारा की गई प्रशंसा विशेष रूप से उल्लेखनीय है:

> "एक बार मुझे यह कहा गया कि मैं डा० राजेन्द्र प्रसाद के बारे में एक महाकाव्य सुभाषित रूप में तैयार करूं। मुझसे डा० राजेन्द्र प्रसाद के बारे में एक वाक्य बोलने के लिए कहा गया, मैंने कहा कि मैं ऐसा तभी कर सकती हूं, जब मेरे पास

शहद में डूबा हुआ एक सोने की निब वाला पैन हो, क्योंकि सारे शब्द भी मिलकर उनके गुणों का बखान करने में समर्थ नहीं है अथवा उनके गुणगान करने के लिए अपर्याप्त हैं। मैं उन्हें तलवार से सुसज्जित पुरूष के रूप में नहीं, वरन् लिली का फूल लिए एक ऐसे देवदूत के रूप में देखती हूं, जो मनुष्य के वचनों पर विजय हासिल करता है, क्योंकि उनमें अपरिहार्य मधुरता है जो उनकी शक्ति का एक हिस्सा है; अपरिहार्य विवेक है, जो उनके अनुभव का हिस्सा है, अपरिहार्य विचारों की स्पष्टता, रचनात्मक कल्पना और विश्वास है जो कि उन्हें स्वयं भगवान बुद्ध के पवित्र चरणों के समक्ष ले आता है। वह आज भारत के नियति के प्रतीक हैं, वह उस चार्टर को तैयार करने में हमारे सहायक होंगे जो हमारी अभी तक की बेड़ियो में जकड़ी भारत माता को स्वतंत्र करवाएगा, स्वतंत्रता, प्रेम और शांति के दूत के रूप में हमें उपयुक्त स्थान दिलवाएगा।"

अपने उद्घाटन भाषण में डा० राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था कि संविधान सभा की कुछ सीमाएं होते हुए भी एक स्वशासित और स्वयंनिर्धारक निकाय है। इसकी कार्यवाही में कोई बाहरी प्राधिकरण हस्तक्षेप नहीं कर सकता और बाहर से कोई भी इसके निर्णयों को विरोध, उनमें परिवर्तन या संशोधन नहीं कर सकता। अपने भाषण के अंत में उन्होंने कहा कि:

"देवियो और सज्जनो, जो यहां स्वतंत्र भारत का संविधान बनाने के लिए आए हैं, आप उन सीमाओं से अपने आपको मुक्त रखेंगे और संसार के समक्ष एक ऐसा आदर्श संविधान प्रस्तुत करेंगे, जो हमारी जनता, सभी वर्गों सभी समुदायों एवं इस विशाल क्षेत्र में प्रचलित सभी धर्मों को संतुष्ट कर सकेगा और जो सभी के लिए काम करने की स्वतंत्रता, विचारों की स्वतंत्रता, विश्वास रखने की स्वतंत्रता और ईश्वर की उपासना करने की स्वतंत्रता को सुनिश्चित करेगा, जो सभी व्यक्तियों को उनके क्षेत्रों में अधिकतम उन्नति की गारंटी देगा, जो सभी के लिए सभी अर्थों में स्वतंत्रता की गारंटी देगा।"

यह बात सर्वविदित है कि संविधान सभा ने प्रशंसनीय कार्य किया और देश को एक लोकतांत्रिक संविधान दिया, जिस पर भारत का प्रत्येक नागरिक गर्व कर सकता है। डा० राजेन्द्र प्रसाद 26 जनवरी, 1950 को अंतरिम राष्ट्रपति चुने गए। सन् 1952 में हुए राष्ट्रपति के प्रथम चुनाव में वह राष्ट्रपति चुने गए तथा सन् 1957 में वह पुनः इस पद के लिए चुने गए। डा० राजेन्द्र प्रसाद ने भारत के राष्ट्रपति के रूप में कई देशों की यात्रा की और अपने साथ वह वहां सद्भावना तथा विश्वभाईचारे का संदेश ले कर गए। वह एक प्रतिभाशाली लेखक भी थे। हिन्दी में प्रकाशित "चम्पारन में सत्याग्रह," "महात्मा गांधी

और बिहार "—कुछ संस्मरण," "विभाजित भारत", "बापू के कदमों में" पुस्तकें तथा उनकी अपनी आत्मकथा उनकी प्रसिद्ध पुस्तकें हैं। केरल विधान सभा के चैम्बर में, सन् 1958 में उनके चित्र का अनावरण करते हुए, पंडित जवाहर लाल नेहरू ने राजन बाबू के व्यक्तित्व का बहुत ही उचित समाकलन करते हुए कहा था:

> "राजन बाबू न केवल हमारे देश के उच्चतम पद पर ही सुशोभित हैं, बल्कि वह इससे भी कहीं कुछ अधिक हैं, क्योंकि उनके जीवन में वह भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन समाया हुआ है, जिससे होकर हम गुजर चुके हैं। डा० राजेन्द्र प्रसाद मूल भारतीय, विशेषकर ग्रामीण भारत के मूल्यों और परम्पराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं, हालांकि वह कोई साधारण किसान नहीं हैं, वह अत्यंत मेधावी, महान शिक्षाविद और एक योग्य वकील हैं।"

डा० राजेन्द्र प्रसाद का सन् 1963 में स्वर्गवास हुआ। उनका जीवन राष्ट्र के प्रति निस्वार्थ और समर्पित सेवा का उदाहरण है जिसका भारत के प्रत्येक नागरिक को अनुकरण करना चाहिए।

नागपुर सत्याग्रह

चूंकि मैं नागपुर का रहने वाला हूं, अतः मैं इस महान व्यक्ति से भावात्मक रूप से जुड़ा हुआ अनुभव करता हूं। वह देश के इस हिस्से से अभिन्न रूप से जुड़े हुए थे तथा प्रायः नागपुर और वर्धा आते रहते थे। सन् 1923 में भारतीय राष्ट्रीय ध्वज के सम्मान की रक्षा में नागपुर में झंडा सत्याग्रह हुआ था, जिसका नेतृत्व केन्द्रीय प्रांत कांग्रेस समिति के तत्कालीन अध्यक्ष तथा प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी, पंडित सुंदरलाल ने किया था। यह सत्याग्रह जबलपुर से तब प्रारम्भ हुआ जब ब्रिटिश सरकार ने इस निर्वाचित निकाय को नगरपालिका के भवनों के ऊपर राष्ट्रीय झंडा फहराने की अनुमति नहीं दी थी। इस पर आंदोलन सारे केन्द्रीय प्रांतों, बेरार राज्यों और नागपुर में फैल गया। सरकार ने 1 मई, 1923 के एक आदेश द्वारा राष्ट्रीय झंडा लेकर चलने वाले सभी जुलूसों पर प्रतिबंध लगा दिया। सत्याग्रह में, जमनालाल बजाज और सरदार वल्लभभाई पटेल को गिरफ्तार कर लिया गया। इसके बाद इस आन्दोलन ने एक ऐसे राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप ले लिया, जिसका उद्देश्य था, राष्ट्रीय ध्वज के सम्मान की रक्षा करना। इस कार्य में बिहार भी पीछे नहीं रहा और डा० राजेन्द्र प्रसाद के नेतृत्व में सैकड़ों स्वयं सेवकों ने अपनी गिरफ्तारी दी। एक सत्याग्रही, हरदेव नारायणसिंह, नागपुर सेंट्रल जेल में शहीद हो गए। समूचे भारत में 18 जुलाई को झंडा दिवस मनाया गया। सरदार पटेल और राजन बाबू, नागपुर जेल में साथ-साथ रहते हुए एक दूसरे के काफी घनिष्ठ हो गए। राजन बाबू ने अपने भाषण में कहा कि तिरंगा झंडा मात्र कपड़े का एक टुकड़ा ही नहीं था, बल्कि यह इससे कहीं

अधिक बढ़कर था, क्योंकि इसके पीछे निहित विचार भावातीत था। चूंकि यह राष्ट्र के सम्मान का और आत्म सम्मान का द्योतक है, अतः कोई भी स्वाभिमानी व्यक्ति इसके जरा से भी अपमान को सहन नहीं कर सकता।

डा० राजेन्द्र प्रसाद का व्यक्तित्व एक ऐसा अभूतपूर्व व्यक्तित्व था, जो भारतीय इतिहास के पन्नों में अपनी अमिट छाप छोड़ गया है। "सादा जीवन, उच्च विचार" उनके जीवन का आदर्श वाक्य था। अपनी सादगी, मैत्रीभाव, इमानदारी, गरीबों के लिए प्रेम और राष्ट्रमाता के प्रति समर्पण भाव के कारण वह सभी के प्रिय थे।

10

डा० राजेन्द्र प्रसाद: भारत के प्रथम राष्ट्रपति के रूप में उनकी भूमिका

—प्रोफेसर बलराज मधोक*

डा० राजेन्द्र प्रसाद, जो कि भारत की संविधान सभा के अध्यक्ष थे तथा बाद में हमारे गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति चुने गए; हिन्दू आदर्श "सादा जीवन उच्च विचार" की प्रतिमूर्ति थे। वह एक महान विद्वान, विशिष्ट विधि वेत्ता, तथा उत्कृष्ट स्वतंत्रता सेनानी थे। हमारे राजनैतिक जीवन के अनेक क्षेत्रों में उन्होंने अपना प्रभाव छोड़ा। हमारे संद्यःजात गणतंत्र के प्रारंभिक काल में राष्ट्रपति के रूप में उनकी भूमिका अति गरिमामय रही।

एक महान विधिवेता होने के नाते तथा संविधान सभा के अध्यक्ष रह चुकने के कारण उन्हें भारतीय संविधान के कथ्य और भावना का पूरा ज्ञान था। भारत के प्रथम राष्ट्रपति के रूप में देश के सर्वोच्च कानून के संरक्षण और सुरक्षा की पूर्ण जिम्मेदारी उन पर आ गई थी।

भारत के संविधान के अन्तर्गत भारतीय राज्यतंत्र में राष्ट्रपति का सर्वोच्च स्थान है। वह न केवल शासन का मुखिया ही होता है अपितु समस्त प्रशासकीय शक्तियाँ भी उसी के पास होती हैं। वह देश की सुरक्षा सेनाओं का भी सर्वोच्च सेनापति है। संसद तथा राज्य विधान मंडलों में चुने गए प्रतिनिधियों के माध्यम से भारतीय जनता द्वारा चुना गया यह राष्ट्रपति किसी दल, समूह या वर्ग का नहीं वरन् पूरे राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है।

प्रधान मंत्री की स्थिति तथा स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधान मंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू के साथ अपने व्यक्तिगत समीकरण को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रपति की तुलनात्मक स्थिति एवं भूमिका के बारे में डा० राजेन्द्र प्रसाद ने जो परम्पराएं एवं पूर्वोदाहरण स्थापित किए हैं, वे व्यवहार रूप में जातीय संविधान को समझने तथा उसके मूल्यांकन के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। जैसा कि संघ और राज्यों के मामले में स्पष्ट है हमारे गणतंत्र के शुरू के वर्षों में राष्ट्रपति और प्रधान मंत्री के संबंध में निर्धारित संवैधानिक आवश्यकता

*प्रोफेसर मधोक भूतपूर्व संसद सदस्य (लोक सभा) हैं।

की अपेक्षा उस व्यक्तिगत घनिष्ठता से प्रेरित थे, जो कि कांग्रेस दल के कार्यकर्ता तथा सहयोगी के रूप में दोनों नेताओं के बीच विद्यमान थी। वास्तव में शासनाध्यक्ष और राष्ट्राध्यक्ष में यह संविधानेतर संबंध भारतीय संविधान को लागू करने में बाधक रहा।

पंडित नेहरू का कांग्रेस संगठन तथा सरकार में विशेषकर दिसम्बर 1950 में सरदार बल्लभभाई पटेल की मृत्यु के बाद सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान था। एक 'समर्पित कांग्रेसी के रूप में डा० राजेन्द्र प्रसाद, सदैव पंडित नेहरू को अपना नेता मानते थे। पंडित नेहरू को भी अपनी इस उच्चतर स्थिति का ज्ञान था। हालांकि वह राष्ट्रपति के रूप में राजेन बाबू को उचित सम्मान दिया करते थे फिर भी यदि सिद्धान्ततः नहीं तो व्यवहारतः वह प्रधानमंत्री की सर्वोच्चता में विश्वास करते थे। इसलिए उनके तथा डा० राजेन्द्र प्रसाद के बीच व्यक्तिगत समीकरण ने शासन के दो सर्वोच्च पदों में संबंध को एक मोड़ दे दिया जो कि संविधान के कथ्य और भावना के अनुरूप नहीं था।

डा० राजेन्द्र प्रसाद अच्छी तरह जानते थे कि संविधान ने राष्ट्रपति को पर्यवेक्षी भूमिका भी दे रखी है। परन्तु वह इतने सीधे सादे थे और पंडित नेहरू इतने हठी और चतुर थे कि ऐसी स्थिति पैदा ही नहीं होने देते थे जिससे मतभेद का पता लगे। पंडित नेहरू राष्ट्रपति को देश के अन्दर तथा बाहर की दिन प्रतिदिन की गतिविधियों से अवगत कराने तथा महत्वपूर्ण निर्णयों एवं नियुक्तियों पर बिना अपवाद के उनकी सम्मति लेने का ध्यान रखते थे। डा० राजेन्द्र प्रसाद अपने नाम से की गई नियुक्तियों तथा निर्णयों की जांच करते थे और उनकी राय पर स्पष्ट रूप से ध्यान दिया जाता था। वह किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने के मामले में विशेष रूप से सतर्क रहते थे। परन्तु राष्ट्रपति के रूप में अपने दूसरे कार्यकाल के अन्त में डा० राजेन्द्र प्रसाद के मन में एक विचार पैदा हो गया था कि व्यवहार में राष्ट्रपति पद का अवमूल्यन किया जा रहा है। इसीलिए उन्होंने भारतीय संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति की स्थिति की गहराई से जांच करने का सुझाव दिया था।

डा० राजेन्द्र प्रसाद जब तक राष्ट्रपति रहे उन्होंने इस उच्च पद की स्वतंत्रता गरिमा और प्रतिष्ठा बनाये रखी। लोक सभा के एक युवा सांसद के रूप में मुझे उनसे मिलने तथा लोक महत्व के विषयों पर चर्चा करने का अवसर मिला था। मैं उनकी गरिमा विनम्रता से तथा राष्ट्रीय घटनाक्रम और संविधान के बारे में उनके विस्तृत ज्ञान से प्रभावित हुआ था। वह संसद में सदस्यों की क्रिया-कलापों का ध्यान रखते थे और प्रायः कर्मठ सदस्यों का उत्साहवर्धन करते थे।

वर्ष 1967 के बाद की राजनीतिक गतिविधियों से किसी तरह से कुछ क्षेत्रों में यह विचार पैदा हो गया कि ब्रिटेन के तरह की संसदीय प्रणाली जिसमें कि प्रधानमंत्री सर्वोच्च होता है तथा राष्ट्राध्यक्ष मात्र कहने को ही प्रमुख होता है, भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल

नहीं है। अधिकांश लोगों द्वारा अमेरिका की तरह राष्ट्रपति प्रणाली के अनुसार परिवर्तन का सुझाव दिया गया। भारतीय संविधान पर मेरे अध्ययन के अनुसार यदि राष्ट्रपति पद को वही भूमिका और स्थिति पुनः प्रदान कर दी जाये जिसे संविधान के निर्माताओं ने इसके लिए निश्चित किया था तो वर्तमान प्रणाली अधिक कारगार हो सकती है।

जो व्यक्ति जिस पद पर आसीन होता है उस पद की गरिमा बनाये रखने में उस व्यक्ति के चरित्र और व्यक्तित्व का विशिष्ट स्थान होता है। कतिपय कारणवश राष्ट्रपति के पद का अवमूल्यन हुआ है और इसीलिए यह उचित समय है कि राष्ट्रपति का चयन किसी दल द्वारा निर्वाचन मण्डल के अपने सदस्यों को किसी विशेष उम्मीदवार को मतदान के लिये "व्हिप" जारी करने के बजाय योग्यता के आधार पर करने के लिए कदम उठाए जाएं। मतदाताओं को अपनी अन्तरात्मा की आवाज के अनुसार सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति चयन करने के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, चाहे वह व्यक्ति किसी भी राजनैतिक दल से संबद्ध हो। ठीक उसके विपरीत कि प्रधान मंत्री तो किसी न किसी दल का व्यक्ति होता है, भारत का राष्ट्रपति दलगत राजनीति से ऊपर होना चाहिए।

डा० राजेन्द्र प्रसाद राष्ट्र में अपनी हैसियत से भली भांति परिचित थे और उन्होंने यह महसूस किया कि उन्हें राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने के लिये एकीकरण की भूमिका और कार्य करना चाहिए। इसीलिए उन्होंने अपने भाषणों में राष्ट्रीय एकता के मूल तत्वों पर बल दिया। 7 फरवरी, 1956 को त्रिवेन्द्रम में बोलते हुए कन्याकुमारी के निकट रहने वाले व्यक्तियों को इस बात का विश्वास दिलाया कि भारत का धुर उत्तर तक का क्षेत्र भी आपका है और मुझे भी कन्याकुमारी का क्षेत्र अपना समझने की अनुमति दें। जब तक हममें एकता और देश भक्ति की यह भावना विकसित नहीं होगी और जब तक हम तुच्छ स्थानीय, संकीर्ण, जातीय और साम्प्रदायिक भावना से ऊपर उठकर देश के बारे में नहीं सोचेंगे तब तक हम हासिल की हुई अपनी स्वतंत्रता को सुरक्षित नहीं रख सकेंगे और हमारा लोकतंत्र बहुत कम समय तक चल पाएगा।

डा० राजेन्द्र प्रसाद के विचार में भारतीय एकता के लिए संस्कृत एक प्रमुख आधार है और उन्होंने हमारे राष्ट्रीय जीवन में इसे समुचित स्थान देने का समर्थन किया था। 11, नवम्बर, 1955 को आयोजित संस्कृत विश्व परिषद के वार्षिक सम्मेलन में अपने अध्यक्षीय भाषण के अवसर पर उन्होंने कहा था:— "जब प्राचीन काल में आधुनिक काल जैसे संचार नहीं थे, तब लगभग पूरे देश में एक जैसी शिक्षा थी। यह संस्कृत ही थी जिसने अभिव्यक्ति और साहित्यिक प्रयास के लिए एक सर्वमान्य माध्यम उपलब्ध कराया था। जब विभिन्न क्षेत्रों में विकास के विविध स्तरों पर क्षेत्रीय भाषायें बोली जाती थीं तब वस्तुतः संस्कृत सामान्य भाषा थी। हम कह सकते हैं कि एक प्रकार से इसे अनेक

शताब्दियों तक भारत की राष्ट्रीय भाषा का दर्जा प्राप्त रहा। औपचारिक रूप से इस महान भाषा को हम चाहे जो भी दर्जा दें किन्तु सच्चाई यह है कि यह भी सच है कि संस्कृत विकासशील भाषाओं की पोषक है।"

उन्होंने संस्कृत को समुचित मान्यता प्रदान की ही, साथ ही यह भी कहा कि राष्ट्रीय एकता बढ़ाने के लिए सभी भारतीय भाषाओं के लिखने के लिये देवनागरी को सामान्य लिपि के रूप में अपनाया जाए।

7 अगस्त, 1957 को हैदराबाद में आंध्र साहित्य अकादमी में बोलते हुए उन्होंने कहा था:—

"अब जब कि हमें राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त हो चुकी है हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम इस प्रकार का व्यवहार करें और इस प्रकार अपने कार्यों को संचालित करें कि हमने जो आजादी प्राप्त की है वह चिरस्थायी हो जाए। मैं इस बारे में सोच रहा था कि इस एकता को और आगे किस प्रकार बरकरार रखा जा सकता है। इसके बारे में मेरे कुछ अपने अनुभव हैं जिन्हें मैं आप तक पहुंचाना चाहता हूँ। कुछ वर्ष पूर्व "देवनागर" का प्रकाशन हुआ करता था जिसका संचालन शारदा चरण नाम के कलकत्ता उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश किया करते थे। देवनागर में विभिन्न भाषाओं के लेख प्रकाशित होते थे। किन्तु वे सब देवनागरी लिपि में होते थे। हमने यह अनुभव किया कि देवनागरी लिपि के माध्यम से हम अन्य भाषाओं का ज्ञान अर्जित कर सकते हैं मैंने सदा ही यह महसूस किया कि यदि सभी प्रांतीय भाषाओं की लिपि एक ही से हो तो हम उन्हें और अधिक अच्छी तरह से जान सकते हैं तथा समझ सकते हैं। भाग्यवश तमिल छोड़कर सभी भारतीय भाषाओं के अक्षर एक जैसे हैं। यह स्थिति केवल भारत में ही नहीं है अपितु भारत के बाहर भी ऐसा ही है। उदाहरण के तौर पर श्रीलंका, बर्मा और थाईलैण्ड की अक्षरमाला भी हमारे जैसी ही है। लिपि में भिन्नता है किन्तु ध्वनियाँ समान हैं। यह हमारे फायदे की बात है। यदि हम एक लिपि अपना लें तो हमारे लिये अन्य भाषा बोलने वाले लोगों की भाषा को समझना आसान हो जाएगा। यहाँ देवनागरी लिपि का उल्लेख इसलिए किया जा रहा है क्योंकि संस्कृत की लिपि देवनागरी है और इस लिपि का पूरे देश को ज्ञान है।"

संस्कृत की एकीकरण की भूमिका और सभी भारतीय भाषाओं के लिए देवनागरी को एक सामान्य लिपि के रूप में अपनाने संबंधी डा० राजेन्द्र प्रसाद के इन विचारों की उपयुक्तता आज की स्थिति में और भी सार्थक प्रतीत होती है। जबकि राष्ट्रीय एकता को नये खतरे उत्पन्न हो गये हैं।

समय की मांग है कि भारत के राष्ट्रपति पद के उस प्रभुत्व गरिमा और प्रतिष्ठा को

आज पुनः प्रतिष्ठापित किया जाए। जिसकी कल्पना भारतीय संविधान के संस्थानों ने की थी और पूरी सूझ बूझ से काम लिया जाए तथा भारतीय एकता के मूल कारणों का प्रचार किया जाए। डा० राजेन्द्र प्रसाद की सर्वश्रेष्ठ स्मृति यही है कि राष्ट्र उनके विचारों और आदर्शों को आत्मसात करें क्योंकि जैसा कि प्लेटो ने कहा है—"विचार और आदर्श विश्व पर शासन करते हैं न कि मानव।"

11

राजेन्द्र प्रसादः एक सर्वगुण सम्पन्न राष्ट्रपति

—प्रोफेसर पी० जी० मावलंकर*

ऐसा प्रतीत होता है कि विधाता ने मानो डा० राजेन्द्र प्रसाद को राष्ट्रपति के पद के लिए ही बनाया था। उन्होंने अपने जीवन का आरम्भ अपने ही गृह राज्य बिहार में पटना नगरपालिका के अध्यक्ष पद से किया और उन्होंने सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य के सर्वोच्च राष्ट्रपति पद को शोभायमान किया, वस्तुतः विधाता ने उनका जन्म ही उस सही और उपयुक्त समय के लिये, इस सम्माननीय और दुःसाध्य राष्ट्रीय कर्तव्य का पालन करने के लिये किया था जबकि राष्ट्र की नवीन स्वतंत्रता के निर्माण का विकास काल था, तथापि राजनीति में उसकी परम्परा प्राचीन और परिपक्व रही है। सम्भवतः डा० राजेन्द्र प्रसाद को स्वतंत्र भारत का प्रथम राष्ट्रपति बनाया जाना मात्र एक संयोग ही रहा हो, किन्तु इसका सब ओर स्वागत किया गया और यह घटना आनंद की द्योतक बनी। उन्हें अध्यक्ष पद की गरिमा बनाये रखने का पूर्ण अनुभव था। वह भारत की संविधान सभा के अध्यक्ष रहे और उन्होंने इस चुनौतीपूर्ण कार्य को कर्मनिष्ठा और प्रतिष्ठा से निभाया, जिससे उस पद की महिमा बढ़ी तथा उस पर उपयोगी सृजनात्मक कार्य की छाप अंकित हो गई। देश की स्वतंत्रता के संग्राम के आरम्भिक साहसिक और निर्णायक काल के दौरान बाबू राजेन्द्र प्रसाद जी (जिस नाम से वह समस्त देश में स्नेह से जाने जाते थे) ने पूर्ण विश्वास और दक्षता के साथ इंडियन नेशनल कांग्रेस की अध्यक्षता के संवेदनशील और दुरूह उत्तरदायित्वों का निर्वाह किया। इस प्रकार एक उत्कृष्ट अध्यक्षीय कार्य संचालक के रूप में राजेन्द्र प्रसाद ने निश्चय ही अपनी योग्यता और प्रतिभा का परिचय दिया। इसलिये, जब इस पद के लिये उनके नाम की उद्घोषणा की गई, तब वह इस उत्तरदायित्व को निभाने के लिये तैयार और तत्पर थे। 26 जनवरी, 1950 को गणतंत्र के उद्घाटन समारोह की पूर्व संध्या पर डा० राजेन्द्र प्रसाद को एक मत से राष्ट्र का प्रथम राष्ट्रपति और गणतंत्र का प्रथम नागरिक चुना गया। उक्त एतिहासिक दिन इस उत्कृष्ट पद पर आसीन होने से पूर्व उन्होंने ईश्वर के नाम पर शपथ लेते हुए कहा कि वह "निष्ठापूर्वक भारत के राष्ट्रपति

*प्रोफेसर मावलंकर, भूतपूर्व संसद सदस्य (लोक सभा) हैं।

पद के दायित्व का निर्वहन" करेंगे और वह अपनी "पूरी योग्यता से संविधान और विधि का परिरक्षण, संरक्षण और प्रतिरक्षण करेंगे" और वह समर्पित भाव से (भारत के संविधान के अनुच्छेद 60 के अनुसार) "भारत की जनता की सेवा और कल्याण हेतु कार्य करेंगे।" बाद में घटी महत्वपूर्ण घटनाओं से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी पूर्ण क्षमता और साहस के साथ राष्ट्रपति के विविध कर्तव्यों एवं दायित्वों को दृढ़तापूर्वक पूरा किया।

युवा राजेन्द्र प्रसाद एक प्रतिष्ठित और सुसंस्कृत परिवार के थे। बाल्यावस्था से ही उनकी अध्ययन तथा खेल-कूद दोनों में विशेष रूचि थी। वह अत्यधिक प्रतिभाशाली छात्रों में से एक थे। अपनी असाधारण योग्यता एवं प्रतिभा के नाते उन्हें सुविख्यात कलकत्ता विश्वविद्यालय जैसे शैक्षिक संस्थान में अध्ययन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ और इस प्रकार उन्हें युवावस्था में ही ज्ञान में वृद्धि करने और अपने दृष्टिकोण को व्यापक बनाने का सुयोग मिला। बिहार में जन्मे बालक राजेन्द्र प्रसाद ने बंगाल के शिक्षा के उपयुक्त वातावरण में अध्ययन किया और प्रतिभा में निखार किया। सर्वप्रथम एक छात्र के रूप में, तत्पश्चात एक प्रवक्ता के रूप में और उसके बाद एक वकील के रूप में राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी नैसर्गिक प्रतिभा का परिचय दिया और हर क्षेत्र में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त किया। शीघ्र ही उन्होंने पटना उच्च न्यायालय में वकालत आरम्भ की। अपने ही राज्य में अपना व्यवसाय कुशलतापूर्वक करते रहने के बावजूद, राजेन्द्र प्रसाद अपने इस व्यवसाय से खुश नहीं थे। अपनी लम्बी और रोचक "आत्मकथा" में, जो उन्होंने मूलतः हिन्दी में लिखी थी (और जिसका अनुवाद अनेक भाषाओं में किया जा चुका है), उन्होंने ऐसी अनेक छोटी-बड़ी घटनाओं का उल्लेख किया है, जिन्होंने उनके चरित्र-निर्माण में निश्चित रूप से योगदान दिया और उनके सक्रिय और गतिशील जीवन को एक रहस्यमय ढंग से नई दिशा प्रदान की। लगभग हजार पृष्ठों वाली इस वृहद् एवं संस्मरण युक्त आत्मकथा में एक ओर तो बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का राष्ट्रीयं दृश्य हमारे समक्ष उपस्थित होता है तो दूसरी ओर यह भारत के बाबू राजेन्द्र प्रसाद जैसे सौम्य, सरल और सुसंस्कृत महापुरुष के सामाजिक और राजनीतिक जीवन की झांकी प्रस्तुत करती है।

स्वभाव से संवेदनशील तथा भावुक मनोवृत्ति वाले राजेन्द्र प्रसाद "सर्वेन्ट्स आफ इंडिया सोसाइटी", जिसकी स्थापना 12 जून, 1905 को पुणे, महाराष्ट्र में गोपाल कृष्ण

गोखले जैसे महान् और सौम्य स्वभाव वाले व्यक्ति ने की थी, के एक सक्रिय और पूर्णकालिक सदस्य बन गए और मातृभूमि की सेवा में लग गये। सोसायटी का आदर्श स्वरूप, उद्देश्य और लक्ष्य देश, "राष्ट्रीय मिशनरियों" की निःस्वार्थ सेवा करना और देश को ऊपर उठाना तथा "संवैधानिक प्रावधानों के माध्यम से भारत के लोगों के वास्तविक हितों को बढ़ावा देना था।" सर्वेण्ट्स आफ इंडिया सोसायटी के उद्देश्य और कार्यक्रम ने युवा राजेन्द्र प्रसाद के दिमाग और कल्पना को आकर्षित किया। जब गोखले कलकत्ता के दौरे पर थे, तो राजेन्द्र और उनके साथी तथा कानून की शिक्षा ले रहे सहपाठी श्रीकृष्ण प्रसाद को उस महानगर में माननीय नेता और संसदविद गोपालकृष्ण गोखले के साथ व्यक्तिगत मुलाकात करने का अवसर मिला। राजेन्द्र प्रसाद "सोसायटी" में औपचारिक रूप से शामिल होने हेतु तैयार थे। वे शायद गोखले से भेंट करने से पहले भी उनके अंदर जनसेवा की लालसा छुपी हुई थी। गरीबों और दलितों की सेवा करना ही राजेन्द्र की धारणा और सपना था। उनके बड़े भाई महेन्द्र प्रसाद, जिनसे छोटा भाई भावनात्मक रूप से जुड़ा हुआ था और बीसियों बार उनका आभारी भी रहा, ने राजेन्द्र प्रसाद को गोखले की "सोसायटी" में शामिल होने से रोका। निस्संदेह राजेन्द्र प्रसाद निराश और उदास हो गए, किन्तु उन्होंने स्थिति के साथ चुपचाप समझौता कर लिया और इसे अपने भाग्य पर छोड़ दिया।

तथापि, राजेन्द्र प्रसाद के लिए सौभाग्य और सफलता मिलना निश्चित था। यदि वे गोखले के शिष्य नहीं बन सके, तो इसका कारण यह था कि उनके भाग्य में गोखले के अनुयायी मोहनदास कर्मचंद गांधी का शिष्य बनना लिखा था। वर्ष 1915 में गांधीजी दक्षिण अफ्रीका से स्वदेश लौटे और अपने गृह राज्य गुजरात के अहमदाबाद में बस गए। साबरमती नदी के किनारे आश्रम में अपना स्थाई निवास बनाने के बाद महात्मा जी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन के लिए अपना अभियान शुरू किया, या यों कहिए कि पुनः शुरू किया और वर्ष 1917-1918 में खेड़ा सत्याग्रह से पूर्व गांधी जी वर्ष 1917 में चम्पारन जिले में विदेशी दमनकारी शासन के विरुद्ध किसानों और लोगों का एक और अभियान छेड़ने के लिए बिहार गए थे। किन्तु जनसेवा की भावना से ओतप्रोत पटना के वकील राजेन्द्र प्रसाद में "सत्य आन्दोलन" के प्रति रूचि स्वभाविक रूप से उत्पन्न हुई और वह तुरंत ही बिहार के वकीलों के उस संगठन के सदस्य बन गए जो गांधीजी के अपने किस्म के नए संघर्ष में सक्रिय रूप से भाग ले रहे थे और उसमें सहायता दे रहे थे, जो उन्होंने सदियों से अभावग्रस्त और अपमानित लोगों के उत्थान तथा उनमें जागृति लाने के लिए शुरू किया था। चम्पारन आंदोलन भारत में जन आंदोलन का पहला उदाहरण था। सम्पूर्ण राष्ट्र में जोश और स्फूर्ति थी। गांधीजी ने अपने "सत्याग्रह" के मार्ग, जो उन्होंने चम्पारन में अपनाया था, को पुनः नया आयाम दिया। इससे गांधीजी के

साथ डा० राजेन्द्र प्रसाद जैसी प्रतिष्ठा के आध्यात्मिक ज्ञान वाले व्यक्ति शामिल हुए। "महात्मा" ने इस जनप्रिय संघर्ष को आध्यात्मिक आंदोलन का रूप दिया और इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि राजेन्द्र प्रसाद जैसे प्रतिभा के धनी व्यक्ति स्वेच्छा से और पूरे विश्वास के साथ गांधीजी की तरफ आकृष्ट हुए ताकि वे गांधीजी के आश्रम में स्थायी रूप से और सार्थक रूप से रह सकें। "चम्पारन में सत्याग्रह" की पूरी कहानी को बाबू राजेन्द्र प्रसाद ने इसी शीर्षक से प्रकाशित 225 पृष्ठों की अपनी पुस्तक में बहुत ही स्पष्ट व सहज रूप से लिखा है। इसे वर्ष 1919 में हिन्दी में लिखा गया था और यह पहली बार 1922 में प्रकाशित हुई। इसका अंग्रेजी संस्करण मार्च, 1928 में प्रकाशित किया गया। राजेन्द्र प्रसाद ने यह पुस्तक "दमित मानवजाति" को समर्पित की। गांधी जी के साथ सहज व निकट का संबंध होने के कारण राजेन्द्र प्रसाद राष्ट्रीय आन्दोलन के अग्रणी नेताओं में आ गये। वे एक अग्रणी कांग्रेसी बन गए। गांधी जी द्वारा दिया गया आध्यात्मिक ज्ञान उस प्रत्येक अच्छे कार्य में काम आया जिसे राजेन्द्र प्रसाद ने देश के लिए किया। राजेन्द्र बाबू ने ग्रामीण भारत को कभी भी दूसरा दर्जा या स्थान नहीं दिया। इसके बजाय उन्होंने ग्रामीण भारत और इसके असंख्य लोगों को प्रथम दर्जा दिया। आखिरकार, भारत की अधिकतर जनसंख्या अनगिनत गांवों में रहती थी और रहती है और राजेन्द्र प्रसाद ने हमेशा ग्रामीण जनता और उनके जीवन तथा समस्याओं को उच्च प्राथमिकता दी। वे गांधी जी के 14 सूत्री "रचनात्मक कार्यक्रम" से बहुत प्रभावित हुए और "कुछ सुझाव" देते हुए 48 पृष्ठों की एक विविरणिका जारी की। पटना न्यायालय में वकील से पूरे उपमहाद्वीप के दमित और उपेक्षित लोगों के हितों का रक्षक बनने के लिए राजेन्द्र प्रसाद को एक लम्बी और घटनाओं से भरी यात्रा करनी पड़ी। यह यात्रा श्रमसाध्य, अप्रत्याशित रूप से उत्साह भरने वाली, रूचिकर और आत्मा को संतुष्ट कर देने वाली थी। इस यात्रा का उद्देश्य लोगों की और लोगों के लिए सेवा करना और उस कार्य में आनन्द लेना था। गांधीवादी रचनात्मक कार्यक्रम में राजेन बाबू की निष्ठा न केवल उनके प्रति "विश्वास मात्र" थी बल्कि वह सक्रियता और दैनिक कार्यशीलता के लिए सहज और वास्तविक रूप में उनकी विचारधारा भी थी। उन्होंने यह अनुभव इतिहास की उस घटना से किया जब वे अकस्मात गांधी जी के आध्यात्मिक प्रभाव और उनकी शरण में आए तथा जीवन भर गांधी जी के प्रभाव में रहे।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में डा० प्रसाद का महत्वपूर्ण और अत्यधिक योगदान रहा। जिसके परिणामस्वरूप उन्हें अपने असंख्य देशवासियों का स्नेह और सम्मान प्राप्त हुआ। लोगों ने उन्हें अत्यधिक सम्मान दिया और जहां भी वह गए, उन्होंने लोगों का ध्यान आकर्षित किया और लोगों के प्रशंसा के पात्र रहे। वह राष्ट्र की अखंडता और संस्कृति की जीती-जागती मिसाल बन गए। इस वास्तविक लोकप्रियता ने उन्हें इतना

अधिक बल प्रदान किया कि वह राष्ट्रपति भवन से अपने प्रधान कार्य का गरिमा और शालीनता के साथ स्वतंत्र और निष्पक्षरूप से संचालन करते रहे। डा० राजेन्द्र प्रसाद ने 2 सितम्बर, 1948 को गठित अन्तरिम सरकार में खाद्य और कृषि मंत्री के रूप में भी कार्य किया। संकट की घड़ी में यह अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्यभार था। किन्तु उन्होंने यह उत्तरदायित्व पूरी सफलता और आत्म-सन्तुष्टि से साथ निभाया। यदि उनकी इच्छा होती तो वह 15 अगस्त, 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद केन्द्रीय मंत्रिमंडल में शायद हमेशा ही बने रहते। किन्तु, इस बीच, उन्हें भारत की संविधान सभा का अध्यक्ष चुन लिया गया, और यह कार्य इतना कठिन और रचनात्मक था कि इसे मंत्रिमंडल-पद के साथ जोड़ना उचित नहीं था। संधिान सभा को हुए लाभ की तुलना में केन्द्रीय मंत्रिमंडल को इससे कहीं अधिक क्षति हुई।

संविधान सभा की पहली बैठक नई दिल्ली में 9 दिसम्बर, 1946 को आयोजित की गई। दो दिन बाद, 11 दिसम्बर, को डा० राजेन्द्र प्रसाद इसके अध्यक्ष चुन लिए गए। यह डा० राजेन्द्र प्रसान में राष्ट्र के विश्वास और लोगों द्वारा उनके विशिष्ट गुणों को तन-मन से स्वीकार किए जाने का परिणाम था। डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने उन सभी संविधान निर्माताओं की भावनाओं को दोहराया जो सभा में एकत्र थे। जब सर्वसम्मति से निर्वाचित अध्यक्ष का अभिनन्दन किया जा रहा था तो दार्शनिक राजनेता ने कहाः

> "संविधान राष्ट्र का मौलिक कानून होता है.....यह कोई संयोग की बात नहीं है कि हमारे सभापति बिहार के रहने वाले हैं। उनमें "बिहार" की भावना कूट-कूट कर भरी है। वह विनम्रता की प्रतिमूर्ति हैं—भारत की आत्मा हैं। "महाभारत" के अनुसार, विनम्रता से कठिन से कठिन परिस्थितियों से और सरल से सरल परिस्थितियों से सहजता से निपटा जा सकता है। विनम्रता द्वारा किसी भी कार्य में सफलता प्राप्त करना असंभव नहीं है। विनम्रता एक तीक्ष्ण अस्त्र है। डा० राजेन्द्र विनम्रता की प्रतिमूर्ति हैं। सौजन्यता की प्रतिमूर्ति हैं, उनमें धैर्य और साहस है, उन्होनें मुसीबतों का सामना किया है।"

संविधान सभा के अध्यक्ष डा० प्रसाद ने सभा में सब ओर से की गई अपनी प्रशंसा के प्रत्युत्तर में पूरी विनम्रता और कृतज्ञतापूर्वक टिप्पणी की "यह सभा एक स्वायत्तशासी और स्व-निर्णायक, स्वतंत्र निकाय है जिसकी कार्यवाही में कोई बाह्य प्राधिकरण हस्तक्षेप नहीं कर सकता और जिसके निर्णयों में कोई बाह्य परिवर्तन, फेर-बदल अथवा संशोधन नहीं कर सकता।" वास्तव में संविधान सभा सर्वोच्च सदन था जिसका कार्य इस विशाल और विविध, प्राचीन और आधुनिक देश के लिए, जिसे भारत माता के नाम से जाना जाता है, एक लोकतांत्रिक संविधान का प्रारूप तेजी से और उचित रूप से तैयार करना तो था किन्तु जल्दबाजी में और लापरवाही से नहीं। यह लगभग असम्भव सा प्रतीत होने

वाला कार्य तीन वर्षों की अपेक्षाकृत छोटी सी अवधि में पूरा कर लिया गया। इसके लिए हम मुख्यतः दूरदर्शी नेताओं और इस कार्य हेतु समर्पित सदस्यों के आभारी हैं। जैसाकि ग्रैंविल आस्टिन ने स्पष्ट शब्दों में कहा है: "इस कार्य में सदस्यों ने विशिष्ट आदर्शवाद और स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए किए गए संघर्ष में निहित प्रयोजन को कार्यरूप देने का भरसक प्रयत्न किया है। सदस्यों के मतानुसार संविधान से स्वतः नये भारत का निर्माण नहीं हो सकता" किन्तु इसका उद्देश्य मार्गदर्शन करना है।" सर वी०एन०राव ने, जिन्हें विशेष रूप से संवैधानिक सलाहकार नियुक्त किया गया था, डा० बी०आर० अम्बेडकर, अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर और एन० गोपालस्वामी आयंगर, वी०टी० कृष्णमाचारी, के०एम० मुन्शी, के सन्थानम, के०टी०शाह—केवल कुछ ही नामों का उल्लेख किया गया है—जैसे प्रतिष्ठित और अनुभवी संवैधानिक विशेषज्ञ मंडल सहित अनेक अनुभवी राजनेताओं और स्वतंत्रता आन्दोलन के दिग्गज नेताओं के सहयोग से वर्तमान पीढ़ी और भावी पीढ़ियों के लिए निस्संदेह मार्ग प्रशस्त किया है।

ग्रैंविल ऑस्टिन ने चार राष्ट्रीय नेताओं—पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, डा० राजेन्द्र प्रसाद और मौलाना अबुल कलाम आजाद के बारे में महत्वपूर्ण बातें कही हैं। प्रसिद्ध अमरीकी लेखक तथा इतिहासकार के शब्दों में: वस्तुतः सभा में नेहरू, पटेल, प्रसाद और आजाद जैसे कुछ सदस्य ही निपुण सदस्य थे।*

संविधान सभा के सदस्यों का तीन वर्ष तक चला गंभीर तथा ठोस प्रयास उस समय फलीभूत हुआ जब अन्ततः यह प्रस्ताव, "कि संविधान सभा द्वारा बनाये गये रूप में पारित किया जाये," 26 नवम्बर, 1949 को सर्वसम्मति से तालियों की गड़गड़ाहट के बीच स्वीकार किया गया। डा० अम्बेडकर ने 25 नवम्बर, 1949 को प्रस्ताव पेश करते समय एक विद्वत्तापूर्ण तथा प्रेरणाप्रद भाषण दिया। इस प्रस्ताव को औपचारिक रूप से रखे जाने से पूर्व राष्ट्रपति प्रसाद ने इस पर कुछ बोलना चाहा। "वे हिन्दी में बोले। इतने अधिक महत्वपूर्ण कार्य को पूरा करने पर सभा को बधाई देते हुए उन्होंने सदस्यों द्वारा परिश्रमपूर्वक किये गये संविधान-निर्माण के महान कार्य के इतिहास और तरीकों पर थोड़ा प्रकाश डाला। राष्ट्रपति की स्थिति के संबंध में उन्होंने कहा: "हमें निर्वाचित विधायिका के साथ निर्वाचित राष्ट्रपति की स्थिति का तालमेल बिठाना था और ऐसा करने के लिए हमने राष्ट्रपति के मामले में न्यूनाधिक रूप से ब्रिटेन के महाराजा जैसी स्थिति को स्वीकार किया है। इस स्थिति को संतोषजनक माना भी जा सकता है और नहीं भी। कुछ लोगों का विचार है कि राष्ट्रपति को बहुत अधिक शक्ति दे दी गई है जबकि अन्य लोगों का कहना है कि निर्वाचित राष्ट्रपति के रूप में उसे और अधिक शक्तियां दी जानी चाहिये थीं।"

---

*ऑस्टिन, ग्रैंविल: दि इंडियन कंस्टीट्यूशन, कार्नरस्टोन ऑफ ए नेशन, ऑक्सफोर्ड, लंदन, 1966

तत्पश्चात् डा० राजेन्द्र प्रसाद ने राष्ट्रपति के निर्वाचन के तरीके के बारे में विचार व्यक्त किये और अंततः उन्होंने माना कि " उनकी स्थिति एक संवैधानिक राष्ट्रपति के समान है"। तब डा० प्रसाद ने इस संबंध में इससे अधिक कुछ नहीं कहा। किन्तु भारत के राष्ट्रपति के पद की सम्पूर्ण स्थिति के संबंध में उनका तत्कालीन मौन 26 जनवरी, 1950 से 12 मई, 1962 तक उनके राष्ट्रपति पद पर रहने के दौरान, सार्थक रूप से मुखरित हुआ। उन्होंने हमारे संविधान में साहसपूर्वक तथा बुद्धिमत्तापूर्वक रखे गये वयस्क मताधिकार के सिद्धान्त पर अपना मत व्यक्त करते हुए कहा कि "कुछ लोगों ने वयस्क मताधिकार को अपनाये जाने के औचित्य पर सन्देह व्यक्त किया है। किन्तु व्यक्तिगत रूप से मैं इसे एक प्रयोग मानता हूं जिसके परिणाम की पूर्वघोषणा कोई भी अभी नहीं कर पायेगा। मुझे इस बारे में किसी प्रकार का कोई भय नहीं है। मैं एक गाँव का आदमी हूं...मेरा अभी भी गांव से सम्पर्क बना हुआ है। इसीलिए मैं गांव के उन लोगों को जानता हूं जिनसे इस विशाल निर्वाचक मंडल का एक बड़ा भाग बनेगा। मेरे विचार से हमारे लोगों में अपेक्षित बुद्धि तथा सामान्य ज्ञान है। उनकी एक संस्कृति भी है। जिसे आज के आधुनिक लोग भले ही पसंद न करें लेकिन वह ठोस है....अतः मैं इस बात से आश्वस्त हूं कि इस वजह से भविष्य पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ेगा।"

सरल शब्दों में सावधानीपूर्वक तैयार किये गये समापन भाषण के अंत में राष्ट्रपति प्रसाद ने कहाः मुझे केवल दो बातों के बारे में अफसोस है, जिसे मैं माननीय सदस्यों को भी बताना चाहूंगा। मैं चाहता था कि विधानमंडलों के सदस्यों के लिए कुछ अर्हताएं निर्धारित की जायें। यह तर्कसंगत नहीं है कि उन लोगों के लिए तो उच्च अर्हतायें रखी जायें जो प्रशासन चलाते हैं अथवा कानून लागू करते हैं किन्तु उनके लिए कोई अर्हता निर्धारित न की जाये जो कानून बनाते हैं, और केवल निर्वाचित होना ही उनकी योग्यता मान ली जाये। एक विधि-निर्माता न केवल बुद्धिमान होना चाहिए, बल्कि उसमें हर मामले में संतुलित दृष्टिकोण अपनाने की योग्यता भी होनी चाहिए ताकि वह स्वतंत्र रूप से कार्य कर सके और सबसे बढ़कर जीवन के मौलिक मूल्यों के प्रति सच्चा बन सके, एक शब्द में कहें, तो उसे चरित्रवान होना चाहिए।" सभी पक्षों के सदस्यों ने तुरंत उसका हर्षध्वनि से समर्थन किया। राष्ट्रपति ने आगे कहाः "किसी मनुष्य के नैतिक गुणों को मापने के लिए कोई मानदंड बनाना संभव नहीं है और जब तक ऐसा नहीं होता तब तक हमारे संविधान में दोष बने रहेंगे।" जिस दूसरी बात के लिए डा० प्रसाद ने खेद व्यक्त किया वह यह थी कि हमारे स्वतंत्र भारत के प्रथम संविधान को हम किसी भारतीय भाषा में तैयार नहीं कर सके।" साथ ही राष्ट्रपति ने स्वीकार किया कि "दोनों मामलों में कठिनाइयां व्यावहारिक थीं और उन्हें पार नहीं किया जा सका" फिर भी उन्होंने पश्चाताप

करते हुए कहा कि अलंघ्य व्यावहारिक कठिनाई होने के बावजूद यह खेद कम हृदयविदारक नहीं हो जाता। अंत में, उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि एक लोकतांत्रिक संविधान को व्यावहारिक एवं सार्थक बनाने के लिए सुस्थापित परम्पराओं का पालन करना परम आवश्यक है। उन्होंने उन लोगों को सलाह दी, जिन्हें "अन्य लोगों के दृष्टिकोण का सम्मान करने की इच्छा तथा समझबूझ और समायोजन की क्षमता" को बढ़ाने के लिए लोकतान्त्रिक संस्थाओं को सफलतापूर्वक चलाना पड़ता है। सौभाग्य से हमारे लोकतंत्र के अस्तित्व में आने के चार दशक बाद भी, संसदीय संस्थाओं का ढांचा अक्षुण्ण है, हमें इस पर चिंतन करने की तथा चेतावनी और आह्वान के इन विवेकपूर्ण शब्दों को और अधिक निष्ठा और ईमानदारी के साथ प्रयोजनपूर्वक कार्यान्वित करने की आवश्यकता है।

डा० राजेन्द्र प्रसाद एक विद्वान अधिवक्ता, प्रिय साथी, प्रबल, धर्मावलम्बी, योग्य प्रशासक और कुशल संसदविद् थे तथा इन सबसे बढ़कर बात यह है कि वह एक सभ्य और सहृदय व्यक्ति थे। वह एक ऐसे विश्वासपात्र राष्ट्रीय नेता थे, जिन्हें उनकी सादगी और सच्चाई के लिए लोग सम्मान दिया करते थे। उन्होंने हमारे गणतंत्र के राष्ट्रपति पद की गरिमा बढ़ायी और भारत की एकता के लिए निरन्तर कार्य किया। वह भारत की महान विरासत के प्रति वफादार रहे। उन्होंने महात्मागांधी के चरणों में जनसेवा का पाठ सीखा तथा "राष्ट्रपिता" की मन की आवाज को अपनी कथनी और करनी में परिणित करने के लिए हर संभव प्रयास किया।

डा० राजेन्द्र प्रसाद की परम सहयोगी "भारत कोकिला" सरोजिनी नायडू ने डा० प्रसाद के संविधान सभा के अध्यक्ष चुने जाने के अवसर पर काव्यात्मक शैली में निम्न टिप्पणी की थी:

> "पर मेरी कल्पना में वह एक कठोर खड्गधारी न होकर एक सुमनोहर पुष्पधारी देवदूत के समान होगा, जो मानव हृदय पर विजय पाता है। यह इसलिए कि राजेन्द्र बाबू में स्वाभाविक माधुर्य है जो बल का काम करता है, उनमें अनुभवजन्य सहज ज्ञान है, शुद्ध दृष्टि है, रचनात्मक कल्पनाशक्ति और विश्वास है, जो गुण उन्हें स्वयं भगवान बुद्ध के चरणों के सन्निकट पहुंचा देते हैं। वह आज भारतीय भाग्य के, उसके लक्ष्य के प्रतीक है, वह हमें विधान बनाने में सहायता देंगे और ऐसा विधान बनाने में जो हमारी मातृभूमि को आज भी शृंखला में बद्ध भारत भूमि को उसका उचित स्थान दिलायेगा और उसके हाथ में शांति, स्नेह और स्वातंत्र्य का प्रदीप दे उसे संसार का पथ-प्रदर्शक बनायेगा।"

12

डा० राजेन्द्र प्रसादः एक विशिष्ट व्यक्तित्व

— डा० सुशीला नायर*

डा० राजेन्द्र प्रसाद की गिनती उन उत्कृष्ट राष्ट्रीय नेताओं में की जाती है, जिन्होंने महात्मा गांधी द्वारा बताए गए मार्ग पर चलकर भारत को आजादी दिलवाई। उनकी गिनती कुछ ऐसे गिने चुने लोगों में भी की जाती है, जो अन्त तक राष्ट्रपिता द्वारा निरुपित आदर्शों और मूल्यों के प्रति सदैव दृढ़निश्चयी रहे। कांग्रेस के पदों या नेतृत्व को लेकर जब भी कोई भ्रम उत्पन्न हुआ और जब कभी अधीर किस्म के लोग अहिंसा के संकरे पथ से विचलित होते दिखाई दिए, जिन घटनाओं से गांधी जी अनेक बार अत्यधिक व्यथित हुए, तब ऐसे अवसरों पर राजेन्द्र प्रसाद अपने इस विश्वास पर अडिग रहे कि गांधी जी का बताया रास्ता ही उद्देश्य प्राप्ति का एकमात्र मार्ग है और वह इस हेतु सतत प्रयत्नशील भी रहे।

डा० राजेन्द्र प्रसाद का जन्म 3 दिसम्बर, 1884 को उत्तर बिहार में सारन जिले के जीरादेई में एक ऐसे सम्पन्न कायस्थ परिवार में हुआ था, जिसके पास पर्याप्त भूसम्पत्ति थी। वर्ष 1896 में जब उनकी आयु केवल बारह वर्ष की थी, तब राजवंसी देवी के साथ उनका विवाह हो गया। उन्होंने अपनी विश्वविद्यालय शिक्षा कलकत्ता में प्राप्त की, जहां से उन्होंने 1907 में एम०ए० पास किया। इसके बाद उन्होंने 1910 में बी०एल० किया और फिर 1915 में एम०एल० भी किया। क्योंकि वह स्वयं को एक सफल वकील बनाना चाहते थे। तथापि, उन्होंने वर्ष 1911 से 1920 तक, पहले कलकत्ता उच्च न्यायालय में और इसके बाद पटना उच्च न्यायालय में, अनियमित रूप से वकालत की। इस दौरान उन्होंने कलकत्ता में एक कालेज में दो वर्ष तक अध्यापन कार्य भी किया। एक छात्र के रूप में, राजेन्द्र प्रसाद का पूरा शैक्षिक रिकार्ड एक प्रतिभाशाली छात्र का रहा और एक वकील के रूप में वह बहुत थोड़े समय में ही मशहूर हो गए थे।

---

*डा० सुशीला नायर एक भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री, प्रख्यात गांधीवादी विचारक, स्वतंत्रता सेनानी और सामाजिक कार्यकर्ता हैं।

किन्तु जिन दिनों राजेन्द्र प्रसाद अपनी वकालत अच्छी तरह जमाने के लिए संघर्ष कर रहे थे, उन्हीं दिनों जन सेवा के क्षेत्रों में भी उनका पदार्पण हो रहा था। वर्ष 1912 में, उन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में स्वागत समिति के सचिव के रूप में कार्य किया। वर्ष 1913 में उन्होंने मुंगेर में हुए बिहार छात्र सम्मेलन की अध्यक्षता की।

राजेन्द्र प्रसाद 1917 में चम्पारण सत्याग्रह के दौरान गांधी जी के सम्पर्क में आए। चम्पारण के निर्धन ग्रामीणों का नील की खेती कराने वाले व्यक्तियों द्वारा शोषण किया जा रहा था। यह शोषण कई वर्षों से चल रहा था और चम्पारण के किसानों द्वारा न्यायालयों की शरण लेने सहित सभी प्रयास किए जाने के बावजूद, उन्हें राहत दिए जाने में टालमटोल की जा रही थी। विदेशी सरकार शोषकों के साथ थी। यहां तक कि न्यायालय भी उन गरीब किसानों को न्याय नहीं दे पाए, जिन्हें अपनी परती भूमि के 3/20 भाग में नील की खेती करने के लिए बाध्य किया जाता था और उन्हें इसका बहुत कम मूल्य दिया जाता था। नील की खेती कराने वाले व्यक्तियों तथा उनके कर्मचारियों द्वारा गैर कानूनी तरीके से अन्य कई जबरन वसूलियां की जाती थीं।

उक्त शोषण के खिलाफ विद्रोह हुए और अनेक किसानों को जेल जाना पड़ा तथा नील की खेती कराने वाले व्यक्तियों और उनके सहायकों के हाथों अन्य प्रकार से उन्हें विभिन्न यातनाएं झेलनी पड़ीं। लेकिन शोषण जारी रहा। किसान बहुत ही गरीब थे और उसमें से अधिकांशतः भुखमरी की स्थिति में पहुंच गए थे। उनके लिए अथवा उनकी स्त्रियों और बच्चों के लिए शिक्षा अथवा स्वास्थ्य की देखरेख की कोई सुविधा नहीं थी। उन्हें जबरन काम करना पड़ता था और वे अमानवीय तथा अत्यंत अपमानजनक परिस्थितियों में जीवन यापन करने के लिए विवश थे।

राजकुमार शुक्ल, जो नील की खेती कराने वाले व्यक्तियों द्वारा पीड़ित व्यक्तियों में से एक व्यक्ति थे, वर्ष 1916 में लखनऊ कांग्रेस में उक्त किसानों की समस्या के प्रति गांधी जी में रुचि उत्पन्न करने में सफल हो गये और 1917 के प्रारंभ में उन्हें उक्त हालात दिखाने के लिए बिहार ले आए। वह उन्हें पटना में राजेन्द्र प्रसाद के घर ले गए। राजेन्द्र प्रसाद उस समय शहर में नहीं थे और घर के नौकरों ने उन्हें अपने मालिक का गरीब मुवक्किल समझ कर बाहर के कमरे में ठहरा दिया। यहां तक कि उन्होंने उन्हें शौचालय और स्नानागृह का इस्तेमाल भी नहीं करने दिया। गांधी जी ने पटना के प्रमुख वकील और

कांग्रेस के नेता मजहरुल हक से सम्पर्क किया, जो इंग्लैंड में उनके परिचित थे। मजहरुल हक उन्हें अपने घर ले गए और उसी रात को गांधी जी राजकुमार शुक्ल के साथ चम्पारण चल दिए। मुजफ्फरपुर में, आचार्य कृपलानी द्वारा उनका स्वागत किया गया जो एक स्थानीय कालेज में प्रोफेसर थे। राजेन्द्र प्रसाद को जब यह पता चला कि पटना में उनके घर गांधी जी के साथ किस प्रकार का बर्ताव किया गया तो वह अत्यंत लज्जित हुए। वह शीघ्र ही चम्पारण में उनके अनुयायी बन गए।

गांधी जी ने नील की खेती करने वाले किसानों की शिकायतों की जांच करने का निर्णय करके सभी पीड़ित व्यक्तियों के बयान लेने आरंभ कर दिए। अपना जांच-कार्य आरंभ करने से पहले वह जिला अधिकारियों तथा "प्लांटर्स एसोसिएशन" के अधिकारियों से मिले। उन्होंने उन्हें जांच करने से रोकने की कोशिश की। जिला मजिस्ट्रेट द्वारा उनके लिए निष्कासन का आदेश जारी किया गया, जिसकी उन्होंने परवाह नहीं की। राजेन्द्र प्रसाद तथा अन्य वकीलों पर इसका भारी प्रभाव पड़ा। उन्होंने जांच जारी रखने का निर्णय किया और तय किया कि यदि उन्हें जेल भेजा गया तो उनके साथ वे भी जेल जाएंगे। इससे गांधी जी को प्रसन्नता हुई और उन्होंने कहा कि तब उन्हें निश्चित रूप से सफलता मिलेगी। अन्त में निष्कासन आदेश वापस लिया गया और जांच जारी रखने की अनुमति प्रदान की गई।

गांधी जी को किसानों के बयान लिपिबद्ध करने के लिए भाषान्तरकारों, कानून की जानकारी रखने वाले कार्यकर्ताओं तथा लिपिकों की आवश्यकता थी। जन सेवा के लिए अनेक उत्साही वकीलों, स्वयंसेवियों में गोरख प्रसाद, बृज किशोर प्रसाद, राजेन्द्र प्रसाद, रामनवमी प्रसाद और धरनीधर प्रसाद मुख्य व्यक्ति थे। दिनांक 17 अप्रैल, 1917 से उन्होंने पहले मोतिहारी में और उसके बाद बेतिया में किसानों के बयान लिपिबद्ध करने का काम आरंभ कर दिया।

प्रातःकाल से लेकर सायं काफी देर तक काम करके उन्होंने सिर्फ तीन सप्ताह में कम से कम 4000 बयान एकत्र किए। इन्हीं के आधार पर गांधी जी अधिकारियों को एक रिपोर्ट भेज सके, जिसके फलस्वरूप सरकारी जांच समिति नियुक्त की गई, जिसमें नील की खेती करने वाले किसानों का प्रतिनिधित्व करने के लिए गांधी जी को सदस्य के रूप में नियुक्त किया गया। इस समिति की रिपोर्ट का उद्देश्य चम्पारण के नील की खेती करने वाले किसानों का सदियों से किया जाने वाला शोषण समाप्त करना था। गांधी जी ने अपनी आत्मकथा में राजेन्द्र प्रसाद तथा बृज किशोर प्रसाद के बारे में लिखा है कि वे एक अद्वितीय मानव-युग्म थे, जिनकी निष्ठा ने उन्हें इतना अपरिहार्य बना दिया था कि उन्हें तब उनकी सहायता के बिना, एक भी कदम उठाना असंभव लगता था।

राजेन्द्र प्रसाद का परिवार रूढ़िवादी हिन्दू परिवार था। वह केवल ब्राह्मण अथवा अपनी ही जाति के व्यक्ति द्वारा बनाया गया भोजन कर सकते थे। वह स्वयं अपने हाथों से कोई कार्य नहीं करते थे। लगभग सभी वकील जो गांधी जी की सहायता के लिए आए थे, इसी प्रकार के थे और वे अपने-अपने नौकर साथ लाए थे। लेकिन गांधी के अनुशासन में वे अपना कार्य स्वयं करना सीख गए और उन्होंने नौकरों की सहायता के बिना कार्य करना शुरू कर दिया। राजेन्द्र प्रसाद तथा अन्य साथियों ने अपने स्नान और अपने कपड़े साफ करने के लिए कुएं से पानी खींचा। वे अपने कमरों की सफाई करना और भोजन के पश्चात अपने झूठे बर्तनों को साफ करना सीख गए और इस प्रकार वे रसोई के बर्तनों को साफ करने लगे। वे एक-साथ खाना सीख गए और जाति-पांति को भुलाकर एक परिवार बन गए। उन दिनों बिहार के लिए ये एक प्रकार के क्रांतिकारी परिवर्तन ही थे।

राजन बाबू तथा अन्य वकील सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक अपने आगे छोटे डेस्क रखकर फर्श पर बैठे रहते थे और बयानों को लिपिबद्ध करते रहते थे तथा इस बीच वे दोपहर का भोजन और थोड़ा आराम करने के लिए कुछ समय के लिए काम बन्द कर दिया करते थे। शाम को वे गांधी जी के साथ टहलने जाते थे और उनसे बातचीत करते थे, जो उनके लिए एक प्रकार से सामान्य शिक्षा की कक्षा हुआ करती।

गांधी जी नील की खेती कराने वाले व्यक्तियों द्वारा ग्रामीणों का शोषण समाप्त करने हेतु किए गए कार्य, जिसमें वे सफल रहे थे, से ही संतुष्ट नहीं थे बल्कि वह चम्पारण के ग्रामीणों की रहन-सहन की स्थिति में भी सुधार करना चाहते थे। उन्होंने जांच कार्य के दौरान कस्तूरबा तथा आश्रम की अन्य महिलाओं को हल्की-फुल्की दवाईयां बांटने और स्कूल चलाने के कार्य पर लगा दिया था। महिलायें रोगियों की देखभाल करती थीं तथा गांवों के बच्चों और प्रौढ़ों को स्वास्थ्य संबंधी जानकारी देने तथा सफाई और स्वस्थ जीवन जीने संबंधी अन्य नियमों के बारे में बताने के अतिरिक्त, उन्हें तीन बातें—लिखना, पढ़ना और हिसाब लगाना सिखाती थीं। समूचे देश से अनेक कार्यकर्ताओं ने गांधीजी के इस कार्य में भाग लिया तथा राजेन्द्र प्रसाद और उनके साथियों ने यहीं से रचनात्मक कार्यों की शुरूआत की।

फिर राजेन्द्र प्रसाद ने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। इसके बाद उन्होंने गांधी जी द्वारा शुरू की जाने वाली सभी गतिविधियों में सदैव बढ़ चढ़कर भाग लिया। वर्ष 1918 में उन्होंने "सर्चलाइट" नाम से एक अंग्रेजी दैनिक और 1920 में "देश" नाम से एक हिन्दी साप्ताहिक शुरू किया।

वर्ष 1920 में जब गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया, तो राजेन्द्र प्रसाद

इसमें शुरू से ही शामिल हो गए। इस आन्दोलन को आगे बढ़ाने हेतु पटना में उन्होंने मजहरुल हक के साथ एक स्वराज सभा की स्थापना की। उन्होंने "नेशनल कालेज" की भी स्थापना की थी तथा इसके प्रधानाचार्य के रूप में कार्य किया। उनके सक्रिय मार्ग निर्देशन में असहयोग आन्दोलन बिहार में बड़ी तेजी से फैला तथा प्रान्तों के दूरस्थ गांवों में स्वराज, खद्दर और नशाबंदी का संदेश पहुंचा। राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी पुस्तक "ऐट दी फीट आफ महात्मा गांधी" में कहा है कि उन्होंने पूरे प्रान्त के लगभग सभी सब-डिविजनों का दौरा किया था।

फरवरी 1922 में चौरी-चौरा हिंसा कांड के बाद, जब गांधी जी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन को वापस ले लिया, तो बहुत से कांग्रेसजनों ने उनकी आलोचना की तथा अनेक व्यक्तियों ने अपना आक्रोश अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की उस बैठक में व्यक्त किया जो दिल्ली में उस माह के अन्त में हुई थी। राजेन्द्र प्रसाद उन कुछेक व्यक्तियों में से थे, जो गांधी जी के साथ पूरी तरह से सहमत थे।

तत्पश्चात मार्च में जब गांधी जी को गिरफ्तार करके उन पर मुकदमा चलाया गया, तो राजेन्द्र प्रसाद अदालत में उपस्थित थे और न्यायाधीश ने जब गांधी जी को 6 वर्ष की सजा सुनाई, तो राजेन्द्र प्रसाद अपने भावादेश को नहीं रोक सके तथा वह वहीं फफक कर रो पड़े।

गांधी जी की अनुपस्थिति में कांग्रेस दो भागों में बंट गई—एक तरफ "प्रो चेन्जर्स" (परिवर्तन समर्थक) थे जो विधानमंडलों में जाना चाहते थे, तथा दूसरे पक्ष में "नो-चेन्जर्स" (परिवर्तन विरोधी) थे, जो असहयोग आन्दोलन जारी रखना तथा कानूनी अदालतों, सरकारी विद्यालयों, महाविद्यालयों, विधानमंडलों आदि का बहिष्कार करते रहना चाहते थे। परिवर्तन समर्थकों का नेतृत्व सी० आर० दास, मोतीलाल नेहरू, विट्ठलभाई पटेल, मदन मोहन मालवीय जैसे बड़े नेता और अलीबन्धु कर रहे थे। परिवर्तन विरोधी में राजेन्द्र प्रसाद, सी० राजगोपालाचारी, वल्लभभाई पटेल जैसे कम जाने माने युवा कांग्रेसी सम्मिलित थे। लेकिन ये अपने से वरिष्ठ नेताओं पर भारी पड़े।

दिसम्बर, 1922 के गया कांग्रेस सम्मेलन में राजेन्द्र प्रसाद स्वागत-समिति के सचिव थे और सम्मेलन की सभी तैयारियों में होने वाली कठिनाइयों को उन्हें झेलना पड़ा। समिति के सामने धन की कमी प्रमुख समस्या थी। राजेन्द्र प्रसाद ने धन जमा करने का कार्य शुरू किया और कुछ ही दिनों में अपने अथक परिश्रम से हजारों रुपये एकत्रित करने में सफल हो गये। इस सफलता का श्रेय, उन्होंने गांधी जी से प्राप्त शिक्षा को दिया। उनसे प्रभावित होकर बिहार के अन्य नेता भी धन जमा करने के अभियान में शामिल हो गये और काफी धनराशि एकत्रित हो गई।

गया कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर सी०आर० दास, जिन्हें अहमदाबाद कांग्रेस सम्मेलन में अध्यक्ष चुना जा चुका था, जेल में होने के कारण सम्मेलन की अध्यक्षता नहीं कर पाये, लेकिन उन्हें इसी पद पर प्रतिष्ठापित किया गया था। उन्होंने परिषद् में जाने का पक्ष लिया। राजेन्द्र प्रसाद बहुमत की ओर थे, जो परिषदों का बहिष्कार करने पर अड़ा था। "परिवर्तन-विरोधियों" की जीत हुई।

इस अधिवेशन में राजेन्द्र प्रसाद को अखिल भारतीय कांग्रेस समिति का सचिव चुना गया था और इस हैसियत से उन्होंने राजाजी के साथ, जो एक और प्रमुख तथा गैर-समझौतावादी "परिवर्तन विरोधी" थे अनेक प्रान्तों का दौरा किया। इसके बाद के वर्षों के दौरान राजेन्द्र प्रसाद ने खादी और राष्ट्रीय शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए सतत कार्य किया।

अस्वस्थ होने के कारण गांधी जी को 1924 में जेल से रिहा कर दिया गया था। उस समय गांधी जी ने कांग्रेस के राजनीतिक कार्य "परिवर्तन-समर्थकों" को सौंपने और स्वयं को रचनात्मक कार्यों में लगाने का निर्णय किया। उन्होंने रचनात्मक कार्य करने हेतु अखिल भारतीय कताई संघ, अखिल भारतीय ग्रामीण उद्योग संघ, हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, और हरिजन सेवक संघ जैसे संगठनों की स्थापना की। इनमें से प्रत्येक कार्य में राजेन्द्र प्रसाद ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। उन्होंने इन कार्यों में अपना इतना समय लगाया कि परिषद में जाने संबंधी विवाद में उन्हें कोई रुचि लेने की भी फुरसत नहीं मिली। वर्ष 1926 और 1927 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशनों की अध्यक्षता करने के सिवाय उन्होंने 1923 से 1927 तक अपना पूरा समय इन कार्यों पर लगाया।

वर्ष 1930 में नमक-सत्याग्रह के दौरान राजेन्द्र प्रसाद निरन्तर गतिशील बने रहे और नमक सत्याग्रहियों के दलों का मार्ग निर्देशन करते रहे। उन्होंने नमक बनाने के कार्य का निरीक्षण किया तथा सार्वजनिक सभाओं में नमक की नीलामी की। पुलिस द्वारा सत्याग्रहियों की भीड़ पर प्रहार किया गया तथा बड़े पैमाने पर उनकी गिरफ्तारियां की गईं। लेकिन सत्याग्रहियों की तरफ से कभी कोई हिंसात्मक कार्यवाही नहीं की गई। राजेन्द्र प्रसाद ने स्वयं पुलिस की लाठियों की चोट झेली।

आन्दोलन के प्रारम्भिक चरणों में सरकारी अधिकारी राजेन्द्र प्रसाद के विरुद्ध कार्यवाही करने से इसलिए झिझकते रहे, क्योंकि उन्हें इसके परिणामस्वरूप दंगे होने की आशंका बनी रहती थी। हालांकि, अन्ततः 6 जुलाई, 1930 को उन्हें गिरफ्तार करके छह माह के लिए जेल भेज दिया गया था। उन्हें अधिकांशतः हजारीबाग जेल में रखा गया, जहां उन्हें छपरा से स्थानान्तरित किया गया था।

दिनांक 15 जनवरी, 1934 को उत्तर बिहार में एक महा-विनाशकारी भूकम्प आया।

भूकम्प इतना भीषण था कि इसके झटके लाहौर से शिलांग तथा दक्षिण में बम्बई और बेजवाड़ा (विजयवाड़ा) में दूर-दूर तक महसूस किये गये थे। इस तबाही में 25,000 लोग मौत का शिकार हुए थे। सम्पत्ति की बेहिसाब क्षति हुई। शहरी क्षेत्र की सभी इमारतें ढह गयी थीं। सड़कें और पुल नष्ट हो गये थे। हालांकि, इस त्रासदी से 30,000 वर्ग मील का क्षेत्र प्रभावित हुआ था लेकिन इसमें दरभंगा, मुजफ्फरपुर, चम्पारण, पूर्णिया और भागलपुर इलाके सर्वाधिक प्रभावित हुए।

इस त्रासदी के समय राजेन्द्र प्रसाद जेल में थे, लेकिन शीघ्र ही उन्हें रिहा कर दिया गया। हालांकि उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं था, फिर भी उन्होंने राहत का कार्यभार अपने हाथ में लेकर इसे व्यवस्थित रूप से करना शुरू कर दिया। संपूर्ण भारत में इस हेतु दान देने की बड़ी अनुकूल प्रतिक्रिया हुई। चौहत्तर से अधिक राहत-संगठनों ने अपनी पूरी शक्ति से घायलों और बेघरों की सेवा की। लेकिन इस कार्य का प्रमुख भार, बिहार की उस केन्द्रीय राहत समिति पर था, जिसके अध्यक्ष और मुख्य प्रेरक डा० राजेन्द्र प्रसाद थे। गांधी जी उस समय हरिजनों के हित में दक्षिण का दौरा कर रहे थे। राजेन्द्र प्रसाद उन्हें पीड़ित बिहार का दौरा करने के लिए राजी करने में सफल हो गये और गांधी जी ने राजेन्द्र बाबू के साथ 12 मार्च से 9 अप्रैल तक बिहार का दौरा किया। उन्होंने गांधी जी से यह भी आग्रह किया कि व्यवस्थित रूप से हिसाब-किताब रखने और उसकी लेखा-परीक्षा करने हेतु जे०सी० कुमारप्पा की सेवाओं की उन्हें आवश्यकता है। गांधी जी ने उनकी यह मांग स्वीकार कर ली थी। बाद में कुछ लोगों ने राजेन्द्र बाबू पर राहत समिति द्वारा एकत्रित की गई भारी राशि के उपयोग को लेकर छींटाकशी करने का प्रयास किया था। राजन बाबू के पास लेखा परीक्षित लेखाओं के दो खंड उपलब्ध थे, जिसने आलोचकों के मुंह बन्द कर दिए।

सुभाष बोस के सभापतित्व में आयोजित 1938 के कांग्रेस अधिवेशन के पश्चात, व्यापक सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरंभ करने के प्रश्न पर सुभाष बोस द्वारा प्रदर्शित अधीरता एवं कार्य समिति की अपने अध्यक्ष के साथ चलने की अनिच्छा के परिणामस्वरूप संगठन में संकट उत्पन्न हो गया। मतभेद इतने गंभीर हो गये थे कि अध्यक्ष और कार्य समिति के एक साथ कार्य करने की कोई भी संभावना प्रतीत नहीं हो रही थी और इसलिए, गांधीजी ने सुभाष चन्द्र बोस को कहा कि वे कार्य समिति के सदस्यों के इस्तीफे स्वीकार करें तथा अपनी कार्य समिति का चयन स्वयं कर लें अथवा त्यागपत्र दे दें। जब सुभाष चन्द्र बोस ने 29 अप्रैल, 1939 को त्यागपत्र दे दिया, तो संकट की उस घड़ी में कांग्रेस का मार्गदर्शन करने के लिए राजेन्द्र प्रसाद इसके अध्यक्ष निर्वाचित हुए। राजेन्द्र बाबू ने अपने कर्तव्यों का अति कुशलता एवं एकनिष्ठा से निर्वाह किया।

जब युद्ध आरंभ हुआ, तो कांग्रेस को अपने अहिंसा के सिद्धान्त के संबंध में अपनी स्थिति को पुनः स्पष्ट करने की आवश्यकता महसूस हुई, क्योंकि इसे यह निर्णय करना था कि युद्ध के प्रति इसे क्या दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। कार्य समिति के प्रमुख वर्ग का विचार था कि यदि ब्रिटिश सरकार राष्ट्रीय सरकार की मांग को मानने के लिए सहमत हो, तो कांग्रेस को युद्ध का समर्थन करना चाहिए। लेकिन गांधीजी ने कहा कि युद्ध के समर्थन का अर्थ होगा कि हम हिंसा का समर्थन कर रहे हैं तथा इसमें भाग ले रहे हैं। उन्होंने कहा कि वे इस विचार से सहमत नहीं हैं। राजेन्द्र प्रसाद गांधीजी से पूरी तरह सहमत थे और इतना अधिक सहमत थे कि उन्होंने कार्य समिति से इस्तीफा दे दिया। ऐसा करने वाले एकमात्र अन्य सदस्य खान अब्दुल गफ्फार खां थे जो गांधीजी के परम अनुयायी तथा अहिंसा के प्रबल समर्थक थे। राजेन्द्र बाबू को अपना इस्तीफा वापस लेने के लिए मना लिया गया क्योंकि यह कहा गया कि जब तक ब्रिटिश सरकार राष्ट्रीय सरकार की मांग को स्वीकार नहीं करती, तब तक युद्ध में अंग्रेजों की सहायता करने के लिए कांग्रेस के आगे आने की तत्काल कोई संभावना नहीं है। तथापि, गफ्फार खां नहीं झुके।

ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस के उस प्रस्ताव का कोई उत्तर नहीं दिया जिसमें भारत को अपनी सरकार देने पर युद्ध में सहायता देने की बात कही गई थी और परिणामस्वरूप कांग्रेस ने एक होकर गांधीजी के मार्गदर्शन में व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरंभ कर दिया। राजेन्द्र प्रसाद का स्वास्थ्य ठीक नहीं था, इस कारण वे सत्याग्रह में शामिल नहीं हो सके। गांधीजी ने कहा कि एक बीमार व्यक्ति को गिरफ्तार करने का अर्थ होगा कि उसकी चिकित्सीय उपचार की जिम्मेदारी सरकार के ऊपर डालना है अथवा वे उन्हें गिरफ्तार न करने के लिए बाध्य किए जायेंगे। कोई भी कार्यवाही उचित नहीं होगी।

भारत के दक्षिण-पूर्व के देश जापानियों के अधीन हो चुके थे और जब युद्ध के आगे बढ़ने के साथ-साथ जापानियों के कदम भारत के समुद्री तटों की ओर बढ़ रहे थे, तो भारत की सुरक्षा के प्रश्न पर विचार करना परम आवश्यक हो गया। गांधीजी आश्वस्त थे कि रक्षा के लिए केवल अहिंसक उपाय का ही सहारा लिया जा सकता है। इस स्थिति पर विचार करने के लिए अप्रैल 1942 में इलाहाबाद में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक हुई। गांधीजी ने इसमें भाग नहीं लिया, परन्तु एक प्रारूप प्रस्ताव भेज दिया। जवाहरलाल नेहरू, राजगोपालाचारी, सरोजिनी नायडु, मौलाना आजाद तथा अन्य व्यक्तियों ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। तब राजेन्द्र प्रसाद ने एक अन्य प्रारूप यह सोचकर प्रस्तुत किया कि यह उन्हें अधिक स्वीकार्य होगा। बाद में, दुबारा विचार करने पर उन्होंने इसे वापस ले लिया कि पता नहीं गांधीजी इसके बारे में क्या सोचेंगे। निःसन्देह गांधीजी

के प्रस्ताव में कार्य समिति द्वारा भारी फेरबदल किया गया था, फिर भी गांधीजी ने कहा कि वे इसे स्वीकार कर लेंगे। अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की इस बैठक में राजेन्द्र बाबू ने उल्लेखनीय योगदान दिया।

बाद में, बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक में भारत छोड़ो प्रस्ताव पारित किए जाने के पश्चात् सरकार कांग्रेस पर टूट पड़ी। राजेन्द्र बाबू पटना में थे। उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था। इस कारण वे बम्बई नहीं जा पाये थे। उन्हें 9 अगस्त को हिरासत में ले लिया गया। उस समय वे बहुत बीमार थे। जेलों में रहने तथा ग्रामीण क्षेत्रों में निरन्तर घूमते रहने के कारण उनका स्वास्थ्य गिर गया था। वे दमा तथा "अमीबा कॉलेटिस" से भी पीड़ित थे। वर्धा की शुष्क जलवायु उनके लिए उपयुक्त थी तथा वे प्रायः गांधी जी से मिलने के लिए तथा आवश्यकतानुसार, स्वास्थ्य लाभ के लिए वहां आया करते थे।

भारत छोड़ो आन्दोलन ने बड़े पैमाने पर और तेजी से जोर पकड़ा, यद्यपि राजेन्द्र बाबू को इस बात का दुःख हुआ कि यह आन्दोलन पूरी तरह अहिंसक नहीं रह गया था। रेल पटरियां उखाड़ दी गईं, टेलीफोन और टेलीग्राफ के तार काट दिये गये तथा अनेक थानों पर लोगों ने कब्जा कर लिया। काफी लम्बे समय तक रेल-यातायात अस्त-व्यस्त रहा। राजेन्द्र बाबू लिखते हैं कि कुछ स्थानों पर हफ्तों तक सरकारी काम काज ठप्प पड़ा रहा। सभी नेता जेलों में बन्द थे और लोगों ने सोचा कि जब तक कोई मरता नहीं, उनके द्वारा की गई कार्यवाहियां अहिसंक ही समझी जायेंगी। लेकिन गांधीजी ने बाद में इसे स्पष्ट करते हुए कहा कि उनका सोचना गलत था।

राजेन्द्र प्रसाद को कांग्रेस कार्य समिति के अन्य सदस्यों के साथ 15 जून, 1945 को जेल से मुक्त किया गया तथा उन्होंने 25 जून से 14 जुलाई, 1945 तक वाइसराय द्वारा बुलाये गये शिमला सम्मेलन में कांग्रेस की ओर से भाग लिया।

जब 2 सितम्बर, 1946 को जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में पहली राष्ट्रीय सरकार, जो एक अन्तरिम सरकार थी, गठित की गई, तो डा० राजेन्द्र प्रसाद खाद्य और कृषि मंत्री के रूप में सरकार में शामिल हुए। इसके शीघ्र बाद उन्होंने 11 दिसम्बर, 1946 को एक उच्च पद, संविधान सभा के सभापति के रूप में पदभार ग्रहण किया। इस गरिमापूर्ण संस्था की कार्यवाही का जिस प्रकार उन्होंने संचालन किया, उसकी व्यापक रूप से सराहना की गई। इस पद पर वे तीन वर्ष अर्थात वर्ष 1949 तक बने रहे। आचार्य कृपलानी ने जब कांग्रेस के अध्यक्ष का पद छोड़ दिया, तब उन्हें 17 नवम्बर, 1947 को कांग्रेस के अध्यक्ष पद का भार भी ग्रहण करना पड़ा।

डा० राजेन्द्र प्रसाद भारत के केवल प्रथम राष्ट्रपति ही नहीं थे, बल्कि उन्होंने सबसे

अधिक समय तक राष्ट्रपति पद को सुशोभित किया। वे पहली बार 26 जनवरी, 1950 को इस पद पर निर्वाचित हुए। उन्होंने 13 मई, 1952 तक अन्तरिम राष्ट्रपति के रूप में कार्य किया तथा भारत में प्रथम आम चुनाव के पश्चात् तथा पुनः 1957 के आम चुनाव के पश्चात् वे औपचारिक रूप से राष्ट्रपति निर्वाचित हुए तथा 12 मई, 1962 तक इस पद पर कार्य करते रहे। बड़ी संख्या में लोग चाहते थे कि वे पुनः इस पद पर आसीन हों। लेकिन उनकी इस पद पर और बने रहने की इच्छा नहीं थी। साथ ही, उनका स्वास्थ्य भी काफी गिर गया था। उन्होंने अवकाश ग्रहण कर लिया और पटना चले गये तथा सदाकत आश्रम में जाकर रहने लगे। भारत के राष्ट्रपति के रूप में उनका लम्बा कार्यकाल ऐसी अविधि था जब भारत को पूरे विश्व में भारी सम्मान प्राप्त हुआ तथा प्रशंसा मिली। राष्ट्रपति के पद को उन्होंने महान गरिमा एवं श्रेष्ठता प्रदान की।

राजेन्द्र प्रसाद की विद्वत्ता विख्यात थी तथा अनेक विश्वविद्यालय उन्हें डाक्ट्रेट की विभिन्न डिग्रियों से विभूषित कर स्वयं को सम्मानित महसूस करते थे। उन्हें पटना विश्वविद्यालय द्वारा डि-लिट, सागर विश्वविद्यालय द्वारा एल०एल०डी० तथा बनारस विश्वविद्यालय द्वारा विद्या वाचस्पति की उपाधि प्रदान की गई।

राजेन्द्र बाबू के सर्वाधिक स्थायी चारित्रिक गुण थे—विनम्रता, आत्म-विलोपन और त्याग की भावना तथा देश के हित के लिए उनका सम्पूर्ण समर्पण। वे एक बहुत ही धर्मिक व्यक्ति थे। गांधी जी के शब्द उनके लिए विधि सम्मान थे तथा सारी उम्र वे गांधी जी के आदर्शों का अनुसरण करते रहे। मेरे भाई प्यारे लाल जी को तथा मुझे प्रायः मुगल गार्डन में उनके परिवार के सदस्यों के साथ उनकी शाम की प्रार्थना में शामिल होने का सौभाग्य मिल जाता था तथा इसके पश्चात हम उनके प्राईवेट भोजन कक्ष में उनके साथ भोजन करते थे। अपने पोते-पोतियों के साथ उन्हें खेलते देखकर बड़ा आनन्द आता था तथा अपनी सेवा में सबसे छोटे आदमी का भी वे बड़ा ध्यान रखते थे।

पटना में, राजेन्द्र प्रसाद ने गांधीजी के कार्य एवं विचारों में रुचि बनाये रखी तथा दौरे पर आने वाले अनेक विद्वानों और शिष्टमंडलों से मुलाकात करते थे। वे विशेषरूप से परमाणु विरोध अभियान में रुचि लेते थे।

1963 में उनका स्वर्गवास हो गया तथा परम्परागत हिन्दू रीति रिवाजों के अनुसार गंगा के तट पर उनका अन्तिम संस्कार किया गया। संभवतः राजन बाबू के चले जाने से भारत के स्वतंत्रता संग्राम का सर्वाधिक गौरवपूर्ण अध्याय समाप्त हो गया तथा हमारी स्वाधीन के वर्षों के स्वर्णिम प्रभात का अंत हो गया।

13

भारत रत्न—डॉ० राजेन्द्र प्रसाद

— रामलाल राही*

भारत के प्रथम राष्ट्रपति भारत रत्न स्वर्गीय डॉ० राजेन्द्र प्रसाद जिन्हें हमें देखने का सौभाग्य तो नहीं मिला परन्तु उन्हें जानने एवं समझने और उनके बताये मार्ग को और उनके द्वारा प्रतिपादित जीवन शैली को जब बड़े लोगों द्वारा समझने को मिलता है, तो निश्चित्य ही ऐसे महान पुरुष की याद में मस्तक नत हो जाता है।

स्वतन्त्रता की लड़ाई के समय सारा राष्ट्र जहां परम पूज्य महात्मा गांधी से प्रेरणा लेकर भारत का जन-जन अपने प्राणों को अर्पण करने के लिए तैयार था वहीं पूज्य बापू ने इस देश के अलग-अलग सूबों और खण्डों में अपने जैसे अनेकों नेता पैदा कर दिए थे। उनमें बिहार के डॉ० राजेन्द्र प्रसाद भी एक ऐसे ही नेता थे, 'पूर्वी भारत के गांधी' की संज्ञा दी गई थी। डा० राजेन्द्र प्रसाद भारतीय संस्कृति से ओत-प्रोत थे और उनके नेतृत्व में पूर्वोत्तर भारत सहित बिहार के लोग स्वतन्त्रता आन्दोलन में बढ़-चढ़ कर भाग ले रहे थे।

डा० राजेन्द्र बाबू स्वतन्त्रता आन्दोलन के प्रमुख स्तम्भों में से थे। राष्ट्रीय आन्दोलन में बिना राजेन्द्र बाबू की मोहर लगे पूज्य बापू और पंडित जवाहर लाल नेहरु की नजरों में कोई भी निर्णय अधूरा था। पूज्य बापू ने ही एक बार कहा था— "राजेन्द्र बाबू ने प्रेम से मुझे ऐसा अपंग बना दिया है कि मैं उनके बिना एक कदम भी आगे बढ़ नहीं सकता हूं।"

श्रद्धेय डॉ० राजेन्द्र प्रसाद का जन्म 3 दिसम्बर, 1884 को बिहार राज्य के सारण जिला के गांव जीरादेई में एक कायस्थ परिवार में हुआ था। बचपन में ही पिता का साया उनके सर से उठ गया था परन्तु उनके ताऊ जी के प्यार और स्नेह ने पिता के चिरविछोह का अनुभव नहीं होने दिया।

---

*श्री राही संसद सदस्य (लोक सभा) हैं।

. डा० राजेन्द्र बाबू विलक्षण तेजवाले प्रतिभा के धनी थे। पुरानी रूढ़िवादी परम्पराओं के कारण उनका विवाह भी 12 वर्ष की आयु में हो गया था।

अंग्रेजी, इतिहास, अर्थशास्त्र सहित तीन विषयों को लेकर उन्होंने बी.ए. आनर्स किया। इसके पश्चात् कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम.ए. भी किया। बी.एल. और एम.एल. के पश्चात् वह डी.एल. की तैयारी में जुट गये तथा सन् 1916 में बिहार में प्रथम हाई कोर्ट खुला तो उन्होंने वहीं वकालत का कार्य प्रारम्भ कर दिया। इस व्यवसाय में उन्होंने विशिष्ट ख्याति अर्जित की।

शिक्षा के साथ-साथ डॉ० राजेन्द्र बाबू का सामाजिक सेवा और राजनीति की तरफ भी आकर्षण हो गया था और इसी कारण वह कई सामाजिक संस्थाओं और छात्र संगठनों से जुड़ चुके थे। डा० राजेन्द्र बाबू विनम्रता की प्रतिमूर्ति थे और नरम सवभाव वालों के सम्पपुंज भी थे। पूज्य बापू की छत्र छाया में स्वतन्त्रता आन्दोलन से जुड़ कर वह निरन्तर आगे बढ़ते गये और राष्ट्रीय पदों को सम्भालते हुए निष्ठापूर्वक कुशल नेतृत्व व आजादी के आन्दोलन को सफल दिशा प्रदान करते गये। सन् 1920 में कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में उन्होंने गांधी जी के असहयोग आन्दोलन की कार्य सूची को अन्तिम रूप दिया। इस कार्यसूची के अन्तर्गत सरकारी खिताबों का बहिष्कार, कौंसिल का बहिष्कार, अदालतों का बहिष्कार, सरकारी नौकरियों को छोड़ना, अपनी पंचायतें स्थापित करना, विदेशी वस्त्रों के स्थान पर स्वदेशी वस्त्र तैयार करना, अंग्रेजी का बहिष्कार करना था। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता संगठन की भी स्थापना की, जो सबसे महत्वपूर्ण कार्य था। उल्लेखनीय है कि युवराज के भारत आने पर जब उन्होंने उनका स्वागत करने से इन्कार कर दिया तब बम्बई में झगड़ा हो गया जिसमें 50-60 लोग मारे गए और सैकड़ों घायल हुए। राजेन्द्र बाबू के इस कदम से उनके नेतृत्व को और बल मिला।

सच्चाई तो यह थी कि उनका स्वभाव इतना लचीला व सत्यनिष्ठ था कि हर समुदाय का व्यक्ति इनसे चिपक कर इनका ही हो जाता था। ऐसी बहुत सारी सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनैतिक घटनाओं को नेतृत्व प्रदान करने के कारण बाबू जी अपना अखिल भारतीय महत्व स्थापित कर चुके थे। उन्हें बिहार का "गांधी" जी कहा जाने लगा। इन्होंने अत्याचारों के खिलाफ 1918 में बिहार से एक अंग्रेजी दैनिक "सर्च लाइट" समाचार-पत्र

तथा एक हिन्दी साप्ताहिक "देश" समाचार पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया। उन्होंने बिहार विद्यापीठ की स्थापना भी की। वह गया में अखिल भारतीय कांग्रेस अधिवेशन की स्वागत समिति के अध्यक्ष बनाये गये।

राजेन्द्र बाबू हिंन्दी प्रेम के लिए प्रसिद्ध थे। अतः अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1942 में काकीनाडा अधिवेशन में उन्हें सभापति बनाया गया। यह सिलसिला बढ़ता ही गया और वे साहित्य सम्मेलन दरभंगा तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन कांगड़ी के सभापति बनाये गये। राजभाषा-राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति इनका लगाव बहुत अधिक था। उनके अनुसार भारत की सभी भाषायें बहुत समृद्ध हैं तथा अपने में अपनेपन को पूर्णरूप से समेटे हुई हैं। परन्तु हिन्दी अधिकाधिक बोले जाने वाली भाषा है, अतः राष्ट्रभाषा होने का गौरव इसे ही मिलना है। संविधान सभा की अध्यक्षता करते हुए भी उन्होंने इसी बात पर जोर दिया था।

आजादी की चर्चा ज्यों-ज्यों तूल पकड़ती गयी, त्यों-त्यों राजेन्द्र बाबू का वर्चस्व उभरता गया। वह सीधे-सादे, सच्चे इंसान थे। पद व पदार्थ का उन्हें लेशमात्र भी लोभ नहीं था। वह आजादी की कठिनतम परीक्षाओं में सफलतापूर्वक दासत्वदाह की ज्वाला सहन करते हुए कुन्दन बन कर आगे बढ़ते गये।

अन्ततः 2 सितम्बर, 1946 को भारत में अन्तरिम सरकार बनी जिसमें 12 मंत्री थे। राजेन्द्र बाबू उसमें कृषि एवं खाद्य मंत्री बनाये गये। उस समय देश द्वितीय विश्व युद्ध के कारण अन्न संकट का शिकार था। परन्तु अपनी गहरी सूझ-बूझ से उन्होंने देश को उस समय इस संकट से उबारा।

15 अगस्त, 1947 को देश आजाद हुआ। एक सार्वभौम सत्ता सम्पन्न, गणराज्य के लिए एक प्रथम नागरिक की आवश्यकता थी, जो देश की बागडोर सम्भालता। राष्ट्राध्यक्ष के पद के लिए जिस प्रभावशाली नाम का चयन हुआ, वह था "डॉ० राजेन्द्र प्रसाद" का नाम। संविधान सभा के निर्णय के अनुसार दो वर्ष तक राजेन्द्र बाबू संविधान सभा के अध्यक्ष रहे। फिर विधिवत निर्वाचित प्रथम राष्ट्रपति के रूप में सन् 1952 में राष्ट्राध्यक्ष पद को सुशोभित किया और लगातार बारह वर्ष तक इस पद पर बने रहे। डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णनन जी ने उनके बारे में भी कहा था कि उनमें जनक, बुद्ध और गांधी की छाप थी। अपने 12 वर्षीय राष्ट्रपतित्व काल से विदा लेने से पूर्व भारत की जनता ने रामलीला मैदान, नयी दिल्ली में उनका भव्य स्वागत "अभिनन्दन" किया था। उस समय बोलते हुए पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कहा था "यह 12 वर्षों का जमाना डॉ० राजेन्द्र प्रसाद का जमाना माना जाएगा।" विनम्र भाव से राजेन्द्र बाबू ने करबद्ध होकर इसी मंच से यह शब्द कहे थे "मुझसे यदि कोई त्रुटियां हुई हों तो उनके लिए परमात्मा से और आप लोगों

से क्षमा चाहूंगा।" उनका स्वभाव, सादापन ही उनकी असाधारणता थी। वह भारतीय संस्कृति के गुण कर्म थे, भारत भूषण थे। सच कहो तो 'सरल स्वभाव हुवा-छल नाहीं" की पंक्तियां उन पर पूर्णतः चरितार्थ होती थीं उनकी विदाई का समारोह भी एक ऐतिहासिक समारोह था। शासकीय स्तर पर डॉ० राधाकृष्णन ने जब राष्ट्रपति का पद भार सम्भाला तो संसद भवन को एक भव्य समारोह में उन्होंने भारत के प्रथम भद्रपुरुष, अजातशत्रु महामहिम डॉ० राजेन्द्र प्रसाद को "भारत रत्न" की उपाधि से अलंकृत किया। 13 मई, 1962 को "भारत रत्न" भारत हृदय दिल्ली से अपनी जन्मस्थली बिहार पटना की ओर चल पड़े। वहां अपने पटना स्थित सदाकत आश्रम में वे अधिक दिन नहीं रह पाये। और अपनी ज्योर्तिमयी अवस्था को ब्रह्मलीन हो गये। पंडित जवाहर लाल नेहरू जी ने एक बार कहा था "उनकी मुद्रा और आंखें भुलाई नहीं जा सकती"। जो एक ब्रह्म सत्य साबित हुआ और आज भी वही मुद्रा वही आंखें करोड़ों भारतीयों के दिलों में अपना घर किये हुये हैं।

14

डा० राजेन्द्र प्रसाद : हमारी संस्कृति के एक प्रतीक

—चौधरी रणबीर सिंह*

भारत का यह सौभाग्य रहा कि उसे अपने प्रथम राष्ट्रपति के रूप में बाबू राजेन्द्र प्रसाद जैसा व्यक्ति मिला जो वेष-भूषा से पूर्णतया एक किसान था लेकिन उनमें हमारी संस्कृति की सर्वश्रेष्ठ विशेषताओं का समावेश था। वे स्वतंत्रता संग्राम के दिगज थे और महात्मा गांधी के अत्यंत विश्वसनीय अनुयायियों में से थे। उनका जन्म भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के एक वर्ष पूर्व वर्ष 1884 में बिहार के सुदूरवर्ती गांव में हुआ था और बाद में वे इस संगठन के एक बार नहीं तीन बार अध्यक्ष रहे। यद्यपि उनका जन्म एक सुदूरवर्ती एक ऐसे गांव में हुआ था, जहां प्राइमरी स्कूल जैसी मूलभूत सुविधा तक का अभाव था, अपनी प्रगतिशीलता से उन्होंने संविधान सभा के अध्यक्ष पद को सुशोभित किया और उसके बाद वे दो कार्यकाल तक सबसे बड़े लोकतंत्र के राष्ट्राध्यक्ष के पद पर आसीन रहे। उनका इस गरिमा तक पहुंचना केवल उनके भाग्य से ही नहीं हुआ था बल्कि यह उनकी प्रतिभा, निष्ठा, बलिदान और कठिन परिश्रम का प्रतिफल था।

स्वतंत्रता आंदोलन में राजन बाबू एक अत्यंत लोकप्रिय नाम था। स्वयं भी एक स्वतंत्रता सेनानी होने के कारण मैंने उनके संपर्क में आने से पहले उनके प्रति गांधी जी के असीम प्यार और विश्वास के बारे में सुना ही था। केवल संविधान सभा में ही मैं व्यक्तिगत रूप से उनके संपर्क में आया तथा उनकी सुसंगति प्राप्त करने का मुझे अवसर मिला। जब संविधान सभा में इसका अध्यक्ष चुनने की बात उठी कि इसकी अध्यक्षता और संविधान निर्माण की कार्यवाही का संचालन कौन करेगा तो इसके लिए प्रत्यक्ष रूप से राजन बाबू को ही चुना गया। उन्होंने अपनी इस जिम्मेदारी का निर्वाह अति कुशलता, दक्षता, दूरदर्शिता और विवेक तथा सभा के प्रत्येक सदस्य की संतुष्टि के साथ किया।

यद्यपि पंडित जवाहरलाल नेहरू के लिए राजन बाबू अत्यंत आदरणीय थे, जो एक श्रेष्ठ अग्रणी कांग्रेसी थे, फिर भी वे उन्हें देश का अन्तरिम राष्ट्रपति बनाने के हक में नहीं

*चौधरी रणबीर सिंह संविधान सभा के सदस्य एवं भूतपूर्व संसद सदस्य (लोक सभा) हैं।

थे। हमारी कांग्रेस पार्टी की बैठकों में पंडित जी बहुधा राजन बाबू के बजाय सी० राजगोपालाचारी के नाम पर बल दिया करते थे कि इस सर्वोच्च पद पर राजगोपालाचारी का चयन बेहतर होगा। वे अपने तर्क का समर्थन यह कह कर करते थे कि अंततः उन्हें ही सरकार के प्रमुख के रूप में राष्ट्रपति के साथ कार्य करना पड़ेगा। प्रो० एन० जी० रंगा, जो सी० राजगोपालाचारी के ही राज्य के निवासी थे, सी० राजगोपालाचारी के विरुद्ध राजन बाबू के कट्टर समर्थक थे। मुझे याद है कि हमारी पार्टी की बैठकों में प्रो० एन० जी० रंगा ने यहां तक कहा था कि अंतरिम राष्ट्रपति के रूप में सी० राजगोपालाचारी का चयन पार्टी को स्वीकार्य नहीं है क्योंकि सी० राजगोपालाचारी ने गवर्नर जनरल के रूप में ब्रिटिश सम्राट का प्रतिनिधित्व किया था। राजन बाबू का समर्थन करते हुए उन्होंने कहा, "जब संविधान सभा के सदस्यों को संसद के पदेन सदस्य के रूप में स्वीकार किया गया है तो मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि संविधान सभा के अध्यक्ष को अंतरिम राष्ट्रपति के रूप में मान्यता क्यों न दी जाए।"

संविधान सभा में मैंने भी एक बार इस बात का उल्लेख किया कि जब कांग्रेस का भारी बहुमत इस पक्ष में है कि राजन बाबू को ही हमारा राष्ट्रपति होना चाहिए, तो उन्हें (राजन बाबू) इस पेशकश को अस्वीकार नहीं करना चाहिए। कम से कम एक बात हम दोनों के बीच सामान्य रही और हम दोनों को समान अनुभव झेलना पड़ा। हम दोनों को लगातार दो अवधि में अपने-अपने चुनावों में एक ही प्रतिद्वंद्वी का सामना करना पड़ा। हरियाणा के वकील चौधरी हरी राम ने 1952 और 1957 में रोहतक संसदीय चुनाव क्षेत्र से मेरे विरुद्ध चुनाव लड़ा। उन्होंने 1952 और 1957 में दोनों बार राष्ट्रपति पद के लिए राजन बाबू के विरुद्ध भी चुनाव लड़ा।

मुझे याद है कि प्रथम लोक सभा चुनाव में मेरे प्रतिद्वंद्वी चौ० हरी राम अपने चुनाव भाषणों में मतदाताओं को मेरे विरुद्ध अपने लिये मतदान करने हेतु प्रोत्साहित किया करते थे। वे लोगों को इस तरह सावधान किया करते थे कि "यदि आप रणवीर सिंह को चुनते हैं तो वह लोक सभा का सदस्य मात्र होगा लेकिन यदि आपने मुझे चुना तो आप संसद में केवल अपना प्रतिनिधि ही नहीं बल्कि आप भारत के भावी राष्ट्रपति का चुनाव करेंगे।" यद्यपि चौ० हरी राम चुनाव नहीं जीत पाए, तथापि उन्होंने अपना वचन यहां तक निभाया कि उन्होंने राजन बाबू के विरुद्ध प्रथम राष्ट्रपति चुनाव लड़कर भारत का राष्ट्रपति बनने का असफल प्रयास किया।

वर्ष 1957 में चौ० हरी राम ने मेरे विरुद्ध पुनः रोहतक से चुनाव लड़ा। लेकिन इस बार उनकी जमानत तक जब्त हो गई। पहले की तरह उन्होंने राजन बाबू के विरुद्ध द्वितीय कार्यकाल के उनके चुनाव के लिए नामांकन पत्र दाखिल किया। एक बार मैंने राजन बाबू से कहा कि मुझे अपने प्रतिद्वंद्वी की जमानत जब्त कराने पर गर्व है लेकिन राष्ट्रपति के चुनाव में वे ऐसा नहीं कर पाएंगे। ऐसा मैंने इसलिए कहा था क्योंकि उस समय भारत के राष्ट्रपति का चुनाव लड़ने के लिए कोई जमानत की राशि निर्धारित नहीं थी। मेरी बात को समझते हुए वे उदारतापूर्वक मुस्करा दिए।

भारत के राष्ट्रपति के रूप में, राजन बाबू दिल्ली विश्वविद्यालय के कुलाधिपति भी थे। वर्ष 1952 में, जब मैं प्रथम लोक सभा का सदस्य था, मैंने दिल्ली विश्वविद्यालय में विधि की कक्षा में प्रवेश लेने का विचार किया और इस प्रयोजन से विधि की सायंकालीन कक्षा में प्रवेश लेना चाहा। विश्वविद्यालय के तत्कालीन डीन ने, जो एक दक्षिण भारतीय थे, मुझे सायंकालीन कक्षा में प्रवेश देने से मना कर दिया और इसके बजाय उन्होंने मुझे दिन की कक्षा में प्रवेश देने की पेशकश की। क्रुद्ध एवं आहत होकर मैंने राजन बाबू को लिखा कि एक संसद सदस्य होने के कारण मेरे लिए यह अच्छा होगा कि मुझे सायंकालीन कक्षा में प्रवेश दिया जाए। राजन बाबू के जवाब ने मुझे चौंका दिया। उन्होंने लिखा कि क्योंकि मैं अपने जीवन में पहले ही सुव्यवस्थित हो चुका हूं, इसलिए मुझे सायंकालीन कक्षाओं में प्रवेश हेतु दबाव डालकर अन्य जरूरतमंद लोगों के अवसर को अवरुद्ध नहीं करना चाहिए। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि मुझे उनकी इस बात से सहमत होना पड़ा।

राजन बाबू ने जो कुछ सही और उचित समझा उसका ही उन्होंने सदा समर्थन किया। वे एक सिद्धांतवादी व्यक्ति थे। उनका हृदय बड़ा उदार था। उनके हृदय में वास्तव में गरीब और जरूरतमंद लोगों के लिए धड़कन थी। उदाहरणतया, जब वे संविधान सभा के अध्यक्ष थे तो उनके पास रिवाड़ी से (तत्कालीन पंजाब में) एक गरीब हरिजन जिसकी पत्नी का अपहरण कर लिया गया था, सहायता के लिए आया। अपनी पत्नी के अपहरण में उसने उस क्षेत्र के जेलदार का हाथ होने की आशंका व्यक्त की और उसने राजन बाबू से अनुरोध किया कि वे उसकी पत्नी को खोज निकालने में अपने प्रभाव का प्रयोग करें। राजन बाबू ने उस व्यक्ति को मेरे पास भेजा। राजन बाबू की इच्छा का सम्मान करते हुए मैं स्वयं उसके गांव गया और अपने प्रभाव का प्रयोग करके मैंने उसकी पत्नी को ढूंढ़ निकाला तथा उसे उसके पति को सौंप दिया। मैंने यहां इस घटना का उल्लेख केवल यह बताने के लिए किया है कि वे गरीबों के लिए कितने चिंतित और लोगों की शिकायतों को दूर करने में कितनी रुचि दिखाया करते थे।

12 वर्ष की लंबी अवधि तक देश के सर्वोच्च पद पर कार्य करते हुए राजन बाबू ने देश के भाग्य का निर्माण किया और स्वाधीनता के बाद, विशेषकर स्वतंत्रता के बाद के संकट भरे दशक के दौरान देश की उत्कृष्ट सेवा की। उन्होंने अपने पद की गरिमा, शालीनता और प्रतिष्ठा को बनाए रखा और संवैधानिक मर्यादा का अक्षरशः पालन किया। उनकी सौम्यता, सादगी, मधुरता, विश्वास के प्रति आस्था, कार्य के प्रति उत्सुकता और इससे भी ऊपर निःस्वार्थता ने उन्हें उच्च नैतिक मूल्यों का प्रतिबिंब बना दिया। निःसंदेह वे भारत मां के महान एवं योग्य सपूतों में से एक थे।

15

राजन बाबू : कुछ झलकियां

—चौधरी रणधीर सिंह*

राजेन्द्र प्रसाद जिन्हें प्यार से राजन बाबू कहा जाता है, हमारे स्वतंत्रता संग्राम के एक स्तम्भ थे। यद्यपि इनका जन्म उत्तर बिहार के सारण जिले में एक दूरस्थ गांव में हुआ था, तथापि अपनी निष्काम सेवा, परम निष्ठा, गहन आस्था और उत्कृष्ट योग्यता के कारण भारत-गणराज्य के दो अवधि तक राष्ट्रपति रहे। वास्तव में वह नम्रता, सादगी और सज्जनता के प्रतीक थे।

राजन बाबू एक महान विभूति थे। वह स्वतंत्रता संग्राम में सदैव अग्रणी रहे। "चम्पारण सत्याग्रह" के दौरान गांधीजी के सम्पर्क में आने के बाद वह उनके सच्चे और विश्वसनीय अनुयायी बन गये। वह पक्के गांधीवादी थे और गांधीवादी मूल्यों का उन्होंने ईमानदारी के साथ पालन किया। शायद यही कारण था कि गांधीजी अपने अनेक अनुयायियों में से उन्हें अपने आप के बहुत समीप पाते थे। राजद्रोह के आरोप में जेल जाने से पहले गांधीजी ने उपनिवेशवादी शोषण के विरुद्ध लोगों को सत्याग्रह करने के लिए प्रेरित करने की जिम्मेदारी राजेन्द्र प्रसाद को सौंपी थी। सभी जटिल समस्याओं विशेषकर कानूनी और संवैधानिक समस्याओं के संबंध में गांधी जी राजन बाबू की सलाह लेते थे और उनके दूरदर्शी निर्णयों को अन्तिम मानते थे। महात्मा गांधी का राजन बाबू में इतना अधिक विश्वास और निष्ठा थी।

राजन बाबू भारत की मूल्यवान प्राचीन विरासत की साकार मूर्ति थे। उनमें हमारी प्राचीन परम्परा के तीन मूलभूत सिद्धान्तों—सेवा, त्याग और बलिदान का समावेश था। इन मानवतावादी सिद्धान्तों में न केवल उनकी अटूट श्रद्धा थी बल्कि उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन में भी इनका पालन किया। स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लेने हेतु उन्होंने अपनी अत्यधिक सफल वकालत छोड़ी जिससे वह बहुत अधिक धन सम्पत्ति अर्जित कर सकते थे। इस देशभक्त के लिए देश हेतु कोई भी कुर्बानी बड़ी नहीं थी। भारत की

*चौधरी रणधीर सिंह, भूतपूर्व संसद सदस्य (लोक सभा) है।

आजादी के लिए उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश भाग जेल में व्यतीत किया। वर्ष 1930 से 1945 के बीच उन्होंने 8 वर्ष जेल में व्यतीत किये। समाज के अर्द्धविकसित और उपेक्षित वर्गों की सेवा हेतु वह सदैव अग्रणी रहे। 1934 और 1935 में बिहार और क्वेटा में इनके द्वारा भूकम्प पीड़ितों के लिए किये गये राहत कार्य अनुकरणीय हैं। यहां तक कि ब्रिटिश सरकार ने भी उनकी निष्ठापूर्वक सेवा की प्रशंसा की। राजन बाबू ने अपना समस्त जीवन मानवता की सेवा में अर्पित कर दिया। ऐसा था राजन बाबू का जीवन।

राजेन्द्र प्रसाद के साथ पंडित नेहरू और सरदार पटेल का ऐसा पवित्र त्रिकोण था जिसमें हमारे स्वाधीनता संग्राम में गांधी जी के नेतृत्व की झलक मिलती है। इस त्रिमूर्ति ने महात्माजी के सच्चे अनुयायी होने के नाते उदीयमान राष्ट्र का विकास बड़ी मेहनत, उत्साह और निपुणता के साथ किया। राजन बाबू 1923 में नागपुर-फ्लैग सत्याग्रह के दौरान सरदार पटेल के घनिष्ठ सम्पर्क में आये और बाद में उन्होंने भारत के लिए आस्तियों के विभाजन आदि हेतु न्यायोचित समझौता करने संबंधी लार्ड माउन्टबैटन की अध्यक्षता में गठित "पार्टिशन कांउसिल" में उनके साथ काम किया था। देश के मुखिया के नाते सरकार के मुखिया, पंडित जवाहरलाल नेहरू, के साथ उनके जो घनिष्ठ सम्बन्ध थे वह उनके उत्तराधिकारियों के लिये अनुकरणीय हैं।

राजन बाबू में जन्मजात लेखन प्रतिभा थी और साहित्यिक और पत्रकारिता के क्षेत्र में लेखन में उनकी अत्यधिक रुचि थी। उनकी पुस्तक "इंडिया डिवाइडिड" से उनके ज्ञान, विद्वत्ता और प्रतिभा का बोध होता है। उनकी "आत्मकथा" जिसका प्रकाशन हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में हुआ था, में हमारे स्वतंत्रता संग्राम का व्यापक उल्लेख मिलता है। अन्य पुस्तक—"एट दी फिट आफ महात्मा" से उनके विचारों और अनुभवी परामर्शदाता के रूप में उनकी प्रतिभा झलकती है। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान उन्होंने अनेक लेख लिखे तथा समाचारपत्रों का सम्पादन किया जिनसे उन्होंने सत्याग्रह के पक्ष में आम राय तैयार की।

राजन बाबू को सम्मान और पद उनकी आकांक्षा के बिना स्वतः ही मिलते रहे। संविधान सभा की अध्यक्षता राजन बाबू के लिए सर्वोच्च उपलब्धि थी। उन्होंने इस कठिन कार्य को गूढ़ बुद्धिमतता, दक्षता का परिचय देते हुए सहज रूप से संविधान बनाने वाले सभी वर्गों के सदस्यों की पूर्ण सन्तुष्टि के साथ शान्तिपूर्वक पूरा किया था। इस संदर्भ में

कहा जा सकता है कि उन्होंने एक अजातशत्रु का जीवन व्यतीत किया। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के राष्ट्रपति पद के लिए वह एकमात्र विकल्प थे। जब कभी आवश्यक हुआ वह सरकार की नीतियों और कार्यवाहियों को बदलने में संयत प्रेरणा देने में कभी पीछे नहीं रहे। भारत के प्रथम राष्ट्रपति के रूप में राजन बाबू ने देश के प्रतिष्ठित और सर्वोच्च पद को गरिमा और शालीनता प्रदान की। स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री, पंडित जवाहरलाल नेहरू के साथ उन्होंने हमारी संसदीय व्यवस्था में पूर्व दृष्टान्तों, परम्पराओं और परिपाटियों के रूप में बड़ा योगदान किया हैं। भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्था को सफल बनाने और इसे कायम रखने का श्रेय वास्तव में, अंशतः डा० राजेन्द्र प्रसाद जैसे महान नेताओं को जाता है जिन्होंने इस देश की बागडोर को इसके आरम्भिक और अति कठिन समय में भली भांति संभाला।

16

डा० राजेन्द्र प्रसाद: भारत के राष्ट्रपति के रूप में

सोमनाथ रथ*

भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद गांधी युग के बाद के महान व्यक्तित्वों में से एक थे। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में उनका योगदान किसी से भी कम न था। भारत के स्वतंत्र होने पर स्वतंत्र देश के सर्वोच्च पद के लिए उन्हें ही चुना गया। अपने राजनीतिक जीवन, विद्वता, शान्त स्वभाव एवं कर्त्तव्यनिष्ठता के कारण संविधान सभा के पीठासीन अधिकारी के रूप में उन्हें बहुत अधिक सम्मान प्राप्त हुआ।

डा० राजेन्द्र प्रसाद 26 जनवरी, 1952 को भारत के राष्ट्रपति चुने गये तथा इस पद पर वह सन् 1962 तक आसीन रहे। इस पद को उन्होंने लगातार दो अवधियों अर्थात् 10 वर्ष तक सुशोभित किया। उनकी बड़ी विशेषता यह थी कि उनकी कोई राजनीतिक महत्वाकांक्षा नहीं थी। ऐसा कोई प्रमाण नहीं है जिससे यह साबित किया जा सके कि उनमें सत्ता प्राप्त करने की कोई लालसा थी।

डा० प्रसाद संविधान सभा के वाद-विवाद के दौरान सक्रिय रूप से भाग लेते थे। उन्होंने राष्ट्रपति की शक्तियों का मुद्दा उठाया। संविधान के अंतर्गत भारत के राष्ट्रपति को दी जाने वाली शक्तियों और उनकी हैसियत के बारे में वाद-विवाद के दौरान जो प्रश्न उठाये, उनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है। उन्होंने एक बार प्रारूपण समिति के अध्यक्ष डा० अम्बेडकर से पूछा था कि, "संविधान के मसौदे में ऐसा प्रावधान कहां है जो राष्ट्रपति को मंत्रियों की सलाह के अनुरूप कार्य करने को बाध्य करता है?" डा० अम्बेडकर ने उत्तर दिया "मुझे विश्वास है कि ऐसा प्रावधान है और प्रावधान यह है कि राष्ट्रपति को अपने कृत्यों का सम्पादन करने में सहायता और मंत्रणा देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी।" लेकिन डा० प्रसाद इससे संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने कहा, "चूंकि हम एक लिखित संविधान बनाने जा रहे हैं, इसलिए हमें इस बात का कहीं न कहीं स्पष्ट रूप से उल्लेख कर देना चाहिये।" स्पष्ट परिभाषा होने पर वह अपनी चिंता व्यक्त करते रहे।

---

*श्री रथ भूतपूर्व केन्द्रीय मन्त्री हैं।

अपने एक सार्वजनिक भाषण में उन्होंने कहा था कि संविधान में राष्ट्रपति की शक्तियों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किए जाने की आवश्यकता है क्योंकि, उनके विचार में, एक निर्वाचित शासनाध्यक्ष को वंशागत ब्रिटिश शासक के समकक्ष नहीं रखा जा सकता, जैसी कि संविधान में व्यवस्था की गई है, उन्होंने कहा:—"जहां तक मैं समझता हूं, संविधान में राष्ट्रपति को अपने मंत्रियों की सलाह स्वीकार करने के लिए बाध्य करने वाले स्पष्ट प्रावधान नहीं हैं, किन्तु यह आशा की जाती है कि वह परम्परा जिसके अंतर्गत इग्लैंड में राजा हमेशा अपने मंत्रियों की सलाह के अनुसार कार्य करता है, इस देश में भी विकसित होगी और राष्ट्रपति संविधान में इस संबंध में दिए गए लिखित प्रावधानों के अनुरूप नहीं अपितु इस स्वस्थ परम्परा के अनुरूप सभी मामलों में एक संवैधानिक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगा।"

भारत के संविधान के अंतर्गत राष्ट्रपति की स्थिति को स्वयं प्रथम राष्ट्रपति ने जितने स्पष्ट रूप से व्यक्त किया उतने अच्छे ढंग से और कौन कर सकता था। राष्ट्रपति पद का कार्यभार संभालने के दो महीने के भीतर ही डा० राजेन्द्र प्रसाद को इस बात की चिन्ता होने लगी थी कि शासनाध्यक्ष के रूप में उन्हें वास्तव में क्या शक्तियां प्राप्त हैं। उन्हें इस बात का अनुभव हो चुका था कि राष्ट्राध्यक्ष के रूप में उन्हें सक्रिय राजनीति से अलग रहना पड़ेगा, हालांकि सक्रिय राजनीति उनके जीवन का लम्बे समय से अभिन्न अंग बन चुकी थी।

एक राष्ट्रपति के लिए अपेक्षित एवं वांछित गरिमा, प्रतिष्ठा और सम्मान सभी कुछ उनके पास था। परन्तु उनके पास शक्ति नहीं थी। एक बार उन्होंने यह अत्यंत रोचक बात कही थी कि अंग्रेजों द्वारा उन्हें भारत के स्वतंत्रा संग्राम में भाग लेने के लिए बंदी बनाया गया था और अब वह अपने ही लोगों के बीच बंदी बने हुए हैं। अंतर सिर्फ यह है कि जेल का स्वरूप बदल गया है।

गणतंत्र के राष्ट्रपति के रूप में मार्च, 1950 में उन्होंने प्रधानमंत्री नेहरू को एक लम्बा और सारगर्भित नोट लिखा। इस नोट में उन्होंने राष्ट्रपति के पद की सांवैधानिक स्थिति, उसके कार्य और शक्तियों के बारे में अपनी सभी शंकाओं का उल्लेख किया था। प्रधानमंत्री ने इस नोट को तत्कालीन महान्यायवादी श्री एम० सी० सीतलवाड़ को, उनकी कानूनी सलाह के लिए भेजा। महान्यायवादी ने अक्तूबर, 1950 में अपने लम्बे ज्ञापन में अपना परामर्श देते हुए स्पष्ट किया कि राष्ट्रपति की स्थिति और शक्तियां ब्रिटिश सम्राट के समान ही हैं अर्थात् उसे यह अधिकार प्राप्त है कि वह सलाह, चेतावनी तथा प्रोत्साहन दे सकता है। लेकिन इससे अधिक वह कुछ नहीं कर सकता। परन्तु यह सब कैसे किया जाये, यह राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के बीच पारस्परिक सामंजस्य का मामला है, इस संबंध

में नेहरू और राजेन्द्र प्रसाद दोनों ने ही स्व-विवेकानुसार जो किया जा सकता था, किया और एक दूसरे की निर्मल ईमानदारी और चरित्र-बल का सम्मान किया।

डा० प्रसाद ने राष्ट्रपति के रूप में संविधान के उपबंधों के अनुसार अपनी बात दृढ़तापूर्वक कहना सदा उचित समझा था। उदाहरण के लिए, जब उन्हें यह लगा कि राज्यपालों और राजदूतों सहित उच्च स्तर की नियुक्तियों के मामले में उनकी अवहेलना की जा रही है तो इन्होंने इसका विरोध किया। बेहिचक और स्पष्ट शब्दों में उन्होंने नेहरू जी को लिखा कि आप गलत उदाहरण स्थापित कर रहे हैं, आपको पसंद न करने वाला राष्ट्रपति आपके लिए अनेक परेशानियां पैदा कर सकता है। इस मामले पर मंत्रिमंडल में विचार किया गया है अंततः यह निर्णय लिया गया है कि उच्च नियुक्तियों से संबंधित फाइलों को नियुक्ति आदेश जारी करने से पहले राष्ट्रपति को भेजा जाएगा। डा० प्रसाद ने जब भी आवश्यक समझा सरकार को चेतावनी देने के अपने संवैधानिक कर्तव्य को पूरा करने में कभी भी पीछे नहीं रहे।

हिन्दू कोड बिल के बारे में डा० राजेन्द्र प्रसाद के निजी विचारों का उल्लेख करना आवश्यक है। 15 सितम्बर, 1951 को उन्होंने प्रधानमंत्री को लिखाः—

> "आप जानते हैं कि अपने वर्तमान पद पर आने से पहले जब मुझे अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता थी, तब मैंने हिन्दू कोड बिल के बारे में अपने विचारों को सार्वजनिक रूप से अभिव्यक्त किया था। राष्ट्रपति निर्वाचित होने के बाद इस बारे में मैंने कुछ भी नहीं कहा, इसलिए नहीं कि मैं इसे मात्र बौद्धिक चर्चा का विषय मानता हूं बल्कि मैंने इसे एक विवादास्पद विधेयक मानकर इस पर चर्चा करना आवश्यक नहीं समझा था। लेकिन अब संसद को विधेयक को पारित करने के लिए कहा जा रहा है और वह इसे पारित करने जा रही है। अतः मैं अपने विचारों को आपको तथा मंत्रिमंडल तक पहुंचाना अपना कर्तव्य समझता हूं ताकि आप तथा मंत्रिमंडल मेरे मत पर आश्चर्यचकित न हों। तीन दिन पहले आपसे हुई मुलाकात में मैंने आपको बताया था कि मेरे इस बारे में क्या विचार हैं और इस संबंध में क्या होना चाहिये और उसकी ही पुष्टि करने के लिए मैं आपके तथा मंत्रिमंडल के लिए यह नोट संलग्न कर रहा हूं।"

उन्होंने अपनी टिप्पणी में निर्वसीयत उत्तराधिकार संबंधी हिन्दू कोड बिल में भाग-दो को आम चुनावों से ठीक पहले पारित किये जाने पर विशेष रूप से आपत्ति व्यक्त की।

तत्पश्चात् प्रधानमंत्री ने महान्यायवादी श्री एम० सी० सीतलवाड़ से राय मांगी और एक अन्य प्रतिष्ठित वकील तथा संविधानिक विधि वेत्ता अलादी कृष्णास्वामी अय्यर की राय भी जाननी चाही। महान्यायवादी ने अपने उत्तर में डा० प्रसाद के मत को स्वीकार नहीं किया और इस प्रकार इस विवाद को छोड़ दिया गया।

डा० प्रसाद मानते थे कि वे नाममात्र के राष्ट्रपति नहीं हैं। परन्तु उन्हें इस बात का श्रेय जाता है कि उन्होंने अपनी राय को अपने व्यक्तिगत विचारों से कभी प्रभावित नहीं होने दिया। शासनाध्यक्ष जैसे सर्वोच्च पद पर आसीन व्यक्ति के रूप में भी कुशाग्रबुद्धि और कानूनवेत्ता डा० राजेन्द्र प्रसाद का व्यवहार गरिमामय था। श्री वी० पी० मेनन के अनुसार भारत के राजनैतिक प्रभामंडल को उदीप्त करने वाली विभूतियों में डा० राजेन्द्र प्रसाद का विशिष्ट स्थान है। पंडित नेहरू ने राजेन्द्र बाबू की गणना ऐसे व्यक्ति के रूप में की, जिसने न केवल देश के सर्वोच्च पद को सुशोभित किया बल्कि अपने जीवन को भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन से सर्वाधिक आत्मसात भी किया।

17

डा० राजेन्द्र प्रसाद : मेरी दृष्टि में

—बीरेन राय*

राजेन्द्र प्रसाद जी से मेरा पहला परिचय सन् 1933 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कलकत्ता सत्र के दौरान हुआ। उसके बाद, चूंकि मैं सन् 1935-36 में, ऑल बंगाल म्युनिसिपल एसोसिएशन के गठन में सहायक रहा था, मैंने राजेन्द्र प्रसाद जी के साथ इनके बिहार राज्य के लिए भी इसी प्रकार के संगठन के गठन के प्रश्न पर विचार-विमर्श किया। डा० राजेन्द्र प्रसाद मेरे प्रस्ताव पर मुस्करा दिये और मुझे कहा कि मैं "थोड़ा सा वामपंथी" हूं। ऐसा शायद उन्होंने नेहरूजी तथा सुभाष चन्द्र बोस के साथ मेरे संबंधों को देखते हुए कहा था।

सन् 1936 में, मुझे जर्मनी में आयोजित कस्बों और नगरों से संबंधित छठी विश्व कांग्रेस में भारतीय उप-महाद्वीप का प्रतिनिधित्व करने हेतु चुना गया। मैंने डा० प्रसाद से उनकी सलाह मांगी कि या मुझे उस देश में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की विचार पद्धति के बारे में बताना चाहिए। उन्होंने मुझे कहा कि चूंकि मैं वहां भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिकृत प्रतिनिधित्व के रूप में नहीं जा रहा था, अतः अच्छा होगा कि मैं इस बारे में एक स्वतंत्रता सेनानी के रूप में अपनी बातें कहूं। उन्होंने मेरी यात्रा की सफलता की कामना भी की थी। जून, 1936 में, कस्बों और नगरों की विश्व कांग्रेस में भाग लेने वाले अन्य स्वतंत्र राष्ट्रों के झंडों के साथ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का झंडा यूरोप में शायद पहली बार लहराया गया था। मैं सभा में लगभग बीस मिनट तक बिना तैयारी किए जर्मनी भाषा बोला जिसकी बहुत प्रशंसा की गई। अपनी इस उपलब्धि के कारण मैं सुभाष बोस के और निकट आ गया।

सन् 1950 में, जब मैं बंगाल विधान सभा का सदस्य था और बंगाल फ्लाईंग क्लब और एरो क्लब ऑफ इंडिया का अध्यक्ष भी था, तब मुझे प्रथम राष्ट्रीय एयर रैली आयोजित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस आयोजन के लिए मुझे डा० राजेन्द्र प्रसाद,

*श्री राय भूतपूर्व संसद सदस्य (लोक सभा एवं राज्य सभा) हैं।

3660LS—14

पंडित नेहरू और रफी अहमद किदवई का आशीर्वाद प्राप्त था। यह हमारा सौभाग्य था कि सन् 1951 में चकेरी (कानपुर के समीप) में आयोजित द्वितीय एयर रैली में डा० प्रसाद भी उपस्थित हुए और उन्होंने पुरस्कार वितरण समारोह की अध्यक्षता की थी।

सन् 1957 के बाद, जब मैं संसद सदस्य (लोक सभा) बना, मुझे कई बार डा० प्रसाद से अंतरंग बातचीत करने का अवसर प्राप्त हुआ। मुझे वियना के एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त चित्रकार से उनका "पैलेट" पोट्रेट तैयार कराने में भी सफलता प्राप्त हुई। इस तैलचित्र के लिए डा० प्रसाद को तीन-चार दिन तक प्रतिदिन दो घंटे का समय हमारे साथ मुगल गार्डेन में बिताना पड़ा था। यह तैलचित्र एक मूल्यवान सम्पत्ति के रूप में अभी भी मेरे पास सुरक्षित है।

जो कोई भी राजेन्द्र प्रसाद जी के सम्पर्क में आया उसने ही उनमें सादगी भरे व्यक्तित्व की छाप देखी। हालांकि वह विशिष्ट ग्रामीण पृष्ठभूमि से आए थे लेकिन समय और अवसर की मांग के अनुरूप उनमें अति सुसंस्कृत शहरीपन भी था। वास्तव में, उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व में उनकी श्रेष्ठता में अपरिमित विरोधाभास देखे जा सकते हैं। उनकी विनम्रता और विद्वता के संगम ने उनमें एक उत्कृष्ट समझौता कराने वाले के गुण पिरो दिए थे। गांधी जी के साथ उनके दीर्घकालिक और अनवरत सम्पर्क का उन पर इतना अधिक प्रभाव हुआ कि वे अपने मार्गदर्शक की तरह ही सादा और आडंबररहित जीवन व्यतीत करने लगे। उन्होंने इस तथ्य को कभी नहीं छुपाया कि उनका शांतिवाद में बहुत अधिक विश्वास था और वे गांधी जी के अहिंसा के सिद्धांत पर विश्वास करते थे। वह गांधी जी के इतने करीब थे कि उनके मार्गदर्शक अथवा उनके सिद्धांतों के उल्लेख मात्र से वे भावुक हो उठते थे।

सन् 1950 से 1962 के दौरान स्वतंत्र भारत के राष्ट्रपति के रूप में, डा० राजेन्द्र प्रसाद ने भारतीय राजनीति को एक नई दिशा प्रदान की। एक अत्यंत साधारण व्यक्ति के रूप में वह भारत की जनता के कल्याण के प्रति पूर्णतया समर्पित थे और उन्होंने भारत के राष्ट्रपति के उच्च पद को एक अभूतपूर्व गौरव और गरिमा प्रदान की। इस महान देश की जनता उनको हमशा इस बात के लिए याद रखेगी कि उनमें अपने उद्देश्यों के प्रति निष्ठा थी और वह चरित्रवान थे।

18

डा० राजेन्द्र प्रसाद : एक महान व्यक्तित्व

—प्रोफेसर राजा राम शास्त्री*

राजेन्द्र बाबू को जिन लोगों ने देखा, उनसे बात की, उनके सार्वजनिक जीवन में सहयोगी बने, ऐसे सार्वजनिक क्षेत्र में काम करने वाले हम लोगों में से बहुत कम लोग रह गए हैं। देश के जिन महान नेताओं से हम भारतवासियों और आने वाली पीढ़ियों को स्वतंत्र भारत की राष्ट्रीय एकता, धर्मनिरपेक्षता और समाजवादी समाज की रचना के लिए काम करने की प्रेरणा मिलेगी—उनमें राजेन्द्र बाबू का व्यक्तित्व और कृतित्व परम प्रेरणादायक है, जिनकी याद हमको सदा बनी रहेगी।

काशी विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ, जामियामिलिया जैसी शिक्षा संस्थाओं की स्थापना इसलिए हुई थी कि विद्यार्थी इन संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त कर देश के महान नेताओं के साथ मिलकर भारत को स्वतंत्र करेंगे और स्वतंत्र भारत के नवनिर्माण के काम में आगे आएंगे।

मैंने वर्ष 1925 में काशी विद्यापीठ से शास्त्री परीक्षा पास की उस साल कई शास्त्री हुए जो बाद में सार्वजनिक क्षेत्र में काम करने वाले नामी-गरामी नेता सिद्ध हुए। उस साल के दीक्षान्त भाषण और उपाधि वितरण के लिए राजेन्द्र बाबू को आमंत्रित किया गया था। उसी दीक्षान्त समारोह में कुलपति डा० भगवान दास जी, डा० सम्पूर्णानन्द जी, आचार्य नरेन्द्र देव जी, बाबू शिव प्रसाद गुप्त जी, महामना पं० मदन मोहन मालवीय जी उपस्थित थे। राजेन्द्र बाबू का बाहरी व्यक्तित्व और वेशभूषा अजीबोगरीब थी। कपड़े भी वैसे पहनते थे जैसे बिहार के किसान पहने रहते हैं। वह जब बोलने को उठे तो उनके सामने एक बड़ा संकोच था। उन्होंने कहा कि मुझे इतने बड़े-बड़े विद्वानों और खासकर पूज्य मालवीयजी के सामने दीक्षान्त भाषण करते हुए संकोच का अनुभव हो रहा है।

हम लोगों को वैसी दूरदृष्टि नहीं थी जिससे यह अनुमान लगा सकते कि यह व्यक्ति एक दिन कांग्रेस का अध्यक्ष होगा और वह भी एक बार नहीं तीन-तीन बार—यही व्यक्ति स्वतंत्र भारत का संविधान बनाने वाली परिषद का अध्यक्ष होगा—फिर जब अपना संविधान

*प्रोफेसर शास्त्री भूतपूर्व संसद सदस्य (लोक सभा) हैं।

बन जाएगा और भारत सार्वभौम सत्तासम्पन्न गणतंत्र घोषित होगा तब उसका प्रथम राष्ट्रपति भी चुना जाएगा।

राजेन्द्र बाबू ने अपने दीक्षान्त भाषण में इस बात की चर्चा की थी और कहा था कि:

> "काशी विद्यापीठ के स्नातकों और अन्य नवयुवकों पर बड़ी जवाबदेही है। आपको अपनी चतुरता, कार्य कुशलता और सबसे अधिक चरित्र बल से राष्ट्रीय शिक्षा के विरोधी और अंग्रेजी शासन के पृष्ठ पोषकों के विरोध और अविश्वास को जीतना है। देश प्रेम, देश सेवा और सच्चे स्वार्थ त्याग का उदाहरण दिखलाकर आपको जनता के हृदय में स्थान प्राप्त करना है। ईश्वर की दया से आपको ऐसा सुअवसर और सुयोग मिला है जैसा औरों को नहीं मिला है, मैं इसलिए आपको भाग्यवान मानता हूं। जहां पूज्य श्री भगवानदास जी के समागम का सुअवसर प्राप्त है वहां विद्यार्थियों को और क्या चाहिए। जिस विद्यापीठ का परिपोषक श्रीयुत शिव प्रसाद गुप्त जी जैसा दानवीर है, उसको किस चीज का अभाव हो सकता है — पर जितनी अधिक सुविधाएं आपको मिली हैं उतनी ही अधिक आपकी जवाबदेही है।"

ऐसी संस्थाओं की स्थापना के पीछे महात्मा गांधी की दूर-दर्शिता, सूझ-बूझ और भारत को स्वतंत्र करने तथा स्वतंत्र भारत के निर्माण के लिए एक क्रमबद्ध योजना थी। इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए उन्होंने सभी प्रान्तों में ऐसे कर्मठ व्यक्तियों का चयन कर लिया था जो उनकी इस योजना और कार्यक्रम को समयबद्ध रूप से पूरा करने की क्षमता रखते थे।

गांधी जी ने सभी तरह के सेवा-क्षेत्रों में काम करने वालों की क्षमता का मापदंड अपने ढंग से बनाया था। उस मापदंड में उनके नियमों और शर्तों की विशेषता थी। देश सेवा के काम में लगे लोगों द्वारा सत्य-अहिंसा के साथ-साथ व्यक्तिगत सच्चरित्रता के मार्ग का अनुसरण वह आवश्यक मानते थे। सार्वजनिक क्षेत्र में काम करने वालों को स्वावलम्बी रहने का प्रथम पाठ पढ़ाते थे। अनुशासन में रहकर काम करने की क्षमता उनकी आवश्यक शर्त थी। वह मानते थे कि इन शर्तों को पूरा करने वाले ही देश को स्वतंत्र करने और राष्ट्र के निर्माण के काम में उपयुक्त होंगे। गांधी जी के नियमों और शर्तों को मानकर जो गांधी जी के साथ काम करने आए वही बाद में भारत के महान नेता हुए और युग पुरुष माने गए। जिनमें जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, मौलाना अबुल कलाम आजाद, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, राजगोपालाचारी, राजेन्द्र प्रसाद प्रभृति थे। इन लोगों के साथ काम में सहायक बनने और सहायता करने वाले भी गांधी युग की देन थे।

गांधी जी की कल्पना के अनुसार युग पुरुष और देश सेवक तैयार करने अर्थात् ढालने का एक सांचा तैयार किया गया था जिसमें वैसे कर्मठ, सच्चे, स्वावलम्बी, चरित्रवान अनुशासित देश भक्त ढाले जाते और तैयार होते थे।

राजेन्द्र बाबू ने लोकतंत्र की भावना को प्रतिपादित कर अपने विचार और काम से जन-जन में फैलाया था। वह भारत के प्रथम राष्ट्रपति थे। बारह वर्षों से भी अधिक समय तक अपने काम और विचार से इसकी नींव पक्की कर गए हैं। इसलिए हमारे यहां का लोकतंत्र संसार के अन्य लोकतंत्री राज्यों में सर्वोपरि माना और समझा जाता है। लोकतंत्र का यह स्वरूप जो हमारे सामने है, वह राजेन्द्र बाबू और जवाहरलाल नेहरू की देन है।

19

भारतीय राजनीति के अर्द्धनारीश्वर

—प्रोफेसर सिद्धेश्वर प्रसाद*

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के राजनैतिक उत्तराधिकारी पं० जवाहरलाल नेहरू थे और आध्यात्मिक उत्तराधिकारी थे — आचार्य विनोबा भावे। यदि जवाहरलाल जी गांधी-जी के रचनात्मक कार्यक्रम को अपना लेते और विनोबा जी सत्ता की राजनीति में आ जाते तो उनका व्यक्तित्व और आचरण बहुत कुछ वैसा ही विकसित हुआ होता जिसकी जीवित प्रतिमूर्ति थे देशरत्न डा० राजेन्द्र प्रसाद। राजेन्द्र बाबू संतों में राजनीतिज्ञ थे और राजनीतिज्ञों में संत। गांधी जी ने उन्हें अजातशत्रु कहा था। जब-जब आपसी कटुता के कारण कांग्रेस के नेतृत्व पर संकट आया, राजेन्द्र बाबू ने कांग्रेस की बागडोर संभाली और देश को मार्ग-दर्शन दिया। इसका कारण यह था कि उनमें परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले गुणों का अद्‌भूत सामंजस्य था। देखने में तो वे देहाती प्रतीत होते थे परंतु वे विलक्षण प्रतिभाशाली थे और मैट्रिक से लेकर एम०ए० तक सदा परीक्षाओं में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया था बातचीत में वे अत्यंत मृदुभाषी और विनम्र थे परंतु समय आने पर उनकी दृढ़ता वज्र को भी मात देती प्रतीत होती थी; रहते तो थे वह राजपुरुषों के सबसे भव्य राष्ट्रपति भवन में परंतु उनकी निस्पृहता से संतों को भी ईर्ष्या होती थी; थे तो वे भारत सरकार की कार्यपालिका के सर्वोच्च और प्रधान मंत्री एवं मंत्रिमंडल उनके प्रसाद-पर्यन्त ही कार्य कर सकती थी परंतु उन्होंने कार्य संचालन को कभी भी व्यक्तिगत राज-द्वेष से प्रभावित न होने देकर राष्ट्रहित को ही सर्वोपरि मानकर निर्णय लेने की उच्चतम परम्परा और परिपाटी को विकसित होने दिया। भारतीय लोकतंत्र के शैशव काल में यदि राजेन्द्र बाबू के अतिरिक्त कोई और व्यक्ति संविधान सभा का अध्यक्ष या भारत का प्रथम राष्ट्रपति होता तो न तो भारतीय लोकतंत्र को ऐसी उदारता के तत्वों का भारतीय राजनीति में समावेश होता, न

*प्रोफेसर सिद्धेश्वर प्रसाद भूतपूर्व केन्द्रीय मन्त्री हैं।

लोकतंत्र की ऐसी मर्यादा का ही निर्वाह संभव होता जिसकी भारतीय परम्परा में इतनी गहरी जड़ रही है कि पास-पड़ोस के देशों के प्रबल झंझावात भी इसे न हिला पाये। भारत के प्रसंग में गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है—

"तेहि पुर बसत भरत बिनु राजा।
चंचरीक जिमि चंपक बागा (राम चरितमानस)।

गांधी जी की आध्यात्मिकता तब प्रमाणित हो गई जब गोली लगने पर उनके मुंह से केवल "हे राम।" का उच्चारण हुआ और राजेन्द्र बाबू की चंचरीक जैसी अनासक्ति तब प्रमाणित हो गयी जब वे पुनः पटना के उसी सदाक्त आश्रम में वापस आ गये जिससे वे राष्ट्रपति भवन गये थे। राजेन्द्र बाबू के अतिरिक्त और कोई शीर्षस्थ नेता इस प्रकार से पुनः राज भवन से अपने सेवाश्रम में वापस नहीं लौटा। आसान मालूम पड़ने पर भी वस्तुतः यह बड़ा कठिन होता है। इसलिए तुलसीदासजी को कहना पड़ा है—

"जनम-जनम मुनि जनत कराहीं। अंत राम कही आवत नाहीं।"

गांधी जी के प्रति राजेन्द्र बाबू में अनन्य निष्ठा और भक्ति थी। वे जब दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद 1915 में कलकत्ता आये थे तो राजेन्द्र बाबू ने उनका सर्वप्रथम दर्शन पाया और उसके बाद 1916 की लखनऊ कांग्रेस में फिर संयोग ऐसा हुआ कि 1917 में महात्मा जी को चम्पारण के किसानों की समस्याओं को सुलझाने के लिए कई महीने वहां सत्याग्रह आंदोलन चलाना पड़ा जिसमें राजेन्द्र बाबू आद्यंत उनके दाहिने हाथ के रूप में, मौलाना मजहरुल हक, ब्रजकिशोर प्रसाद आदि अन्य नेताओं के साथ काम करते रहे और उस समय से गांधी जी के साथ उनका गुरु-शिष्य का जो संबंध बना वह जीवन पर्यंत न केवल बना रहा अपितु प्रगाढ़ होता गया। शीर्षस्थ राजपुरुषों में और कोई व्यक्ति गांधी जी के साथ उतना नहीं रहा जितना वे रहे एवं वे ही एकमात्र राज नेता थे जिन्होंने रचनात्मक कार्यक्रम पर एक पुस्तक लिखी। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि राजेन्द्र बाबू गांधी जी की रचनात्मक राजनीति के सच्चे अनुयायी थे और उन्होंने राजकाज को भी कभी मानवीयता से दूर नहीं होने दिया।

राजेन्द्र बाबू 12 मई, 1962 को राष्ट्रपति पद से मुक्त हुए थे। दिल्ली के ऐतिहासिक रामलीला मैदान में इसके दो दिन पूर्व, 10 मई को, भारत के नागरिकों की ओर से एक बिदाई समारोह का आयोजन किया गया था जो शब्द के पूरे अर्थ में वस्तुतः अभूतपूर्व था ऐसा लगता था कि जनता उमड़ पड़ी है और रामलीला मैदान ही नहीं बल्कि चारों ओर की सड़कों पर भी कहीं तिल रखने की जगह न

थी। एक अन्य प्रसंग में दिनकरजी ने कहा था, स्वागतपूर्वक लेने तो सब आते हैं परंतु स्वागतपूर्वक छोड़ने कौन आता है? राजेन्द्र बाबू ऐसे एकमात्र अपवाद थे जिसे राष्ट्र ने ऐसी अश्रुपूर्ण विदाई दी थी। जिस मौके पर लोगों ने अपने हृदय का प्रेम उड़ेल कर रख दिया था।

सृष्टि द्वन्द्वात्मक है और द्वन्द्व से ही उसे विकसित होने की ऊर्जा या शक्ति प्राप्त होती है इस तत्व को सत्-असत्, पुरुष-स्त्री, धन-ऋण, प्रकाश-तम, देव-असुर आदि अनेक संज्ञाएं दी गयी हैं। भारतीय परम्परा में अर्द्धनारीश्वर को इसकी सर्वोत्तम अभिव्यक्ति माना गया है। यह माना जाता रहा है कि जो भव या शिव हैं, वही भवानी या शिवा हैं और दोनों अभिन्न हैं। कालिदास ने इसे अपनी कवित्वमयी वाणी में "वागार्थी विव सम्पृक्तौ" कहा है और तुलसीदास ने "लखियत भिन्न न भिन्ना" वर्तमान भारतीय राजनीति के जीव अर्द्धनारीश्वर थे बाबू राजेन्द्र प्रसाद। श्रीराम के प्रसंग में भवभूति ने कहा है कि वे कुसुम से भी कोमल और वज्र से भी कठोर थे। इसके बिना दुर्बलों का उद्धार और दुष्टों का दमन संभव नहीं है व्यक्ति या समाज में जब कोमलता अधिक आ जाती है तब वह रीढ़हीन हो जाता है और जब कठोरता अधिक हो जाती है तब वह क्रूर हो जाता है दोनों में से किसी भी स्थिति में राजधर्म का निर्वाह संभव नहीं है। राजेन्द्र बाबू में इन दोनों गुणों का मणिकांचन योग था। इसलिए राष्ट्र के प्रथम नागरिक के रूप में उन्होंने अपने संतुलित आचार-व्यवहार से अतुलनीय उदाहरण प्रस्तुत किया।

गीता कहती है कि श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करते हैं, अन्य पुरुष भी वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। (3-21) जिस आधुनिक भारत में श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी दयानंद, स्वामी विवेकानंद, लोकमान्य तिलक, योगी अरविन्द, महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, वल्लभभाई पटेल, राजेन्द्र प्रसाद, राजगोपालाचारी, अबुल कलाम आजाद, सुभाष चन्द्र बोस, खान अब्दुल गफ्फार खां, जय प्रकाश नारायण, राम मनोहर लोहिया, नरेन्द्र देव आदि जैसे महान नेता हुए उस भारत में आज चरित्र और आचरण की तेजस्विता क्यों नहीं दिखाई देती? सार्वजनिक जीवन में बढ़ते हुए भ्रष्टाचार से आम जनता क्यों त्रस्त दिखाई देती है? चारों और अविश्वास, घृणा, उन्माद, हिंसा और आतंक का वातावरण क्यों है? राष्ट्र की भावात्मक एकता और सुदृढ़ होने के बजाए क्यों ढीली होती मालूम पड़ती है? सार्वजनिक जीवन में विराट के स्थान पर बौनों का, त्यागियों के स्थान पर तिकड़मियों का वर्चस्व क्यों बढ़ता जा रहा है? महात्मा गांधी के सत्य और अहिंसा के पुजारी आज क्यों दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं?

स्वराज्य की प्राप्ति के बाद शासक बन जाने पर इसका आभार हमारे शीर्षस्थ नेताओं को न मिला हो, ऐसा नहीं माना जा सकता। लेकिन राजेन्द्र बाबू के अलावा न तो किसी

किसी ने इसे स्वीकार करने की हिम्मत दिखाई, न किसी ने गहराई से इस पर विचार करने का कष्ट ही किया।

महात्मा गांधी ने "हिन्द स्वराज" (1909) में पाश्चात्य भौतिकतावाद सभ्यता का विरोध और भारतीय सभ्यता की आध्यात्मिक परंपरा का जोरदार समर्थन किया था। उनका मानना था कि यूरोप की नकल छोड़कर हमें अपना रास्ता, अपनी परपंरा के भीतर से, आप निकालना होगा।

लेकिन स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद भारत के नेता महात्मा जी के इस पाठ को एकदम भूल गये। इस संबंध में राजेन्द्र बाबू ने लिखा है —

> "अब जितना सोचता हूं, महात्मा जी की इस संबंध की दूरदर्शिता और गहरी सूझ का कायल अपने को मानता हूं आज हमको स्वराज्य प्राप्त है और देश का भाग्य निर्णय हमारे हाथों में है, तो भी हम अपनी शिक्षा और दिमागी बंधनों के कारण यूरोपीय असर से अलग नहीं हो सके हैं। आज भी हमारे सामने किसी चीज के मापने के लिए अगर कोई भी मापदण्ड है तो यूरोपीय मापदण्ड है।"

स्वतंत्रता के बाद भी लार्ड मेकाले जीत गये और महात्मा गांधी हार गये। महात्मा गांधी के द्वारा स्थापित राष्ट्रीय विद्यालय और महाविद्यालय स्वतंत्र भारत की सरकार की सहायता के बिना बंद हो गये और लार्ड मैकाले द्वारा स्थापित विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय सरकार की भरपूर सहायता पाकर पूरी तरह से फल-फूल रहे हैं।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए राजेन्द्र बाबू ने आगे लिखा है—

> "आज हमको पूरा अधिकार है कि हम चाहे जो भी विधान बनाना चाहें, बना सकते हैं। पर हमने जो मसौदा तैयार किया है उसमें पश्चिमी विधानों की ही नकल की है। उसमें कोई ऐसी विशेषता नहीं है जिसके संबंध में हम कह सकें कि संसार के लिए एक नई चीज दे रहे हैं — हम चाहते हैं कि देश की उन्नति हो, सर्वोदय हो, पर क्या इसके लिए विद्या और चरित्र दोनों की जरूरत नहीं है? अगर है तो इसके लिए हम विधान में कोई विशेष स्थान नहीं दे रहे हैं। क्योंकि पश्चिमी विधानों में इसका कोई उदाहरण हमको नहीं मिलता।"

निष्कर्ष यह कि प्रगति का मापदण्ड हमने वही मान लिया है जो यूरोप ने माना है। इसके कारण हममें दो कमजोरियां आ गयीं — पहली यह कि यूरोप जिस भोगवादी संस्कृति के चंगुल में फंसा था, हम भी उसमें फंसते चले गये; दूसरी यह कि स्वतंत्र भारत की स्वतंत्र अस्मिता और तेजस्विता प्रगट न हो पाई। हम यह भूल गये कि सारे संसार ने

रवीन्द्र नाथ ठाकुर की आध्यात्मिकता में सराबोर उदान्त वाणी का अभिनंदन किया था, न कि पश्चिम की नकल करने वाले कवियों की; पश्चिम ने भारत के अधनंगे फकीर के सामने सिर झुकाया था न कि सूट-बूट वाले गांधी के सामने। इतिहास का कटु सत्य यह है कि कोई भी देश अपनी परंपरा, संस्कृति और इतिहास से अलग रहकर जीवित नहीं रह सकता। उसे उनमें से ही अपने विकास का मार्ग ढूँढ़ना होगा। जिसने यह सजगता नहीं दिखाई काल प्रवाह ने उसके अस्तित्व को ही समाप्त कर दिया; यूनान; मिश्र और ईरान इसलिए मिट गये और भारत इसलिए जीवित है। गांधी जी के प्रयास से जिस भारत को नवजीवन प्राप्त हुआ था क्या हम उनके लिये ऐसे उत्तराधिकारी निकले कि उस भारत को मृतप्राय बनाकर ही दम लेंगे।

भारत की ब्राह्मण परंपरा हो या श्रमण परंपरा — दोनों परम्पराओं ने समान रूप से सत्य, अहिंसा, याग, तपस्या, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि पर जोर दिया है। इन गुणों के विकसित करने के कारण ही मनुष्य सचमुच में मनुष्य कहलाने का अधिकारी होता है। इसी उदान्त परम्परा का परित्याग कर भारत अपनी पहचान को खो देगा, इसी विश्वास के कारण राजेन्द्र बाबू भारत की शिक्षा पद्धति में भारतीयता के समावेश के समर्थक थे और इस विषय पर गांधी जी के बाद उन्होंने जितना राष्ट्र को बार-बार चेताया उतना किसी और ने नहीं लेकिन पश्चिम की भौतिकतावादी जीवन पद्धति के प्रभाव के वशीभूत हो जाने के कारण उनकी आवाज नक्कारखाने में तूती की तरह दब कर रह गयी। इसका दुष्परिणाम आज तो भारत को भुगतना पड़ रहा है। भविष्य में और अधिक भुगतना पड़ेगा क्योंकि तब भारत को शायद पहचानना ही मुश्किल हो जाये।

भारतीय परम्परा श्रीराम को मर्यादा पुरूषोत्तम मानती आई है क्योंकि उनके जीवन में चरित्र का स्थान सर्वोपरि था, क्योंकि उनके सामने व्यक्तिगत जीवन और सार्वजनिक जीवन के मापदण्ड अलग-अलग नहीं थे, जैसाकि यूरोप में होता है। गांधी जी के ग्यारह व्रतों का विवेचन करते हुए राजेन्द्र बाबू ने लिखा है कि —

> "उनके खाद्य पदार्थ संबंधी प्रयोग, स्वास्थ्य चिकित्सादि संबंधी प्रयोग, ब्रह्मचर्य तथा जीवन के मौलिक सिद्धान्त "सत्य और अहिंसा" का परस्पर घनिष्ठ और अनन्य संबंध है। कोई एक को दूसरे से अलग करके उनको समझ नहीं सकता है, जीवन में उनके उतारने की तो बात ही क्या हो सकती है। इन्हीं तत्वों पर समाज गठन की रचना भी उनका ध्येय था। इसलिए उनकी राजनीति, जिसे हम धर्म कहते हैं, इससे अलग नहीं थी। इसी तरह वैयक्तिक जीवन-सार्वजनिक जीवन से अलग नहीं किया जा सकता है।

भारतीय परंपरा और यूरोपीय परंपरा के इस सूक्ष्म अंतर का बोध नही होने के कारण

अज्ञानवश अक्सर चाणक्य की तुलना मैक्यियाविली से कर दी जाती है। मैक्यियाविली धूर्तता, छल-प्रपंच और येन-केन-प्रकारण विजय प्राप्त करने को ही राजनीति की चरम सफलता मानता था; इसके विपरीत चाणक्य का मानना था कि राज्य का मूल इन्द्रियजय है।

गांधी जी की दृष्टि में तो जीवन के संपूर्ण कार्यकलापों का एकमात्र लक्ष्य था ईश्वरदर्शन। वे सत्य को ही ईश्वर मानते थे और अहिंसा को उस सत्य का दूसरा पहलू। अतः स्पष्ट है कि गांधी जी भारतीय परंपरा की उस राजनीति के पोषक थे जो श्रीराम और चाणक्य से होती हुई भारतीय जन-जीवन में पूरी तरह से रच बस गई थी। राजेन्द्र बाबू के जीवन और चिंतन का निष्कर्ष था कि "आज हम अपने जीवन को तभी सार्थक बना सकते हैं जब हम अपने जीवन के हर कोने को टटोल कर देख लें कि उसमें कहीं गांधीजी की शिक्षा के विरुद्ध कोई छिपी हुई कुप्रवृत्ति तो नहीं काम कर रही है?" (वही) क्या हम अपने व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन को इस कसौटी पर कसने के लिए तैयार हैं? क्या भारतीय परंपरा के प्रति हममें इतनी गहरी निष्ठा है कि जीवन की एकता के सिद्धांत पर मजबूती के साथ अपना कदम बढ़ाते चलें?

राजेन्द्र बाबू का जीवन गांधी विचारमय कैसे हो गया? उन्होंने स्वयं लिया है—मुझे महात्माजी के चरणों में बैठने का, जो कुछ वह बातें करते उसे सुनने का तथा उनके जीवन को निकट से देखने का बहुत अवसर मिला।" (बापू के कदमों में) गीता कहती है कि ज्ञान श्रद्धावान् को मिलता है। राजेन्द्र बाबू ऐसे श्रद्धावान् पुरुषों में भी बिरले थे। वे "उपनिषद्" शब्द के मूल अर्थ में अपने गुरू गांधी जी के सतत सानिध्य में थे। इसलिए उनकी प्रेरणा का मूल स्रोत कभी क्षीण नहीं हुआ और वे जीवन के अंतिम क्षण तक अनासक्त होकर कर्मयोग की साधना करते रहे।

पं० जवाहरलाल नेहरू ने इलाहाबाद, स० पटेल ने अहमदाबाद और राजेन्द्र बाबू ने पटना नगरपालिका का अध्यक्ष के रूप में अपने-अपने सार्वजनिक जीवन में पहली बार सार्वजनिक पद का भार ग्रहण किया जिससे इन्हें नागरिक प्रशासन की बारीकियों को जानने समझने का अवसर प्राप्त हुआ। आज के बदले राजनैतिक माहौल में नगरपालिका से कौन अपना सार्वजनिक कार्य शुरू करना चाहता है? पंचायत की तो बात ही छोड़ दीजिए। इसका परिणाम यह हो रहा है कि अनुभवहीन लोग एक बार भी मंत्री या मुख्य मंत्री बनकर प्रशासन के घोड़े पर सवार होकर बेतहाशा दौड़ लगाने लगते हैं जिसके कारण सारी मर्यादाएं कदम-कदम पर खंडित होने लगती हैं। यह चिंताजनक स्थिति है।

मैं इस बात का उल्लेख यहां इसलिए कर रहा हूं कि लोकतंत्र में सत्ता लोक-समर्थन पर निर्भर करती है। लोक-समर्थन स्वाभाविक रूप में जन सेवा के रूप में प्राप्त किया जाना चाहिए, न कि अंधाधुंध धन और शक्ति खर्च कर तिकड़मी तरीकों को अपनाकर, जैसा कि इन दिनों होने लगा है। स्वाभाविक लोक-समर्थन के अभाव में लोकतंत्र नाम का ही लोकतंत्र रह जाता है और जन असंतोष अन्ततोगत्वा विस्फोटक रूप ले लेता है।

पंडित नेहरू, सरदार पटेल और राजेन्द्र बाबू ने नगरपालिका के अध्यक्ष के रूप में अपने कार्य का आरंभ कर उस लोक भावना के अनुरूप अपने को ढालने का प्रयत्न किया था जो लोकतंत्र की वास्तविक शक्ति होती है; क्योंकि यह "लोक-संग्रह" (गीता) को आधार बनाकर चलती है, इसलिए इससे "योग क्षेम बहाम्यहं" (गीता) अर्थात् सबका हित साधने की शक्ति स्वतः सफूर्त होती है। जब लोक-भावना को स्वाभाविक रूप में विकसित नहीं होने दिया जाता, स्थानीय लोक भावना और स्थानीय नेताओं के मतों की अपेक्षा कर नेतृत्व ऊपर से लाद दिया जाता है, तब लोकतंत्र का जनाधार और नैतिक आधार शून्यवत् हो जाता है और वह वस्तुतः प्राणहीन शवतुल्य हो जाता है। भारतीय लोकतंत्र की सबसे बड़ी कमजोरी यह रही है कि स्थानीय इकाइयां लोकतंत्र के आधार पर नहीं चलाई जातीं और दल अपने-अपने उम्मीदवारों को ऊपर से थोप देता है। इस पद्धति में मार्क्सवाद के "लोकतांत्रिक केन्द्रीकरण" के सारे दोष तो आ जाते हैं परंतु केन्द्रीय नेतृत्व मार्क्सवादी दलों की तरह सारी जिम्मेदारी को लेने के लिए तैयार नहीं होता। सत्ता सब केन्द्रीय नेतृत्व के हाथ में और पराजय की स्थिति में सारा दोष स्थानीय नेतृत्व पर थोप देना, नेतृत्व की इस पद्धति ने लोकतंत्र को नपुंसक बना दिया है।

राजेन्द्र बाबू लोकतंत्र पर आ रहे इस आसन्न संकट से बेखबर नहीं थे। लोक सभा और राज्य सभा के संयुक्त अधिवेशन में भारत के राष्ट्रपति के रूप में दिये गये अपने अंतिम भाषण में उन्होंने कहा था कि चुनाव पर होने वाला खर्च निरंतर बढ़ता जा रहा है जो भारतीय लोकतंत्र के विकास के लिए सबसे बड़ा खतरा है। यदि आम चुनावों में अपार धन खर्च होता है, और इस धन को एकत्र करने की जिम्मेदारी केन्द्रीय नेतृत्व पर होती है, तो स्वभावतः सारी शक्ति भी केन्द्रीय नेतृत्व के हाथों में केन्द्रित हो जायेगी जो वस्तुतः लोकतंत्र का उपहास होगा। इस रूप में विकसित भारतीय लोकतंत्र पर पाश्चात्य लोकतंत्र से भी अधिक धनतंत्र का प्रभाव हो गया है और प्रत्येक दल का नेतृत्व लोकतांत्रिक प्रक्रिया का बार-बार उल्लंघन कर लोकतंत्र का सबसे बड़ा विरोधी हो गया है। राजेन्द्र बाबू बार-बार कहा करते थे कि गांधी जी ने हमें सिखाया है कि नीति के बिना राजनीति आत्मा रहित शरीर के समान है। उन्होंने लिखा है कि "यदि सत्य-आचरण अहिंसा के बिना असंभव है तो दोनों का संबंध अटूट हो जाता है। ईश्वर सत्य है। इसको

तो सभी मानते और कहते आये हैं। पर गांधी जी ने ईश्वर को जानने और पहचानने का केवल एक ही रास्ता बताया—सत्य का रास्ता। वह हमेशा कहा करते थे कि साधन और साध्य में अंतर नहीं होता है। इसलिए उन्होंने केवल ईश्वर को सत्य ही नहीं बताया, बल्कि सत्य को ही ईश्वर बताया।" (बापू के कदमों में) यह मान्यता ही भारतीय परंपरा और राजनीति का मूलाधार है। इस मर्यादा का उल्लंघन करने पर भारतीय राजनीति पाश्चात्य राजनीति की फूहड़ नकल मात्र रह जाती है। और भारतीय जन-जीवन की वास्तविक समस्याओं का समाधान कर पाना उसके बूते की बात नहीं रह जाती। इसीलिए स्वतंत्र भारत में यद्यपि भौतिक विकास तो खूब हुआ है परंतु राजनीति प्रशासन दोनों क्षेत्रों में नैतिकता के ह्रास के कारण जन-जीवन में असंतोष निरंतर बढ़ता जा रहा है। उन्माद और हिंसा की भावना में इस कदर वृद्धि हुई है कि विवेक की बात कोई सुनने के लिए तैयार नहीं है। ऐसा लगता है कि सारा राष्ट्र भौतिक सुख-सुविधा के साधनों को अधिक से अधिक मात्रा में हथियाने के लिए पागल हो उठा है। चाहे जिस तरीके से हो हर आदमी को अधिक से अधिक आर्थिक लाभ चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि तिजोरी की चाबी जिसके हाथ में होगी, लोकतंत्र की गर्दन भी उसी के हाथ में होगी। आप चाहें तो इसे लोकतंत्र कह सकते हैं, परंतु राजेन्द्र बाबू ने तो इस पर प्रश्नवाचक चिह्न लगा दिया था।

प्रसिद्ध अमेरिकी समाजशास्त्री और दार्शनिक सोरोकिन (सोशल ऐण्ड कल्चरल डायनेमिक्स) ने लिखा है कि त्याग से प्रेरित युग में सभ्यता और संस्कृति का उत्थान होता है और भोग से प्रेरित युग में उनका पतन। श्री रामकृष्ण परमहंस से लेकर महात्मा गांधी तक का युग त्याग से प्रेरित था । अतः भारत का उत्थान हुआ; उसके बाद का युग भोग से प्रेरित है। अतः यह पतन का युग है। सोरोकिन के विश्लेषण के निष्कर्ष का उत्तर ढूंढना आसान नहीं होगा। राजेन्द्र बाबू ने तो बार-बार भौतिक भोग के साधनों की ओर निरंतर बढ़ते हुए खतरे से देश को आगाह किया था।

मानव-जीवन के संतुलित और संपूर्ण उत्थान के लिए सामाजिक, आर्थिक, प्रशासनिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक प्रक्रियाओं का परस्परावलंबित विकास आवश्यक है परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि सत्ता की शक्ति के अतिरिक्त और कोई शक्ति होती ही नहीं। महात्मा गांधी, आचार्य विनोबा और लोकनायक जयप्रकाश कभी सत्ता में नहीं रहे परन्तु क्या यह कहने की आवश्यकता है कि भारत के राजपुरुष इनके चरणों में बैठकर अपने को कृतार्थ मानते थे। ऐसा क्यों? राजसत्ता पशुबल की शक्ति है और संतसत्ता आत्मबल की। जब दोनों एक दूसरे के पूरक होते हैं तभी समाज के सभी अंगों का सामंजस्यपूर्ण और संतुलित उत्थान होता है। जब दोनों एक दूसरे से विमुख हो जाते हैं तब लोक

संग्रह की क्रिया शिथिल हो जाती है और वैसी स्थिति में समाज की गतिशीलता अवरुद्ध हो जाने के कारण समाज अपनी पाचन शक्ति को खो बैठता है और बिखरने लगता है।

तुलसीदासजी के श्रीराम ने कहा है—जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तो मोहि बरजहु भय बिसराई।" इससे यह स्पष्ट है कि लोक संग्रह की राजनीति को, लोक नीति कहना अधिक उपयुक्त होगा। वास्तविक शक्ति नीति और भय-विसर्जन में ही निहित है। जहां भय है, जहां अनीति है, वहां लोकतंत्र का स्वस्थ विकास हो ही नहीं सकता।

राजनीति में रहकर भी राजेन्द्र बाबू ने कभी भी नीति का परित्याग नहीं किया, न अपनी व्यक्तिगत सुख-सुविधाएं छिन जाने के भय से कभी सत्य बोलने से हिचकिचाये। उनके व्यक्तित्व में फूल की कोमलता और वज्र की कठोरता दोनों का आदर्श समावेश था। इसलिए मैं उन्हें आधुनिक भारतीय राजनीति का अर्द्धनारीश्वर कहता हूं। उनकी वाणी और स्वभाव में तो कोमलता थी परंतु सत्य एवं अहिंसा के आचरण में किसी भी स्थिति में न टूटने वाली कठोरता। राष्ट्रपति के रूप में उन्होंने मर्यादा की जो लक्ष्मण रेखा खींच दी वही भारतीय लोकतंत्र का रक्षा-कवच बन गयी है। हमें इसका बार-बार मनन करना होगा।

राजनीति का आधार नीति है, नीति का आधार क्या है? नीति का आधार है अध्यात्म। यहां मैं जान-बूझकर "धर्म" शब्द का प्रयोग नहीं कर रहा हूं। धर्म शब्द का प्रयोग आज मुख्य रूप से सम्प्रदाय के अर्थ में हो रहा है और इसी अर्थ में आज "धर्म-निरपेक्ष" शब्द का प्रयोग प्रचलित हो गया है। यह वह सनातन धर्म नहीं है जो सब कुछ को धारण करता है और मनु-स्मृति में जिस सनातन धर्म के दस लक्षण गिनाये गये हैं और जिसका परिष्कार कर गांधीजी ने जिसे एकादश व्रतों में शामिल कर अपनी राष्ट्रीय साधना का आधार बना दिया। धर्म का यह साम्प्रदायिक स्वरूप उसकी संकीर्णता और कट्टरता का परिचायक होने के कारण उन्माद और हिंसा का माहौल पैदा करता है। साम्प्रदायिक से भिन्न धर्म का एक वह स्वरूप में जिसमें मनुष्य व्यक्तिगत और सामूहिक रूप में एक पद्धति विशेष से बंधकर भौतिक और पारलौकिक जीवन में दुख के स्थान पर सुख पाने की आश्वस्तता पाने की आशा रखता है। धर्म की अंतिम और सर्वोच्च वह आध्यात्मिक स्थिति है जिसमें मनुष्य ईश्वर से तादात्म्य का अनुभव होने के कारण संसार के सारे भेद-भाव से ऊपर उठ उस एकता को पा लेता है जिसमें अपने पराये का भेद मिट जाने के कारण न उसे मोह होता है, न शोक। ऐसा कर्मयोगी जीवन मुक्त हो जो राजनीति करता है वह लोक संग्रह के लिए होती है और मूलतः आध्यात्मिक होने के कारण व्यवहार में कभी भी नीति का आधार नहीं

छोड़ती है। धर्म के इसी आध्यात्मिक अर्थ में महात्मा गांधी और राजेन्द्र बाबू धर्म और राजनीति का अन्योन्याश्रम संबंध मानते थे तथा राजेन्द्र बाबू हमेशा यह कहते थे कि इसके लिए राजनीति को चरित्र से जोड़ना अत्यंत आवश्यक है। कोई भी व्यक्ति चाहे जितना भी कुशल क्यों न हो, यदि वह लम्पट और तिकड़मी है, तो उसकी कुशलता एवं क्षमता से कभी राष्ट्र का हित हो ही नहीं सकता।

बीसवीं शताब्दी के इस अंतिम दशक में अप्रत्याशित परिवर्तनों की राजनीति के एक नये युग का आरंभ हो चुका है। सात दशकों तक मार्क्सवाद ने हिंसा और केन्द्रीकरण का सहारा लेकर जिस नयी सभ्यता के निर्माण की घोषणा की थी आज उसकी समाप्ति की वह स्वयं घोषणा कर रहा है; लगभग पांच दशक पूर्व जिन शक्तियों ने जर्मनी का विभाजन कराया था वे ही आज उसके एकीकरण में सहायक बन गयी हैं। लगता है कि हिंसा की राजनीति का एक चक्र पूरा हो गया है।

राजेन्द्र बाबू जीवन के अंत तक यह मानते रहे कि भारत का विभाजन साम्प्रदायिक समस्या का समाधान नहीं है पाकिस्तान की नींव दो राष्ट्रों के जिस सिद्धांत पर डाली गयी वह इतिहास विरुद्ध, अव्यावहारिक, अमानवीय, अनैतिक और अध्यात्म की बुनियादी मान्यता के विरुद्ध है क्योंकि वह असत्य और हिंसा पर आधारित है। लेकिन विभाजन का समाधान साम्प्रदायिक हिंसा और तिकड़मी राजनीति नहीं बल्कि अहिंसा, प्रेम, सत्य और सद्भाव को भारतीय जीवन में और दृढ़ता से उतारना है।

अर्द्धनारीश्वर की परिकल्पना में जीवन की सम्पूर्णता जिस जीवन्त रूप में साकार हो उठी है वह शव को शिव बनाने की साधना है। उपनिषद् में कहा गया है कि इस पथ पर चलना तलवार की धार पर चलने के समान है। आजादी इसी पथ पर चल कर हासिल की गयी थी। उस समय "बिस्मिल" का यह गीत लाखों कंठों से सुनाई पड़ता था—

"सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है,
देखना है जोर कितना बाजू-ए-कातिल में है"।

आजादी तो मिली परंतु कातिल ने भारत का विभाजन कर अपना जोर दिखा दिया क्योंकि उनके गीत की इन अंतिम पंक्तियों को भुला दिया गया--

"ऐ शहीदे-मुल्को-मिल्लत, तेरे जज्बों के निसार,
तेरी कुर्बानी का चर्चा गैर की महफिल में है।"

आजादी के बाद मुल्को-मिल्लत के नहीं बल्कि मुल्क को टुकडों में बांटने वाले, लोगों के दिलों को जोड़ने वाले नहीं बल्कि तोड़ने वाले शहीद पैदा हो रहे हैं; आज उन्हीं की कुर्बानी की चर्चा अपने और दूसरों की महफिल में होती है जिनकी भावनाओं की बाढ़, हिंसा, आतंक और झूठ फरेब की खेती को सींचती है।

जां निसार अख्तर ने कहा है—

"यह वक्त खोने का नहीं, यह वक्त सोने का नहीं
जागो वतन खतरे में है, सारा चमन खतरे में है।"

आज धार्मिक, भाषायी, जातीय और क्षेत्रीय साम्प्रदायिक भावनाओं को उभाड़ कर राजनीति अपने हाथ सेंक रही है, अपने प्रभाव को बढ़ाने का ढोंग कर रही है। जब हर भारतीय अपने स्वार्थ की ही सोचेगा तो भारत की बात कौन सोचेगा, जब हर व्यक्ति अपने स्वार्थ की ही चिंता करेगा तब समाज की चिंता कौन करेगा? राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय संकट की ऐसी घड़ी में डा० राजेन्द्र प्रसाद का व्यक्तित्व प्रकाश स्तंभ का काम दे सकता है। बशर्ते हम जागकर भी सोने का नाटक न करें, समझकर भी नासमझ न बनें और अपनी अन्तरात्मा की आवाज के अनुसार चलें।

20

राजन बाबू: महान एवं विनम्र

— सत्येन्द्र नारायण सिंह*

वर्ष 1926 की बात है जब मुझे राजन बाबू से मुलाकात करने का पहला अवसर मिला। महात्मा गांधी औरंगाबाद गए हुए थे। मैं और मेरा भाई उन कुछ सौभाग्यशाली व्यक्तियों में से थे जिन्हें महात्मा गांधी के चरण स्पर्श करने के लिए मंच पर चढ़ने की अनुमति दी गई थी। राजेन्द्र बाबू ने गांधी जी से हमारा परिचय करवाया था।

यद्यपि, मैं जवान था फिर भी मैं राजेन्द्र बाबू की सादगी से प्रभावित हुआ। उनके आडम्बर रहित जीवन के कारण उनकी अपने साथियों में एक अलग पहचान बन गई थी। प्रतिभाशाली वकील होने के कारण वे उस समय के शीर्ष वकीलों की तरह अपार धन इकट्ठा कर सकते थे। किन्तु राजेन्द्र बाबू ने कांग्रेस मुख्यालय, सदाकत आश्रम में सादा तथा अन्य आश्रमवासियों के साथ गांधीवादी विचारधारा के अनुरूप आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करना पसंद किया।

पटना नगरपालिका का अध्यक्ष चुने जाने के बाद भी उनकी यह दिनचर्या अनवरत रही। राजेन्द्र बाबू अपने उपाध्यक्ष अनुग्रह बाबू के साथ 12 किलोमीटर दूर इक्का में चलकर नगरपालिका कार्यालय जाते थे। न कोई आडम्बर था, और न ही कोई मिथ्याभिमान था।

राजेन्द्र बाबू का स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने वाले हजारों लोगों के प्रति जो प्रगाढ़ प्रेम था, उससे भी उन्हें ख्याति प्राप्त हुई। वे उन्हें अपने परिवार के सदस्य मानते थे। आश्रम में उनका जीवन इस अवधारणा पर आधारित था कि नेता और उसके अनुयायी एक साथ रहें तथा एक जैसा जीवन व्यक्ति करें। इससे उन्हें अपने हमवतनों के साथ सुदृढ़ संबंध स्थापित करने और उन्हें स्वतंत्रता आन्दोलन की बड़ी परीक्षा में ले जाने में सहायता मिली।

वे अपनी उदारता और सहिष्णुता के लिए भी जाने जाते थे। उन्होंने कभी भी क्रोध

*श्री सिंह बिहार के भूतपूर्व मुख्यमंत्री हैं।

366015—16

नहीं दिखाया और उत्तेजक अवसर पर भी शांत रहते थे। मुझे एक छोटी सी घटना याद है उनका दर्जी, जो कांग्रेस का कार्यकर्ता था, ने राजेन्द्र बाबू की गरम कपड़े की जाकेट के बाजू अलग-अलग कपड़े से सिल दिए। दर्जी रामदास ने अपनी गलती बहुत देर बाद महसूस की, किन्तु उसने यह स्वीकार कर लिया। राजेन्द्र बाबू ने इससे नाराज नहीं हुए और जैकेट ले ली तथा उसे अपने पास रखा और सर्दियों में उसे पहना।

अत्यंत सादे और सरल जीवन का प्रतिभा और स्मरण शक्ति के साथ कोई मेल नहीं होता उनका शैक्षणिक रिकार्ड भी उत्कृष्ट था। किन्तु उनके आचरण में कभी भी इसका आभास नहीं हुआ, जो लोग उनसे परिचित नहीं थे, उन पर वे ऐसी छाप छोड़ते थे जैसे कि वे एक साधारण किसान है और ज्यादा पढ़े लिखे नहीं हैं। परन्तु उनकी मूँछ और भारी गालों से ऐसा लगता नहीं था।

पत्रकार जौन गुन्थर ने उनके बारे में लिखा है कि सैन्ट्रल जेल, हजारी बाग के दौरे पर ब्रिटिश संसदीय शिष्टमण्डल के एक सदस्य ने राजेन्द्र बाबू की कोठरी के पास से गुजरते हुए उन्हें अपराधी किस्म का व्यक्ति समझा और उन्हें अपराधी कहा। बिहार के सावंत इस टिप्पणी पर मुस्कराये। जौन गुन्थर ने आगे यह भी लिखा कि स्पष्ट है कि शिष्टमण्डल को यह मालूम नहीं था कि यह एक ऐसा विद्वान था जो सात भाषाएं जानता था।

एक बार मुझे एक मुकदमे की पैरवी के दौरान उनके समक्ष प्रस्तुत होने का अवसर मिला। यह विवाद एक चूना पत्थर की खान से संबंधित था। कुछ प्रोफेसरों सहित दोनों पक्ष की ओर से कई रसायन वैज्ञानिक उनके सम्मुख प्रस्तुत हुए और अपने दावे के समर्थन में कई पुस्तकें प्रस्तुत कीं। दोनों पक्षों की बात सुनने के बाद बीमार होने के बावजूद कई दिन से जब वे अपना निर्णय लिख रहे थे, तो मैं उनके पास ही था। उनके पास कोई स्टैनो-टाइपिस्ट नहीं था। उन्होंने 200 पृष्ठों का निर्णय अपने हाथ से ही लिखा। मैं यह देखकर हैरान रह गया कि वे उन्हें प्रस्तुत की गई अनेक पुस्तकों और निर्णय विधियों का हवाला दिए बिना ही अनवरत लिखाते रहे। उनकी पकड़ और समझ तथा स्मरण शक्ति इतनी विरल थी।

चम्पारन सत्याग्रह के दौरान गांधी जी के सम्पर्क में आने के बाद राजेन्द्र बाबू ने वकालत छोड़ दी और अपने को पूर्णतः स्वतंत्रता संग्राम के प्रति समर्पित कर दिया। गांधी जी में उनका अटूट विश्वास था और इसी प्रकार सत्य तथा अहिंसा में भी उनका पूरा विश्वास था। इस बात में कोई सन्देह नहीं है। उनका जीवन एक ऐसी खुली पुस्तक है जिसमें घटनायें गांधी के शब्दों और कार्यों से प्रमाणित हैं। उनके दरवाजे सबके लिए चाहे वह बड़ा हो या छोटा, खुले थे और जो लोग उनसे मिलने जाते थे, वे उनकी मृदु और सरल वाणी से इतने अधिक प्रेरित होते थे कि उनकी बातें उनके दिलों को छू जाती थीं।

वह अजातशत्रु एक ऐसे व्यक्ति जिसका कोई शत्रु न हो, थे। किसी के प्रति उनके मन में कोई दुर्भावना नहीं थी। वे सबके प्रिय थे। जब कभी दल में कोई विवाद उत्पन्न होता था, तो गांधी जी उन्हें विवाद के समाधान के लिए आगे लाते थे। जब हरिपुरा कांग्रेस के बाद सुभाष बाबू ने त्यागपत्र दे दिया, तो राजेन्द्र बाबू को कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया। उसके बाद जब आचार्य कृपलानी ने त्यागपत्र दिया तो पंडित नेहरू और सरदार पटेल राजेन्द्र बाबू को अध्यक्ष का पद स्वीकार करने हेतु मनाने के लिए आए, यद्यपि उन पर संविधान सभी के प्रेजीडेन्ट का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व था। किन्तु कांग्रेस अध्यक्ष का पद ग्रहण करने से उनके कार्य पर कोई फर्क नहीं पड़ा, केवल उन्हें अधिक मेहनत से कार्य करना पड़ा।

नम्रता उनके व्यक्तित्व का सार था। उन्होंने अपनी सभी उपलब्धियों को गांधी जी की प्रेरणा फल समझा। गांधी जी राजेन्द्र बाबू को विश्लेषणात्मक मस्तिष्क और तीक्ष्ण बुद्धि वाला व्यक्ति मानते थे। इसलिए जब कभी उनके सम्मुख आन्दोलन से संबंधित भारी समस्यायें उत्पन्न होती थीं, तो वे राजेन्द्र बाबू को अपने विश्वास में लेते थे। वर्धा, जहां गांधी जी ने आन्दोलन का संचालन किया, में राजेन्द्र बाबू की सख्त आवश्यकता थी। किन्तु राजेन्द्र बाबू ने गांधी जी के प्रति उनकी सन्निकटता का कभी आभास नहीं होने दिया, इसके बजाय उन्होंने इसे अपना कर्तव्य माना और चुपचाप अपना कार्य करते रहे। उनके संबंध में यह मूल्यांकन करना इतिहासकारों पर निर्भर करता है कि क्या उनके सहयोग को समुचित महत्व दिया गया है। मेरा अपना मत यह है कि ऐसा नहीं किया गया है।

निःसंदेह, कई मामलों में राजेन्द्र बाबू और पंडित जी में तीव्र मतभेद थे। राजेन्द्र बाबू कट्टर धार्मिक थे और हिन्दू परम्पराओं के प्रति उनकी अटूट आस्था थी। परन्तु खान अब्दुल गफ्फार खां ने जो उन्हें हजारीबाग सैंट्रल जेल में साथ रहने के कारण अच्छी तरह से जानते थे, उनके बारे में कहा है कि वे एक ऐसे व्यक्ति थे, जो संकुचित विचारों के नहीं थे और जिसने आदमी और आदमी के बीच कोई फर्क नहीं किया। राजेन्द्र बाबू के इसी गुण के कारण धार्मिक विश्वासों और विचारों में पंडित नेहरू के साथ मतभेद होने पर भी इनका हमारे नवजात प्रजातंत्र की नींव को सुदृढ़ करने के लिए साथ-साथ कार्य करने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह इस बात का सैदव ध्यान रखते थे कि उनका कोई कदम संविधान में अंतर्विष्ट उनकी भूमिका से अलग न हो। यद्यपि पंडित जी ने स्वयं भी न केवल देश की स्वतंत्रता और एकता को बनाए रखने में वरन स्वतंत्रता और प्रजातंत्र की जड़ें मजबूत करने के लिए परम्पराऐं निर्धारित करने के लिए उनके योगदान को सराहा था।

एक आम आदमी होने के कारण राजेन्द्र बाबू राष्ट्रपति भवन में अपने आप को एक

कैदी सा महसूस करते थे। वह अपने अंतर्मन के इस उद्वेलन से पीड़ित रहते थे कि वह जितनी सक्रिय भूमिकाएं निभा सकते थे, उन्हें निभा नहीं पा रहे थे, राष्ट्रपति के पदभार से मुक्त होते समय उन्होंने अपनी प्रसन्नता इसी प्रकार व्यक्त की जिस प्रकार विद्यालय की छुट्टी होने पर घर जाने के लिए एक विद्यार्थी प्रसन्न होता है। इसका निर्णय और मूल्यांकन इतिहास करेगा। यह उस व्यक्ति की महानता है, जिसके लिए हम उनके प्रति श्रद्धानत हैं और आदरभाव प्रदर्शित करते हैं तथा उनसे प्रेरणा प्राप्त करते हैं। यह आशा की जानी चाहिए कि जब कभी भी इतिहास में निर्णायक क्षण आएंगे तो भारत माता पुनः ऐसे महान व्यक्तियों को जन्म देगी।

21

डा० राजेन्द्र प्रसादः जीवन, विचारधारा और कृतित्व

—डा० सवाई सिंह सिसोदिया*

डा० राजेन्द्र प्रसाद एक उत्कृष्ट नेता और गांधीवादी धारा के एक ऐसे सच्चे प्रतिनिधि थे, जो अपने जीवनकाल में ही एक किंवदन्ती बन गये थे। उन्हें प्रायः "नियति पुत्र" के रूप में याद किया जाता है तथा आम तौर पर स्नेहवश राजेन बाबू के नाम से स्मरण और सम्बोधित किया जाता है। इनका जन्म "भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस" की स्थापना से एक वर्ष पहले बिहार में सारन जिले में गांव "जीरादेई" में 3 दिसम्बर, 1884 को हुआ था।

स्वभाव से मिलनसार तथा पुश्तैनी तौर पर विद्वान कायस्थ परिवार से सम्बद्ध उनके पूर्वज अमरोहा (उत्तर प्रदेश) से जीरादेई में आकर बस गये थे, जहां वह अन्य लोगों की भांति सादगी से रहे और जमींदारों का दर्जा प्राप्त किया।

राजेन बाबू ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा एक मौलवी से फारसी भाषा में शुरू की तथा तत्पश्चात् हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी भाषा का ज्ञान भी पूरे उत्साह के साथ अर्जित किया। श्री राजेन्द्र प्रसाद ने अपने बचपन में ही हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई संस्कृतियों का तथा साहित्य का गहन अध्ययन कर लिया था, जिसने उनके किशोर मस्तिष्क पर एक मिली जुली और गहरी छाप छोड़ी।

छपरा डिस्ट्रिक्ट स्कूल से एक मेधावी छात्र के रूप में अपनी स्कूली शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् उन्होंने उच्च शिक्षा के लिए कलकत्ता में प्रेसीडेन्सी कालेज में प्रवेश लिया जहां वह विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान पर रहे। छपरा के ग्रामीण वातावरण में सादगी पूर्ण और विनीत जीवन की तुलना में कलकत्ता जैसे महानगर ने नितान्त भिन्न और तीव्र जीवन का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वह एम० ए० तक सभी परीक्षाओं में सदैव प्रथम आते रहे। वह शिक्षकों और अपने सहपाठियों के बीच बहुत

*डा० सिसोदिया भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री हैं।

ही प्रिय थे। डा० जे० सी० बोस (भौतिक विज्ञान) और डा० पी० सी० राय (रसायन विज्ञान) जैसे विख्यात वैज्ञानिक प्रेसीडेन्सी कालेज में उनके शिक्षक थे।

कालेज में अपने प्रतिभाशाली छात्र जीवन के अतिरिक्त युवा प्रसाद ने स्वामी विवेकानन्द के समकालीन सतीश चन्द्र मुखर्जी द्वारा स्थापित "डॉन सोसायटी" के माध्यम से समाज सेवा के बारे में भी जानकारी प्राप्त की। अपने प्रान्त के छात्रों को सहायता और मार्गदर्शन प्रदान करने के उद्देश्य से उन्होंने वर्ष 1906 में कलकत्ता में एक "बिहारी क्लब" प्रारम्भ किया। इसके परिणामस्वरूप "बिहारी स्टूडेन्टस कान्फ्रेंस" जो भारत में पहली छात्र कान्फ्रेंस थी, का गठन हुआ जिससे एक नया मार्ग प्रशस्त हुआ। इस संगठन द्वारा प्रशिक्षित छात्र बाद में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के निष्ठावान सिपाही सिद्ध हुए।

वर्ष 1906 में कलकत्ता में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में राजेन बाबू का अरविंदो घोष, फिरोजशाह मेहता, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, पंडित मदन मोहन मालवीय और लाला लाजपत राय जैसे विख्यात नेताओं से मिलने का पहला अवसर प्राप्त हुआ जिसकी इनके मस्तिष्क पर एक बहुत गहरी छाप पड़ी।

वर्ष 1907 में एम० ए० की डिग्री ग्रहण करने के बाद वह अपने पिता की मृत्यु के कारण काफी परेशान रहे तथा ऐसे में वह अपने (भविष्य) के बारे में निर्णय नहीं ले पा रहे थे। भारतीय सिविल सेवा की परीक्षा में बैठने के लिए लन्दन जाने की बजाय, इन्होंने मुजफ्फरपुर कालेज में प्रोफेसर बनना पसन्द किया, जहां एक वर्ष पश्चात् उनका प्रधानाचार्य के रूप में चयन कर लिया गया।

विधि में उनकी विशेष अभिरुचि थी। इसी कारण वह इस विषय का अध्ययन करने के लिए पुनः कलकत्ता गये। सदैव की भांति वह बी० एल० डिग्री परीक्षा में भी प्रथम स्थान पर रहे तथा तत्पश्चात् उन्होंने कलकत्ता हाई कोर्ट में अपनी प्रैक्टिस शुरू कर दी।

उनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर कलकत्ता हाई कोर्ट के एक प्रख्यात जज सर आसुतोष मुखर्जी ने, जो कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति भी थे, उन्हें लॉ कालेज में प्रोफैसर के पद पर नियुक्त होने की पेशकश की। उसी दौरान एक महत्वपूर्ण घटना हुई। राजेन बाबू का "सर्वेन्ट्स आफ इंडिया सोसाइटी" के संस्थापक गोपाल कृष्ण गोखले से परिचय हुआ, जिनकी इच्छा पर उन्होंने "सोसाइटी फार सर्विस आफ ह्यूमैनिटी" में शामिल होने तथा प्रैक्टिस छोड़ने का फैसला कर लिया। उन्होंने व्यक्तिगत और पारिवारिक आवश्यकताओं की तुलना में राष्ट्र की आवश्यकताओं के लिए अपनी सेवाएं उपलब्ध कराना पसन्द किया। अपने भाई, महेन्द्र प्रसाद को बढ़िया चलती अपनी प्रैक्टिस छोड़ने की इच्छा के बारे में सूचित करते हुए देश के 30 करोड़ लोगों की हित चिन्ता के संबंध में उन्होंने यह लिखा: ".....इस अस्थायी संसार में.....सभी कुछ एक दिन नष्ट

हो जाता है..... धन, पद, सम्मान.....एक गरीब आदमी लाखों रुपये रखने वाले अमीर आदमी की तुलना में, अपनी थोड़ी सी पूंजी में ही अधिक सुख का अनुभव करता है। इसलिए अब हमें गरीबी को हिकारत की नजर से नहीं देखना चाहिए। विश्व के महानतम व्यक्ति सबसे गरीब परिवारों में से ही हुए हैं....'' यह तो बाद के वर्षों में सिद्ध हुआ कि उनकी यह बात अपने बारे में ही एक सच्ची भविष्यवाणी बन गई।

मानव-मात्र की सेवा के लिए अपनी प्रैक्टिस का त्याग करने हेतु अपनी तत्परता दिखाने के बावजूद वह पारिवारिक कारणों से गोखले की सोसाइटी में शामिल नहीं हो सके। यद्यपि वह इस कारण से क्षुब्ध थे, तथापि उन्होंने उस समय कलकत्ता हाई कोर्ट के डा० रास बिहारी बोस तथा सर एस० पी० सिन्हा (बाद में लार्ड सिन्हा) जैसी अपने समय की महान् कानूनी विभूतियों के साथ पूरे लगन के साथ कार्य करना शुरू कर दिया। सामाजिक रूप से सक्रिय रहते हुए उन्होंने विधि में स्नातकोत्तर परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली।

छात्र संगठन से सम्बद्ध विभिन्न गतिविधियों से जुड़े होने और उनमें उनकी अग्रणी भूमिका होने के कारण उनका अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के एक सदस्य के रूप में चयन कर लिया और इसी हैसियत से उन्होंने वर्ष 1911 में कलकत्ता में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में भाग लिया।

गांधी जी द्वारा हजारों किसानों के शोषण के विरुद्ध तथा चम्पारन में बसे नील की खेती करने वाले अंग्रेजों, जिन्हें प्रशासन का भी पूरा समर्थन था, द्वारा सताए जा रहे किसानों की शिकायतों को दूर करने के लिये चलाए जा रहे एतिहासिक चम्पारन मिशन में राजन बाबू गांधी जी के घनिष्ठ सहयोगियों में से एक थे।

चम्पारन की जनता ने अपने उद्धार के लिये चलाए गए सविनय अवज्ञा आन्दोलन के आह्वान का भारी समर्थन किया। इस लड़ाई को जीतने में गांधी जी, राजन बाबू और अन्य व्यक्तियों को पूरा एक वर्ष लगा। भारत में ''सत्याग्रह'' का यह पहला प्रयोग था। इस प्रकार के जनजागरण के कारण भारी दबाव पड़ने पर सरकार ने किसानों की शिकायतों का अध्ययन करने हेतु एक आयोग नियुक्त किया जिसका कार्यभार गांधी जी को सौंपा गया। आयोग की रिपोर्ट के परिणामस्वरूप किसानों की मुख्य शिकायतें दूर कर दी गईं और चम्पारन में नील उत्पादकों का प्रभुत्व समाप्त हो गया और उन्हें भारी झटका लगा। चम्पारन के संघर्ष ने पूरे बिहार में राजनैतिक चेतना की लहर पैदा कर दी और देश भर में स्वतन्त्रता की लड़ाई जीतने के लिये ''सविनय अवज्ञा'' का पहला पाठ पढ़ाया।

वर्ष 1918 में राजन बाबू ने एक अंग्रेजी पाक्षिक पत्रिका ''सर्चलाइट'' का प्रकाशन

शुरू किया जो बिहार में बड़े पैमाने पर लोकप्रिय हुआ और यह दैनिक समाचार पत्र अभी तक प्रकाशित हो रहा है। उन्होंने वर्ष 1920 में एक हिन्दी साप्ताहिक पत्रिका "देश" का प्रकाशन भी शुरू किया दोनों का ही भारी स्वागत किया गया।

जब महात्मा गांधी जी ने अपना ऐतिहासिक असहयोग आन्दोलन शुरू किया तो उनके अत्यन्त विश्वासी सहयोगी राजन बाबू ने बिहार में किसानों के प्रवक्ता और छात्रों के नेता के रूप में इस आन्दोलन को चलाया। राजन बाबू ने सदैव अवसर के अनुरूप उठकर सत्याग्रह चलाने, सविनय अवज्ञा आन्दोलन और स्वराज आन्दोलन चलाने, हरिजन कल्याण के लिये कार्य करने और अभूतपूर्व भूकम्पों और विनाशकारी बाढ़ों आदि की प्राकृतिक विपदाओं से पीड़ित लोगों को राहत देने और उनके पुनर्वास में अपनी अद्वितीय निष्ठा, ईमानदारी, दूरदर्शिता और संगठनात्मक कौशल का परिचय दिया।

उन्होंने औद्योगिक क्षेत्रों में चल रहे श्रम आन्दोलन में गहरी रुचि ली और लोगों को जागरूक करने और उन्हें अहिंसा, प्यार और समानता के सिद्धान्तों का उपदेश देने के उद्देश्य से देशभर का दौरा किया। उन्होंने विश्व में युद्ध-विरोधी आन्दोलन को सुदृढ़ बनाने हेतु अहिंसा और भाईचारे का उपदेश देने के लिये सद्भावना प्रचारक के रूप में विदेश-भ्रमण भी किया।

स्वतन्त्रता सेनानी के रूप में उन्हें कई बार जेल जाना पड़ा।

राष्ट्र के प्रति उनके निस्वार्थ समर्पण ने उन्हें जनता और नेताओं का इतना चहेता बना दिया कि उनकी शीघ्र ही देश के अग्रणी एवं शीर्षस्थ जननेताओं में गणना होने लगी। जब वर्ष 1939 में सुभाष चन्द्र बोस ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष पद से इस्तीफा दिया तो उन्हें सर्वसम्मति से कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया।

वर्ष 1947 में राजन बाबू को अन्तरिम सरकार के केन्द्रीय मंत्रीमण्डल में खाद्य एवं कृषि मंत्री के रूप में लिये जाने के बाद मध्य प्रदेश में राऊ में हुए सर्वोदय सम्मेलन में आमन्त्रित किया गया। उज्जैन में जिला कांग्रेस समिति के महामंत्री के रूप में, मैं कई क्षेत्रीय कांग्रेसी नेताओं और जाने माने व्यक्तियों के साथ डा० राजेन्द्र प्रसाद से यह अनुरोध करने गया कि वह अपना थोड़ा समय निकाल कर मध्य प्रदेश में हमारे मूल स्थान बाड़नगर और उसके आसपास के क्षेत्रों का दौरा करें। डा० राजेन्द्र प्रसाद ने यह अनुरोध तत्काल स्वीकार कर लिया। अपने बीच एक अत्यन्त सहृदय और स्नेहपूर्ण अनुभवी व्यक्ति को पाकर हम सचमुच बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने हमारे साथ हमारी समस्याओं पर चर्चा की, प्रत्येक व्यक्ति की बात गौर से सुनी और विभिन्न मामलों और पेयजल, आवास, कृषि, ग्रामीण विकास आदि की समस्याओं पर हमें उपयुक्त सलाह दी। उनसे मिलकर हमने स्वयं को सम्मानित महसूस किया। हम उनके विनम्र व्यवहार, उनकी

सादगी तथा इससे भी अधिक उनके वार्तालाप में अपनेपन की झलक से बहुत अधिक प्रभावित हुए।

वर्ष 1946 से 1949 तक डा० राजेन्द्र प्रसाद ने संविधान सभा के अध्यक्ष पद को सुशोभित किया और अध्यक्ष के रूप में इसमें हुए वाद-विवादों एवं इसके सदस्यों के परस्पर विरोधी दृष्टिकोणों में निपुणतापूर्वक सामंजस्य किया। कई अवसरों पर उन्होंने परस्पर विरोधी विचारों वाले सदस्यों में अपनी विनम्र एवं दूरदर्शितापूर्ण सलाह से सहमति कराई।

डा० राजेन्द्र प्रसाद को सर्वसम्मति से वर्ष 1952 में सबसे बड़े लोकतन्त्र का प्रथम राष्ट्रपति चुना गया। वर्ष 1957 में इन्हें इस पद के लिए पुनः चुना गया।

मुझे भारत के प्रथम नागरिक से, राष्ट्रपति के रूप में मुलाकात करने के कई अवसर प्राप्त हुए और मैंने उन्हें सदा विनम्र एवं स्नेहपूर्ण पाया। वह ग्रामीण विकास योजनाओं को बनाये जाने और लागू किये जाने के बारे में सदा बहुत ही जिज्ञासा से बातचीत किया करते थे।

दिनांक 13 मई, 1962 को सर्वोच्च पद से सेवानिवृत्त होने के पश्चात् राजन बाबू सदाकत आश्रम में चले गए जिसे उन्होंने अपना शेष जीवन व्यतीत करने के लिए स्वयं ही चुना था। दिनांक 28 फरवरी, 1963 को सदाकत आश्रम में ही यह कर्मयोगी अपना पार्थिव शरीर छोड़कर परमात्मा में लीन हो गये।

वर्ष 1963 में उन्हें देश के सर्वोच्च नागरिक सम्मान "भारत रत्न" से विभूषित किया गया, जिसके वह वास्तव में पात्र थे। आने वाले समय में उनके पदचिन्हों पर चलते हुए राष्ट्र उनका सदा ऋणी रहेगा।

भाग तीन
उनके विचार

(संविधान सभा/संसद में डा० राजेन्द्र प्रसाद
द्वारा दिए गए कुछ चुनिंदा भाषणों के उद्धरण)

22

संविधान सभा के सभापति के रूप में निर्वाचित होने पर*

बहनों और भाइयों मैं उम्मीद करता हूं आप मुझे माफ़ करेंगे और बुरा न मानेंगे, अगर मैं यह कहूं कि इस वक्त इस भार से मैं अपने को दबा हुआ महसूस कर रहा हूं, जो आपने मुझे इस ऊँचे पद पर चुन करके मेरे कन्धों पर डाला है। आपने मुझे इस पद पर चुनकर एक इतनी बड़ी इज्जत दी है, जो हिन्दुस्तान के किसी भी आदमी के लिए सबसे बड़ी इज्जत हो सकती है। अगर आप माफ करें तो मैं यह भी कहूंगा कि इस देश में जहां जाति-पाँति के इतने झगड़े फैले रहते हैं, आपने हमको चुनकर अपनी जाति से एक तरह बाहर कर दिया है और अपनी जात-पांत में बैठने से मुझे वंचित करके एक अलग दूसरी जगह, दूसरे किस्म की कुर्सी पर बैठने के लिए मजबूर किया है। सिर्फ इतना ही नहीं है कि आपने मुझे अपने से अलग हटा दिया है, बल्कि शायद आप में से हर एक यह भी उम्मीद रखेगा कि इस सभा के कार्यों में मैं कोई ऐसा काम न करूं जिससे यह बात जाहिर हो कि मैं किसी एक दल का आदमी हूं या किसी एक फिरके का आदमी हूं। आप यह आशा रखेंगे कि यहां जो कुछ मैं करूं वह आप में से हर एक के खिदमतगार की हैसियत से करूं, हर एक के सेवक के रूप में करूं। मेरी कोशिश भी यही होगी कि मैं इस पद को जो आपने मुझे दिया है, ऐसे तरीके से निबाहूं कि आज जिस तरह आपमें से बहुतेरे भाइयों ने और मेरी बड़ी बहन ने मुझे मुबारकबाद दिया है। इससे भी और ज्यादा खुशी आप उस दिन जाहिर करें जिस दिन मुझे यहां से हटना पड़े। मैं जानता हूं कि मेरे रास्ते में बड़ी कठिनाइयां हैं। बहुत मुश्किलें हैं। इस विधान-परिषद का काम बहुत मुश्किल है। इसके सामने तरह-तरह के सवाल दरपेश होंगे। ऐसी-ऐसी बातें आयेंगी जिनके बारे में फैसला करना किसी के लिये आसान नहीं होगा, मेरे लिये तो हरगिज़ आसान न होगा। मगर मुझे इस बात का पूरा भरोसा है कि हमें इस काम में हमेशा आपकी मदद मिलती रहेगी। आपने जिस उदारता और फैय्याजी के साथ मुझे चुनकर यहां बिठाया है, उसी उदारता और फैय्याजी के साथ मेरी मदद करते रहेंगे।

---

*संविधान सभा वाद-विवाद खण्ड I, 11 दिसम्बर, 1946.

मेरी विधान-परिषद का यह जलसा बड़े कठिन समय में हो रहा है। हम यह मानते हैं कि इस तरह की दिक्कतें, और-और विधान-परिषदों के सामने, जहां-जहां वह हुई हैं, रही हैं, वहां भी आपस में मतभेद रहे हैं और इन मतभेदों को जोरों के साथ विधान-परिषद के सामने पेश भी किया गया है। हम यह भी जानते हैं कि बहुत सी विधान-परिषदें लड़ाई-झगड़ा और खैरख्वी के बीच हुई हैं और उनकी बहुत सी कार्रवाइयां भी झगड़े और फसाद के बीच हुई हैं। मगर बावजूद इन दिक्कतों के इन परिषदों ने अपना काम पूरा किया और उस जमाने में जो इसके सदस्य हुआ करते थे उन्होंने हिम्मत, सद्भावना, फैय्याजी और रवादारी से एक दूसरे के विचारों को सामने रखते हुए आपस में मिलकर इस तरह के विधान तैयार किये हैं, जिन्हें उन देशों के सभी लोगों ने समय पाकर मंजूर किया है। आज बहुत दिनों के बीत जाने के बाद भी उन देशों के लोग इन विधानों को अपने लिए एक बड़ी कीमती चीज़ मानते हैं। कोई कारण नहीं कि हमारी यह विधान-परिषद भी बावजूद इन कठिनाइयों के जो हमारे सामने हैं, अपने काम को उसी खूबी के साथ, उसी सफलता के साथ अंजाम न दे। चाहिए हममें सच्चाई, चाहिए हममें एक दूसरे के ख्याल के लिए अपने दिल में इज्जत और हुरमत। चाहिए हमको वह ताकत कि हम दूसरे की बातों को सिर्फ समझ ही न सकें, बल्कि जहां तक हो सके उनके दिलों में घुस कर उनको खुद अनुभव कर सकें, महसूस कर सकें और इस तरह से काम कर सकें कि जिसमें कोई यह न समझे उसकी उपेक्षा की गयी या उसकी बातों पर ध्यान नहीं दिया गया। अगर ऐसा हो, अगर हममें स्वयं ऐसी शक्ति आ जाये तो मुझे इस बात का पूरा विश्वास है कि बावजूद इन कठिनाइयों के और सब मुश्किलों के हम अपने काम में पूरी तरह से कामयाब होकर रहेंगे।

मैं यह जानता हूँ कि इस परिषद की पैदाइश तरह-तरह के प्रतिबंधों के साथ हुई है। बहुत से प्रतिबंध तो ऐसे हैं कि मुमकिन है, उन्हें अपने कार्यवाही के सिलसिले में हमें याद भी रखना पड़े। मगर साथ ही मैं यह भी जानता हूँ कि इस विधान-परिषद को पूरा अधिकार, मुकम्मिल अख्तियार इस बात का है कि वह अपनी कार्रवाई जिस तरीके से चाहे करे। इसके अन्दर वह जो कुछ करना चाहे करे। किसी भी बाहरी ताकत को अख्तियार नहीं है कि इसकी कार्रवाई में वह कुछ भी हस्तक्षेप या दस्तन्दाजी कर सके। इतना ही नहीं, मैं यह भी मानता हूँ कि जो पाबन्दियां इसको जन्म के साथ मिली हैं उनको तोड़ देने और उनको खत्म कर देने का अख्तियार भी इस एसेम्बली को है। आपकी कोशिश यही होनी चाहिए कि हम इन बंधनों से बाहर निकलकर एक ऐसा विधान, एक ऐसा कायदा अपने देश के लिए तैयार करें, जिससे इस देश के हर एक स्त्री-पुरुष को यह मालूम हो जाय कि चाहे वह किसी भी मज़हब का क्यों न हो, किसी भी प्रान्त का क्यों न हो, किसी भी विचार का क्यों न हो, उसके सभी अधिकार सदा सब तरह से

सुरक्षित हैं। अगर हमारी एसेम्बली में इस तरह का प्रयत्न किया गया और उसमें हमें सफलता मिली, तो मैं यह भी मानता हूं कि संसार के इतिहास में यह एक इतना बड़ा काम होगा, जिसके मुकाबिले की दूसरी मिसालें कम मिल सकती हैं।

यह भी याद रखने की चीज है और हम जो यहां आज बैठे हुए हैं, इस बात को एक लहमे के लिए भी नहीं भूल सकते हैं कि आज इस जल्से के अन्दर बहुत सी कुर्सियां खाली पड़ी हैं। और चूँकि मुस्लिम लीग के हमारे भाई इस जल्से में आज शामिल नहीं हैं, हमारी जवाबदेही और हमारी जिम्मेदारी और भी बढ़ जाती है। हमको हर कदम पर यह सोचना होगा कि अगर वह यहां हाजिर होते तो वे क्या कहते, क्या सोचते और क्या करते। इन सब बातों पर ध्यान रखकर हमें सारी कार्रवाई को चलाना होगा। साथ ही हम यह भी उम्मीद रखेंगे कि वे जल्दी ही आकर इन कुर्सियों पर बैठेंगे और मुल्क को आजाद करने में तथा आज़ादी का कायदा तैयार करने में अपनी जगह लेंगे और सबके साथ मिलकर इसे आगे बढ़ायेंगे। पर अगर हमारी बदकिस्मती से यह जगह खाली रहे तो हमारा यह फर्ज होगा, हमारा यह काम होगा कि हम ऐसा विधान तैयार करें, जिसमें किसी को किसी तरह की शिकायत की गुंजाइश न रहे।

स्वराज हासिल करने की हमारी लड़ाई बहुत दिनों से चल रही है और आज यह असेम्बली, मैं समझता हूं कि तीन शक्तियों के कारण से पैदा हुई है। पहली चीज है, हमारे देश के लोगों की जानें जो कुर्बान हुई हैं। आज तक हमारे कितने ही स्त्रियों और पुरुषों ने अपनी जान देकर, अपने ऊपर हर तरह की मुसीबत और तकलीफ उठाकर, हर तरह का त्याग और तपस्या करके यह हालत पैदा की है और फिर इस एसेम्बली के पैदा करने में ब्रिटिश जाति का इतिहास, उनका अपना स्वार्थ और उनकी फैय्याजी सबने मिलकर मदद की है। उसके अलावा आदमियत रखने वाली दुनिया की कार्रवाइयां, दुनिया का वातावरण और दुनिया की उठती हुई शक्तियां इन्होंने भी इस विधान-परिषद् को पैदा करने में कम हिस्सा नहीं लिया है। ये तीनों शक्तियां हमारा काम होते-होते अपना काम भी करती रहेंगी और हो सकता है कि उनमें से कुछ एक तरफ खींचे और कुछ दूसरी तरफ खींचे। मगर मेरा विश्वास है कि अन्त में हम सफल होकर रहेंगे। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह हमें दूरदर्शिता दे, ताकि हम एक दूसरे के दिल को शुद्ध करें और मिल करके हिन्दुस्तान को आजाद कर सकें।

जिन भाइयों और बहनों ने मुझे मुबारिकबाद दिया है उनसे मैं क्या कहूं? मैं शर्म से नीचे गड़ा जाता था और महसूस करता था कि चन्द मिनटों के लिए अगर मैं यहां नहीं रहता तो बेहतर होता। खासकर मैं डा० सिन्हा का शुक्रिया अदा इसलिए करना चाहता हूं कि उस वक्त तक उन्होंने अपनी सदारत जारी रखी और मुझ पर यह भार नहीं डाला कि

मैं भाईयों से कहूं कि मेरी तारीफ करें। मैं आप सबको दिल से धन्यवाद देता हूं और यह विश्वास दिलाना चाहता हूं कि आइन्दा की कार्रवाई में जो कुछ शक्ति ईश्वर ने मुझे दी है और जो कुछ थोड़ी बुद्धि मुझे मिली है और जो कुछ संसार का थोड़ा-बहुत तर्जुबा मुझे हासिल हुआ है, वह सब आपकी सेवा में अर्पित रहेगा। मैं आशा करता हूं कि आप अपनी ओर से जो कुछ मदद हमें दे सकते हैं, देते रहेंगे।

23

स्वाधीनता की पावन बेला*

हमारे इतिहास के इस अहम् मौके पर जब वर्षों के संघर्ष और जद्दोजहद के बाद हम अपने देश के शासन की बागडोर अपने हाथों में लेने जा रहे हैं, हमें उस परम पिता परमात्मा को याद करना चाहिये जो मनुष्यों और देशों के भाग्य को बनाता है और हम उन अनेकानेक, ज्ञात और अज्ञात, जाने और अनजाने पुरुषों और स्त्रियों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं जिन्होंने इस दिन की प्राप्ति के लिये अपने प्राण न्यौछावर कर दिये, हंसते-हंसते फांसी की तख्तियों पर चढ़ गये, गोलियों के शिकार बन गये, जिन्होंने जेलखानों में और कालापानी के टापू में घुल-घुल कर अपने जीवन का उत्सर्ग किया, जिन्होंने बिना संकोच माता-पिता, स्त्री-संतान, भाई-बहिन यहां तक कि देश को भी छोड़ दिया और धनजन सबका बलिदान कर दिया। आज उनकी तपस्या और त्याग का ही फल है कि हम इस दिन को देख रहे हैं।

हम अपनी श्रद्धा और भक्ति का उपहार महात्मा गांधी को भी भेंट करें। तीस वर्षों से वह हमारे पथ-प्रदर्शक और एकमात्र आशा और उत्साह की ज्योति बने रहे हैं। हमारी संस्कृति और जीवन के उस मर्म का वह प्रतीक हैं जिसने हमको इतिहास के आफतों और मुसीबतों में भी जिन्दा रखा। निराशा और मुसीबत के अंधेरे कुएं से हमको उन्होंने खींच निकाला और हमारे दिलों में ऐसी जिन्दगी फूंकी कि हम में अपने जन्म-सिद्ध अधिकार (स्वराज्य) के लिये दावा पेश करने की हिम्मत और ताकत आयी और उन्होंने हमारे हाथों में सत्य और अहिंसा का अचूक अस्त्र दिया जिसके जरिये बिना हथियार उठाये स्वराज्य का अनमोल रत्न इतना कम दाम में, इतने बड़े देश के लिये और यहां के करोड़ों आदमियों के लिये हमने हासिल कर लिया। हमारे जैसे कमजोर लोगों को भी उन्होंने बड़ी चतुराई के साथ, अचल संकल्प के साथ और देश के लोगों में, अपने अस्त्र में और सबसे अधिक ईश्वर में, अटल विश्वास के साथ आगे बढ़ाया। हमारा कर्तव्य है कि हम सच्चे और अटल बने रहें। मैं आशा करता हूं कि अपनी विजय की घड़ी में हिन्दुस्तान

*संविधान सभा वाद-विवाद (खंड V); 14 अगस्त, 1947

उस अस्त्र को नहीं छोड़ेगा और उसके मूल्य को कम करके न आंकेगा जिसने उसे निराशा के गर्त से निकाल कर ऊपर उठाया और जिसने अपने शक्ति और उपयोगिता को भी प्रमाणित कर दिया है। संसार के भविष्य के निर्माण में जब लड़ाई से दुनिया के लोग ऊब गये और घबराये हुये हैं, उस अस्त्र को बड़ा काम करना है। लेकिन ये बड़ा काम हिन्दुस्तान दूर से दूसरों की नकल करके नहीं पूरा कर सकता है और न हथियारों को जमा करने और ऐसे अस्त्रों के बनाने में, जो ज्यादा से ज्यादा बरबादी कम से कम समय में कर सकते हैं, दूसरों से मुकाबला करके वह पूरा कर सकता है। आज इस देश को मौका मिला है और हम आशा करते हैं कि इसमें उतनी हिम्मत और शक्ति होगी कि वह संसार के सामने लड़ाई, मृत्यु और बरबादी से बचाने का अपना अस्त्र पेश कर सकेगा। संसार को इसकी जरूरत है। अगर वह लड़खड़ाता हुआ बर्बरता के युग में जहां से निकल आने का वह दावा करता है, फिर पहुंचना नहीं चाहता है तो वह इसका स्वागत भी करेगा।

दुनिया के सभी देशों को हम विश्वास दिलाना चाहते हैं कि हम अपने इतिहास के अनुसार सबके साथ दोस्ती, मित्रता का बर्ताव रखना चाहते हैं। किसी से हमारा कोई द्वेष नहीं, हमें किसी के साथ घात नहीं करना है और हम उम्मीद करते हैं कि हमारे साथ कोई ऐसा नहीं करेगा। हमारी एक ही आशा और अभिलाषा है और वह यह कि हम सबके लिये स्वतंत्रता और मानव जाति में शांति और सुख स्थापित करने में मददगार हो सकें।

जिस देश को ईश्वर और प्रकृति ने एक बनाया था, उसके आज दो टुकड़े हो गये हैं। नज़दीक के लोगों से बिछुड़ना तो दुखदाई तो होता ही है। बिछुड़ना हमेशा दुखदाई होता है। ऐसे लोगों से भी बिछुड़ना जिनके साथ थोड़े ही दिनों का सम्बंध हो, दुखदायी होता है, इसलिये मुझे यह कहना पड़ता है कि इस बंटवारे से हमारे दिल में दुख है। मगर इसके बावजूद हम आपकी तरफ से और अपनी ओर से पाकिस्तान के लोगों को अपनी नेकनीयति और उनकी तरक्की और कामयाबी के लिये अपनी सद्इच्छा सद्भावना प्रकट करना चाहते हैं। जिस शासन के काम में आज वे लग रहे हैं, उसमें हम उनकी पूरी कामयाबी चाहते हैं। ऐसे लोगों को जो बंटवारे से दुखी हैं और पाकिस्तान में रह गये हैं, हम हपनी शुभ-कामना भेजते हैं। उनको घबराना नहीं चाहिये और अपने घरबार, धर्म और संस्कृति को बचाय रखना चाहिये और हिम्मत और सहिष्णुता से काम लेना चाहिये। उनके ऐसा भय करने का कोई कारण नहीं कि उनके साथ ठीक और न्यायपूर्ण बर्ताव नहीं होगा और उनकी रक्षा नहीं होगी। जो आश्वासन दिया है उसको मान लेना चाहिये और जहां पर आज वे रह रहे हैं वहां अपनी वफादारी और सच्चाई से अपनी मुनासिब जगह, उन्हें हासिल करनी चाहिये।

हिन्दुस्तान में जो अल्पसंख्यक लोग हैं उनको हम आश्वासन देना चाहते हैं कि उनके

साथ ठीक और इन्साफ का बर्ताव होगा और उनके और दूसरों के बीच कोई फर्क नहीं किया जायेगा। उनके धर्म और संस्कृति और उनकी भाषा सुरक्षित रहेगी और नागरिकता के सभी अख्तियार और अधिकार उनको मिलेंगे। उनसे आशा की जायगी कि जिस देश में वे रहते हैं उसकी तरफ और उस देश के विधान की तरफ, वे वफादार बने रहे। सभी लोगों को हम यह आश्वासन देना चाहते हैं कि हमारी अथक कोशिश होगी कि देश से गरीबी और दीनता, भूख और बीमारी दूर हो जाये, मनुष्य मनुष्य के बीच से भेदभाव उठ जाये, कोई मनुष्य दूसरे का शोषण न करे और सबके लिये सुन्दर समुचित जीवन बिताने का साधन जुटा दिया जाय। हम एक बड़े काम में लगने जा रहे हैं। हम आशा करते हैं कि देश के सभी लोग हमारे इस काम में मदद और सहयोग देंगे और संसार के दूसरे देश अपनी सहानुभूति और सहायता देंगे। हम आशा करते हैं कि हम अपने को इस योग्य साबित कर सकेंगे।

24

नवोदित राष्ट्र को आह्वान*

इस शुभ घड़ी में जब हम स्वतंत्रता के अधिकारों को, आजादी के अख्तियारों को अपने हाथों में लेने जा रहे हैं, हमारा पहला कर्तव्य है कि हम उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं जिन्होंने इस दिन के लाने के लिये अपनी जिन्दगी लगा दी और तरह-तरह के कष्ट सहे और मुसीबतें झेलीं।

इस ऐतिहासिक अवसर पर (इस तवारीखी मौके पर) हम अपने राष्ट्र के निर्माता महात्मा गांधी को भी अपनी भक्ति अर्पित करते हैं जिन्होंने इन कठिन दिनों में हमारी रहनुमाई की है और हमें अनुप्राणित किया है, और आज अपनी वृद्धावस्था में भी जो अधूरा रह गया है उसे पूरा करने में अपनी अद्भुत शक्ति लगा रहे हैं।

हमने आज जो स्वतंत्रता पायी है वह हमारे तप और त्याग और कुर्बानी का फल है। साथ ही हमको यह भी मानना चाहिये कि उसके लाने में संसार और दूसरे राष्ट्रों की स्थिति भी सहायक और मददगार रही है। हमें यह भी मानना चाहिये कि ब्रिटिश जाति ने भी अपने इतिहास और संस्कृति के अनुसार अपने तमद्दुन और तवारीख के मुताबिक अपने उन उदारचेता और दूरदर्शी नेताओं और राजनीतिज्ञों-अपने दूरअन्देश और फय्याज खयाल वाले लीडरों—के स्वप्नों और वचनों को पूरा किया है, जिन्होंने इस दिन की भविष्यवाणी की थी और समय-समय पर इसे लाने की प्रतिज्ञा की थी। आज हमें इस बात की खुशी है कि उस जाति के प्रतिनिधिस्वरूप नुमाइन्दे की तरह हमारे बीच में वाइकाउंट माउंटबैटन आफ बर्मा और उनकी धर्मपत्नी मौजूद हैं, जिन्होंने अंतिम दिनों में इतनी मेहनत और उत्साह के साथ काम किया है। आज से हिन्दुस्तान पर ब्रिटिश प्रभुत्व खत्म होता है और हमारा ब्रिटेन के साथ ऐसा संबंध कायम होता है जो बराबरी का है और जिससे दोनों देशों की भलाई है और दोनों को लाभ हो सकता है।

हम जानते हैं कि देश में इस स्वतंत्रता प्राप्ति से जो उल्लास, जो खुशी और जो

*संविधान सभा वाद-विवाद (खंड V); 15 अगस्त, 1947.

उत्साह होना चाहिये वह इस का बटवारा हो जाने के कारण किरकिरा हो गया है। हमारा काम है कि जो हमारे साथ रह गया है उसको हम ऐसा सुन्दर, सुव्यवस्थित, सुसंगठित और समुन्नत करें कि बिछुड़े हुये प्रदेशों को फिर हम से मिल जाना बहुत अधिक लाभप्रद मालूम हो। हम आशा करते हैं कि हम अपने व्यवहार से, अपनी कार्यदक्षता से उनको फिर अपनी ओर वापस ला सकेंगे। यह जोर जबर्दस्ती से नहीं हो सकता। जोर जबर्दस्ती का कहीं भी अच्छा अंत नहीं होता। वह एक चक्र है जिसका आदि-अंत कहीं नहीं है। हम यह उद्देश्य अपने सद्व्यवहार से पूरा कर सकते हैं। ऐसे लोग जो इस बंटवारे को पसंद नहीं करते, पर जिनके घरबार उस पार में पड़ गये हैं, उनसे अनुरोध है कि वे वहां ही डटे रहें और जिस हिम्मत और उत्साह से उन्होंने स्वराज्य-प्राप्ति में काम किया है उसी से अब भी काम लेते रहें। जो नया शासन और नई गवर्नमेंट वहां कायम हो रही है। उसको हम अपना आशीर्वाद और शुभ-कामनायें भेजते हैं और चाहते हैं कि वह अपने उस बड़े काम में, जो आज वह शुरू करने जा रही है, पूरी तरह कामयाब होवे। हमारा पूरा विश्वास है कि वहां के सभी रहने वालों के साथ बिना कोई फर्क किये इंसाफ और न्याय का बर्ताव करेगी। हमारी सहानुभूति तो वहां के सब लोगों के साथ है ही। हम चाहते हैं कि वह अपनी वफादारी और अपनी हिम्मत से अपनी जगह वहां हासिल और कायम कर लेवें।

इस दिन हमें खुशियां मनानी हैं, मगर उससे भी अधिक अपनी जिम्मेदारियों को समझना है। हम गुजिश्ता को भूलें और आइन्दा की ओर अपनी आंखें फेरें और ऐसा हिन्दुस्तान बनावें जिसका हम सपना देखते रहे। हमारा किसी भी विदेश के साथ कोई झगड़ा नहीं है और हम उम्मीद रखते हैं कि कोई दूसरा देश हमारे साथ झगड़ा मोल नहीं लेगा। हमारा इतिहास बताता है और हमारी संस्कृति सिखाती है कि हम शांतिप्रिय हैं, और रहें। हमारा साम्राज्य, हमारी फतह दूसरे प्रकार की रही है। हमने दूसरों को जंज़ीरों से, चाहे वह लोहे की हों या सोने की भी क्यों न हों, कभी बांधने की कोशिश नहीं की। हमने दूसरों को अपने साथ लोहे की जंजीर से भी ज्यादा मजबूत मगर सुंदर और सुरक्षद रेशम के धागे से बांध रखा है और वह बंधन धर्म का है, संस्कृति का है और ज्ञान का है। हम अब भी उसी रास्ते पर चलते रहेंगे और हमारी एक ही इच्छा और अभिलाषा रहेगी। वह अभिलाषा यह होगी कि हम संसार में सुख और शांति कायम करने में मदद पहुंचा सकें और संसार के हाथों में सत्य और अहिंसा का वह अचूक हथियार दे सकें जिसने हमें आज आजादी तक पहुंचाया है। हमारी जिन्दगी और संस्कृति में कुछ ऐसा है जिसने हमें समय के थपेड़ों के बावजूद जिन्दा रहने की शक्ति दी है। अगर हम अपने आदर्शों को सामने रखे रहेंगे तो हम संसार की बड़ी सेवा कर पावेंगे।

आज से हम कानूनी तरीके से अपने भाग्य के विधाता बने हैं और इस देश को शांत, सुखी और समुन्नत बनाने का सारा भार हमारे ऊपर आ गया है। जो स्वराज्य हमने हासिल किया है वह खोखला रह जायेगा, अगर हमने देश में रहने वाले सभी वर्ग, जाति और धर्म वाले लोगों में यह विश्वास पैदा नहीं किया कि वह यहां सुरक्षित हैं, उनकी उन्नति और तरक्की के रास्ते में कोई बाधा नहीं डाल सकता है, उनको धर्म और धर्माचार की पूरी आजादी है, उनकी भाषा और संस्कृति, जबान और कल्चर, पर कोई आघात नहीं पहुंचा सकता है, आदिम जातियों और दूसरे पिछड़े हुये लोगों की उन्नति के लिये उस समय तक विशेष आयोजन और प्रयत्न होता रहेगा—खास मदद होती रहेगी— जब तक वह सबों की बराबरी में न आ जायें, अछूतपन को सपने के संकट की तरह हम भूल गये, मजदूर और किसान और दूसरे हर प्रकार के श्रमजीवी मेहनत करने वाले किसी प्रकार से शोषित नहीं होने पावेंगे, सभी लोगों को अपने विचारों को प्रकट और प्रचारित करने का, अपने खयालों की इशायत का मौका और अधिकार है। जब इस देश में खाने के लिये पूरा अन्न होने लगेगा और फिर दूध की नदियां बहने लगेंगी। जब हमारे जवान लोग खेतों और कारखानों में हंसते-हंसते काम किया करेंगे, जब हर झोंपड़े और पल्ली में घरेलू धंधों के साथ-साथ हमारी युवतियां अपने मीठे स्वर अलापती रहेंगी। जब इस देश के सुखी घरों पर और हंसते हुये चेहरों पर सूरज और चन्द्रमा अपनी किरणें छिटकायेंगे तभी हमारा स्वराज्य सफलीभूत होगा।

काम बहुत बड़ा है, बहुत मुश्किल है और सब लोगों की सहायता और सहयोग के बिना यह पूरा हो नहीं सकता। देश के सभी लोगों से अनुरोध है कि वह इसमें पूरी सहायता करें। हम जानते हैं कि आज देश के अंदर कई विचार-धारायें चल रही हैं। कितने ही दल हैं जो संगठित रूप से अपने विचारों का प्रचार करना और देश द्वारा उनको मंजूर कराकर उनके ही ढांचे में विधान और हमारे सामाजिक जीवन को ढालना चाहते हैं। जहां एक ओर इन सबको अपने विचारों के प्रचार का पूरा अधिकार होना चाहिए, दूसरी ओर देश को यह अधिकार है कि उनसे वह देश के प्रति सच्ची वफादारी का दावा करें और उनका फर्ज है कि वह वफादारी वे दें। हम सबको यह मानना होगा कि इस समय सबसे अधिक जरूरत निर्माण और रचना की है, संघर्ष की नहीं, ठोस तामीरी काम की है बहस की नहीं। हम आशा करते हैं कि सभी मिल-जुलकर इस बड़े काम को पूरा करेंगे। हम चाहते हैं कि हमारे किसान ज्यादा से ज्यादा अन्न पैदा करें, कारखानों के मजदूर ज्यादा से ज्यादा माल पैदा करें और व्यवसायी और व्यापारी लोग अपनी बुद्धि और चातुरी जनता जर्नादन की सेवा में लगावें, और सबके लिये सुन्दर, व्यवस्थित और सुखी जीवन, जिन्दगी का साधन, सामान जुटा देवें और सबके लिये आत्मोन्नति (तरक्की) का रास्ता साफ कर दें।

जनता और जनता के प्रतिनिधियों के अलावा एक और वर्ग है जिसकी जिम्मेदारी भी कम नहीं है। वह है हमारे देश की सेना और सरकारी मुलाजिमों की। जो लोग आज तक हम पर और जन साधारण पर हुकूमत करते रहे हैं उनको अब से सेवक और खादिम का जामा पहनना होगा। हमारी फौज ने अपनी बहादुरी और युद्ध कौशल का सबूत दुनिया के अनेकों रण क्षेत्रों में दिया है। आज तक वह दूसरे प्रकार से संचालित हो रही थी। आज वह राष्ट्रीय सेना, कौमी फौज बन गयी जिसके ऊपर देश को सुरक्षित, महफूज रखने का भार होगा और जो जनता को दबाने के लिये नहीं उठाने के लिये, उन्नत करने के लिये, रक्खी जायेगी। अब हमारे देश के रहने वालों के लिये फौज के किसी विभाग में, चाहे वह जमीन, पानी या आसमान में काम करता हो, कोई भी ऐसी जगह नहीं जो न मिल सके। इतना ही नहीं, उनको जल्द से जल्द ऊंचे से ऊंचे ओहदे तक पहुंचकर काम संभालना है। उसी तरह जो सरकारी मुलाजिम हैं उनको भी अब अपने को देश का शासक न मानकर देश का सेवक मानना होगा। जिस तरह स्वतंत्र देश के सरकारी मुलाजिम जनता की सेवा करते हैं उसी तरह इनको भी सेवा करनी होगी। अपनी सारी योग्यता काबलियत और शक्ति का रुख दूसरी तरफ उनको फेरना पड़ेगा और जहां वह आज तक रोब-दाब से काम लिया करते थे वहां उन्हें अब केवल सेवा-भावना से काम करना होगा, जैसा स्वतंत्र देशों के सरकारी मुलाजिम किया करते हैं। जनता और गवर्नमेण्ट की तरफ से उनको भरोसा होना चाहिये कि उनके रहन-सहन के लिये देश की परिस्थिति के अनुकूल, यहां की हालत के मुताबिक जहां उनको रहना है पर्याप्त प्रबन्ध, काफी इन्तजाम किया जायेगा।

हम उन देशी रियासतों का स्वागत करते हैं जो हमारे संघ में शामिल हो गई हैं और रजवाड़ों की जनता के प्रति हम अपनी सद्भावना प्रकट करना चाहते हैं और उनके नरेशों और रईसों को हम विश्वास दिलाना चाहते हैं कि उनके प्रति हमारा कोई द्वेष नहीं है, उनको चाहिए कि वह इंग्लैंड के राजा का अनुकरण करें और प्रजातंत्र का नियंत्रित अधिकार ही अपने हाथों में रखे। उनको भूलना नहीं चाहिये कि यूरोप में जहां दूसरे देशों के राज सिंहासन चकनाचूर हो गये, अंग्रेजी राजा की सत्ता दो बड़ी लड़ाइयों के बाद भी आज पहले जैसी ज्यों की त्यों खड़ी है।

विदेशों में प्रवासी भारतवासियों को, चाहे वह अंग्रेजी उपनिवेशों में बसे हैं या और जगहों में, हम विश्वास दिलाना चाहते हैं कि उनके सुख-दुख में हमारी गहरी दिलचस्पी है और उनके लिये दिलों में सद्भावना है।

देश में जो अल्पसंख्यक लोग हैं उनको हम विश्वास दिलाना चाहते हैं कि उनके साथ न्याय और इंसाफ का बर्ताव होगा और उनके अधिकार (हक) सुरक्षित (महफूज) रहेंगे।

विधान बनाने का काम जो बाकी है उसको जल्द से जल्द पूरा करना चाहिये ताकि हम अपने बनाये विधान के मातहत रहने लग जायें और काम शुरू कर दें। इस विधान को बनाने में सबकी सहायता आवश्यक है। ऐसा सुन्दर उसे बनाना है जिसमें जनमत प्रधान रहे और सेवा और जनता की उन्नति उद्देश्य रहे, और सबको इस बात का विश्वास रहे कि वह अपने धर्म, संस्कृति, भाषा, विचार सबको सुरक्षित रख सकते हैं और उनकी तरक्की के रास्ते में किसी किस्म की बाधा नहीं हो सकती। इसको बनाने में विदेशों के अनुभव, तजुरबा और विधान (कायदे) से हम लाभ उठावेंगे। अपनी संस्कृति और परिस्थिति से जो कुछ मिल सकता है उसे लेंगे और जहां जरूरत होगी आज की प्रचलित सीमाओं को, चाहे वह शासन-पद्धति की हो अथवा सूबाओं की, लांघकर नयी सीमायें बनायेंगे। हमारा उद्देश्य है कि हम ऐसा विधान बनायें जिसमें जनमत की प्रधानता रहे और जिसमें व्यक्ति को केवल स्वतंत्रता (आजादी) ही न मिले, पर वह स्वतंत्रता (आजादी) लोकहित (खलक की बहबूदी) का साधन (जरिया) बन जाये।

आज तक इस देश के लोग देश को आजाद करने के लिये संकल्प किया करते थे और इस कार्यसिद्धि के लिये त्याग और बलिदान की प्रतिज्ञा किया करते थे। आज दूसरे प्रकार के संकल्प और प्रतिज्ञा का दिन आया है। हम में से कोई ऐसा न समझे कि त्याग का दिन बीत चुका और भोग का समय आ गया। जो देश को उन्नत करने का महान् कार्य हमारे सामने है उसमें आज तक हमने जितनी त्याग की भावना दिखलाई है उससे कहीं अधिक दृढ़ प्रतिज्ञा के साथ तत्परता, त्याग और कार्य-पटुता दिखलाने का समय है। इसलिये एक बार फिर भी भारत की सेवा में लग जाने का संकल्प करना है और ईश्वर से प्रार्थना करनी है कि जिस तरह से उसने हमारे पहले के संकल्प को पूरा किया उसी तरह से वह इसको भी पूरा करे!

25

महात्मा गान्धी के चित्र का अनावरण*

माननीय सदस्यगण, मुझे विश्वास है कि श्री पट्टानी ने इस सभा को जो उपहार दिया है, उसके लिये उनके प्रति मैं इस सभा के सभी सदस्यों की कृतज्ञता प्रकट कर रहा हूं। स्वर्गीय सर प्रभाशंकर पट्टानी ने एक सुखद् भावना से प्रेरित होकर ही इस सुन्दर चित्र को इतने वर्षों तक इस उद्देश्य से सुरक्षित रखा कि वह भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति की शुभ घड़ी में राष्ट्र को भेंट किया जाये और यह हमारे लिए एक सुअवसर है कि अपने जीवन काल में हम इस घड़ी में इस चित्र का उद्घाटन देख रहे हैं। कम से कम मेरे लिए यह धृष्टता ही होगी कि मैं महात्मा जी ने जो कार्य सम्पन्न किया है उसके संबंध में कुछ कहूं। क्योंकि मैं भी उन भाग्यशाली लोगों में से हूं जिन्हें उनके अधीन कई वर्षों तक सेवा कार्य में भाग लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वह हमारे बीच ऐसे समय में आए जबकि देश बड़ी कठिनाई में पड़ा हुआ था और उससे छुटकारा पाने के लिए सहायता का इच्छुक था कई प्रयत्नों के विफल होने पर हम लोग बहुत खिन्न थे। देश ने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए बहुत प्रयत्न किए थे और वह किसी ऐसी चीज की खोज में था जिससे उसे प्रेरणा प्राप्त हो और सबसे अधिक किसी ऐसे शस्त्र की खोज में था जिससे वह स्वतंत्रता प्राप्त कर सकता। महात्मा गांधी ने वह भावना जागृत की और लोगों के हाथों में वह शस्त्र दिया। यद्यपि हम उनकी आकांक्षाओं को सम्पूर्ण करने में समर्थ नहीं हुए हैं, परन्तु उनकी प्रेरणा से तथा उनके पथप्रदर्शन से हम कम से कम इस स्वतंत्रता को तो प्राप्त कर ही चुके हैं जिसकी हम कई वर्षों से आशा लगाए बैठे थे।

राजनीति ही नहीं बल्कि मानव जीवन का कोई भी ऐसा अंग न होगा जिसे महात्मा गांधी ने अपने स्पर्श से उज्ज्वल न किया हो। चाहे हम किसी गांव की बस्ती में जाएं या शहर की बस्ती में, चाहे हम किसी करोड़पति के प्रसाद में जाएं या महाराजा के महल में जाएं, शायद ही कोई ऐसी जगह होगी जहां उनका प्रभाव पर्याप्त रूप से न पड़ा हो। हमारे जीवन में भी उनका इतना प्रभाव पड़ा है कि हम उसका पूर्णतया वर्णन करने में समर्थ नहीं हैं। महात्मा जी की महानता इसमें है कि जैसे-जैसे समय बीतता जाएगा उन्होंने

*संविधान सभा, वाद-विवाद (खण्ड V), 28 अगस्त, 1947.

3660LS—19

हमारे जीवन में और संसार के इतिहास में जो प्रभाव डाला है उसका अधिक अनुभव होने लगेगा। ऐसे पुरुषों का जन्म हमेशा साधारण रूप से नहीं होता। संसार के इतिहास में उसकी धारा बदलने के लिए ही वह कभी एक बार आते हैं। यह हमारा सौभाग्य है कि आज हमें महात्मा गांधी के अधीन सेवा कार्य में भाग लेने का अवसर प्राप्त हुआ है। उन्होंने मानव इतिहास की धारा को बदल दिया है और अपने जीवन काल में ही अपने आरम्भ किए हुए कार्य को सम्पन्न होते हुए देख सके हैं। और यह देख रहे हैं कि उससे दिन प्रतिदिन बहुमूल्य लाभ हो रहा है। उन्होंने हमारे जीवन को इतने प्रकार से चमत्कारपूर्ण बना दिया है कि इस संक्षिप्त भाषण में उसे वर्णन करना सम्भव नहीं है। हम सभी जानते हैं कि किस प्रकार उन्होंने मिट्टी के पुतलों को हीरों में परिणत किया और साधारण व्यक्तित्व के पुरुषों में महान कार्यक्षमता, महान संस्कृति और महान प्रयत्नशीलता का प्रादुर्भाव किया। उन्होंने इतना ही नहीं किया बल्कि व्यक्ति विशेष के अतिरिक्त सारे राष्ट्र में स्वतंत्रता की भावना का जागरण किया और वास्तव में एक प्रकार से उन्हीं के कार्य से वह प्रतिफलित भी हो गई। उन्हीं के प्रति आज अपनी श्रद्धांजलि देने के लिए हम लोग सम्मिलित हुए हैं। यह चित्र जो हमें उपहार रूप से दिया गया है इस सभा में उपस्थित प्रत्येक सदस्य को इसकी याद दिलाता रहेगा कि उन्होंने हमारे देश के व संसार के इतिहास में एक संकटापन्न तथा महत्वपूर्ण काल में कितना महान कार्य किया। वह सदस्यों को इसका भी स्मरण कराएगा कि इस देश के प्रति उनको किस महान कर्तव्य का पालन करना है। यह हम सबको इस महान परम्परा का स्मरण कराएगा जिसके कि वह प्रतिनिधि हैं और जो हम सभी को अपने पूर्वजों से प्राप्त हुई है और सबसे अधिक यह हमको इसका स्मरण कराएगा कि जो स्वतंत्रता हमने प्राप्त की है उसका मनुष्य मात्र के हितार्थ किस प्रकार उपयोग किया जाए। हम यह आशा करते हैं कि इस चित्र से इस उद्देश्य की पूर्ति होगी और हम उस महान महात्मा के सच्चे अनुयायी होंगे, जिन्होंने हमें इस लक्ष्य तक पहुंचाया है।

26

संविधान के मसौदे पर विचार करने की प्रक्रिया*

कार्यावलि में दिये हुये दूसरे विषय को लेने के पूर्व मैं सभा को वह प्रणाली बता देना चाहता हूं जिसका इस विधान के मसौदे पर विचार करते समय अनुसरण करने का मेरा विचार है। सदस्यों को ज्ञात है कि विधान का मसौदा उस मसौदा-समिति ने बनाया है जिसको इस सभा ने नियुक्त किया था और आठ मास या इससे भी अधिक काल पूर्व सदस्यों को मसौदा भेज दिया गया था। सदस्यों से निवेदन किया गया था कि वे जो सुझाव अथवा संशोधन रखना चाहते हैं उनको भेजें। केवल सदस्यों से ही नहीं वरन् जनता, सार्वजनिक संस्थाओं, प्रान्तीय सरकार इत्यादियों से सुझाव तथा संशोधन बहुत बड़ी संख्या में आ चुके हैं। मसौदा-समिति ने उन समस्त सुझावों तथा संशोधनों पर विचार किया है और सदस्यों अथवा जनता के सुझावों को ध्यान में रखते हुये अनेकों अनुच्छेदों का फिर से मसौदा बनाया है। अतः इस समय हमारे समक्ष केवल मूल मसौदा ही नहीं है, बल्कि प्राप्त हुये सुझावों को ध्यान में रखते हुये अनेकों अनुच्छेदों का समिति द्वारा फिर से तैयार किया गया मसौदा भी है। ये सदस्यों को भेजे जा चुके हैं। अब जो मैं करना चाहता हूं वह यह है कि मसौदे पर विचार करने वाले प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने के बाद हम प्रत्येक अनुच्छेद पर विचार करें और मैं उन सब संशोधनों को, जिनकी सूचना दी जा चुकी है, विचार के लिये रखूं। ये सब सूचनायें निर्धारित समय के अन्तर्गत दी गई समझी जायेंगी जिससे कि जिन सदस्यों ने संशोधन की सूचना दे दी है उनको मसौदे पर विचार करने वाले प्रस्ताव को स्वीकार किये जाने के बाद, फिर सूचना देने की आवश्यकता न हो। मैं सदस्यों को दो दिन और दूंगा जिसमें कि वे अनुच्छेदों पर ऐसे और संशोधनों की सूचना दे दें जिन्हें वह पेश करना चाहते हों। इसके पश्चात्, मेरा विचार है कि कोई दूसरे संशोधन स्वीकार न किये जायें जब तक कि वे इस प्रकार के न हों जिनका स्वीकार किया जाना आवश्यक हो। यह सत्य है कि कुछ संशोधन समनुवर्ती संशोधन होंगे और उनको स्वीकार करना पड़ेगा। यह भी सम्भव है कि कुछ दूसरे संशोधन ऐसे हों कि सभा को किन्हीं अन्य कारणों से उन पर विचार करना आवश्यक प्रतीत हो।

---

*संविधान सभा, वाद-विवाद (खण्ड VII), 14 नवम्बर, 1948.

मैं उन संशोधनों पर वाद-विवाद को टाल नहीं दूंगा, मैं उन सब को लूंगा। पर मेरा सदस्यों से निवेदन है कि सामान्यतया उन्हीं संशोधनों को पर्याप्त समझें जिनकी सूचना हमें प्राप्त हो चुकी है और मेरे विचार में जिनकी संख्या लगभग एक हजार है। इस प्रकार हम समय की भी बचत कर सकेंगे और कार्य-कौशल में भी कोई त्रुटि न होगी और न प्रस्तावित मसौदे के समस्त अनुच्छेदों पर स्वतन्त्र पर्यालोचन में किसी प्रकार की रुकावट होगी। मेरा ऐसा करने का विचार है किन्तु यह भी सत्य है कि यह सब तभी होगा जब कि इस बारे में सभा कोई अन्य निर्देश न दे। सदस्यों को मसौदे पर विचार करने के लिये बहुत समय मिल चुका है और यह कि उन्होंने मसौदे पर बारीकी से विचार किया है इसी बात से प्रकट है कि हमें 1000 संशोधनों की सूचना मिल चुकी है। यदि दैवयोग से किसी संशोधन की उपेक्षा हो गई हो और यदि कोई सदस्य यह आवश्यक समझता हो कि उस संशोधन पर विचार किया जाये तो उस संशोधन को ले लेंगे। परन्तु सामान्यतया मैं उक्त अवधि के पश्चात् और संशोधनों को नहीं लूंगा। मेरा विचार यह है कि हम डा० अम्बेडकर के प्रस्ताव पर जिसे वे उपस्थित करेंगे दो दिन तक यानी आज और कल वाद-विवाद करें। और दोनों वक्त अर्थात् प्रातःकाल तथा तीसरे पहर बैठें। शनिवार और रविवार का समय सदस्यों को संशोधनों की सूचना देने के लिये दे दें। जिन संशोधनों की सूचना आ चुकी है तथा जिनकी रविवार को सायंकाल के पांच बजे तक आ गई होगी उन सब को क्रम-बद्ध किया जायेगा, छपवाया जायेगा और सोमवार को सदस्यों को दे दिया जायेगा। मंगलवार से हम संशोधनों पर वाद-विवाद आरम्भ करेंगे। यह है वह कार्यक्रम जिसकी रूपरेखा मैंने अपने मन में बनाई है।

एक और बात है जिसे मैं सदस्यों को बता देना ठीक समझता हूं। एक प्रस्ताव तथा उसी प्रकार के एक संशोधन की सूचना हमारे पास आ चुकी है। इन दोनों का आशय है कि यह सभा विधान पर वाद-विवाद पूर्णतया स्थगित कर दे और वयस्क मताधिकार के आधार पर तथा असाम्प्रदायिक रीति से नई सभा का चुनाव होना चाहिये और उसी सभा को विधान निर्माण के कार्य को पूरा करना चाहिये। मैं यह नहीं कह सकता कि विगत दो वर्षों से जो कुछ हम करते चले आ रहे हैं उस सब को मेटने के लिये क्या यह सभा तैयार होगी, विशेषकर जब कि मसौदे में एक ऐसा अनुच्छेद है जिसके अनुसार इस विधान के प्रवर्तन के पश्चात् कुछ वर्षों तक इस विधान का संशोधन बहुत कुछ सरल रीति से किया जा सकेगा।

यदि कोई कमी है अथवा कहीं संशोधन की आवश्यकता है तो इस प्रावधान के अनुसार जिसका कि मैंने अभी उल्लेख किया है, उसकी पूर्ति सरलता से की जा सकती है। अतः यह आवश्यक नहीं है कि जब तक हम वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव न कर लें तब तक समूचे विधान पर विचार करना स्थगित रखें। इस बात में पहली

कठिनाई तो यही होगी कि वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचक कैसे बनाये जायें जब कि ऐसा करने के लिये हमें कोई विधि प्राधिकृत नहीं करती। यह ठीक है कि विधान के इस मसौदे में हमने वयस्क मताधिकार को कार्य रूप में लाने की बात का समावेश किया है। किन्तु यह कार्य रूप में तो तभी आवेगी जब कि यह विधान स्वीकार कर लिया गया हो। अतः यदि आप वयस्क मताधिकार रखना चाहते हैं और संशोधनों के मसौदे तैयार करने के लिये दूसरी विधान परिषद् चाहते हैं तो हम को एक नई विधि बनानी होगी। मैं नहीं जानता कि जिस विधि के अनुसार विधान-परिषद् का निर्माण होगा उस विधि को बनाने का अधिकार किस सभा का होगा। अतः मेरे विचार से यही उत्तम है कि जिस मसौदे को इतना परिश्रम कर के हमने तैयार किया है और जिस पर मसौदा समिति तथा इस सभा के सदस्यों ने बड़ी सावधानी से तथा ध्यानपूर्वक विचार किया है उसी पर हम विचार करें।

यह कार्यक्रम है जिसका मैं अनुसरण करना चाहता हूं और यदि कोई सदस्य अन्य सुझाव रखना चाहता हो तो सहर्ष मैं उस पर विचार करूंगा।

केवल एक बात और है जिसे मैं आपको बता दूं। वह यह है कि मैं वाद-विवाद में कमी नहीं करना चाहता। प्रत्येक अनुच्छेद तथा वैधानिक प्रश्न के प्रत्येक पहलू पर विचार करने के लिये मैं मदस्यों को पूरा-पूरा अवसर देना चाहता हूं, क्योंकि यही तो हमारा अपना विधान होगा। किन्तु इसके साथ ही मैं यह भी नहीं चाहता कि किसी सदस्य द्वारा उपस्थित किये गये तर्कों को दुहरा कर अथवा पुरानी बातों को सभा के सामने पुनः विचार के लिये रख कर हम लोग इस विधान के पर्यालोचन में इतना समय लगा दें जितना कि नितान्त आवश्यक नहीं है। अतः यह ठीक न होगा कि जो निश्चय हम कर चुके हैं उन पर पुनः विचार करें। सदस्यों को यह विदित है कि पर्याप्त पर्यालोचन के पश्चात् हमने विधान के आधारभूत सिद्धान्तों को स्वीकार किया था और उन्हीं निश्चयों पर यह मसौदा कम से कम इसका अधिक भाग, आधृत है जिनको कि हमने इतने लम्बे पर्यालोचन के पश्चात् किया था। मैं यह विश्वास नहीं करता कि सदस्यगण उन निश्चयों को इतनी आसानी से ठुकरा देंगे और उन निश्चयों पर पुनः विचार करने का आग्रह करेंगे। हो सकता है कि कुछ ऐसे विषय हों जिन पर पुनः विचार करना आवश्यक हो परन्तु सामान्यतया हम अपने उन निर्णयों के आधार पर ही आगे बढ़ेंगे जो कि पहले कर लिये गये हैं और ऐसी ही बातों में सभा प्रथम बार निश्चय करेगी जिन पर कि पहिले कोई निश्चय नहीं किया गया है।

ऐसे कुछ विषय हैं जिन के बारे में सभा ने कोई निर्णय नहीं किया है। सभा ने कुछ समितियां नियुक्त की थीं। उन समितियों की रिपोर्टों पर इस सभा में विचार नहीं किया गया है। किन्तु मसौदा समिति ने इस मसौदे में वैकल्पिक प्रावधान रख दिये हैं एक प्रकार

के तो वे सुझाव हैं जो समिति के उन विचारों के द्योतक हैं जिन पर कि उसका अन्य समितियों से मतभेद था और दूसरे जो कि समिति के विचारों से भिन्न हैं और दूसरे प्रकार के वे हैं जो उन समितियों की सिफारिशों को तथा उनके निर्णयों को कलेवर प्रदान करते हैं। जब हम उन विशेष प्रावधानों को विचार के लिये अपने सामने रखेंगे तो हम उनके औचित्य पर विचार करके यह निश्चय करेंगे कि हम मसौदा समिति की राय को स्वीकार करें अथवा किसी समिति की राय को। सभा के समक्ष इन प्रावधानों का तैयार हुआ मसौदा होगा जिससे कि इन विषयों के बारे में मसौदे को तैयार करने के लिये इस सभा को अपने काम में ठहरना न पड़े। यदि हम सम्पूर्ण विषय पर इस दृष्टिकोण से विचार करें तो मेरी समझ से वाद-विवाद का क्षेत्र बहुत ही सीमित रह जाता है क्योंकि बहुत से संशोधन तो मसौदा सम्बन्धी हैं और बहुत से निर्णय हम कर ही चुके हैं और जहां तक मसौदा तैयार करने का सम्बन्ध है मसौदा-समिति ने अनेकों सुझावों तथा संशोधनों पर विचार कर ही लिया है और उनको मान भी लिया है। उन प्रश्नों के आधारभूत सिद्धान्तों के सम्बन्ध में जिन पर अभी निर्णय नहीं किया गया है वाद-विवाद होगा। फिर भी जहां तक अन्य सिद्धान्तों का प्रश्न है उन पर अधिक वाद-विवाद तो होगा नहीं क्योंकि उन पर हमने वाद-विवाद कर ही लिया है और निश्चय कर ही चुके हैं। अतः मेरा ऐसा विचार है कि यदि व्यवसायोचित रीति से हम कार्य करें तो सम्पूर्ण विधान का पर्यालोचन हम इस विधान-परिषद् के कार्यारंभ की दूसरी वार्षिक तिथि तक अर्थात 9 दिसम्बर 1948 तक समाप्त करने में समर्थ हो जायेंगे; यदि ऐसा कर सके तो उक्त तिथि के पश्चात् सभा की बैठक कुछ दिनों के लिये स्थगित रहेगी और जितने संशोधन सभा द्वारा स्वीकार कर लिये गये होंगे उन पर मसौदा-समिति उतने समय में विचार करेगी और उनको उपयुक्त स्थानों में शामिल करेगी तथा समस्त संख्या-क्रम फिर से ठीक कर दिया जाएगा और अनुच्छेदों को उपयुक्त परिच्छेदों में फिर से रख दिया जायेगा। अर्थात् जो कुछ भी आवश्यक होगा तथा 10 या 15 दिनों में जो कुछ भी हो सकेगा वह कर दिया जाएगा तब हम फिर दुबारा बैठेंगे और उस समय हम अन्तिम बार विधान को उस रूप में स्वीकार करेंगे जो कि उसका उस समय हो गया होगा। दूसरी बार के पर्यालोचन में हम जैसा कि नियम है किसी भी प्रश्न के औचित्य पर विचार नहीं करेंगे, हम केवल यही देखेंगे कि सभा के समक्ष जो मसौदा रखा गया है उसमें सभा द्वारा स्वीकृत संशोधनों को उसी रूप में रखा गया है अथवा नहीं।

मैं सभा के समक्ष यह सुझाव रखता हूं और मैं आशा करता हूं कि सदस्यों को यह स्वीकार होगा।

27

संविधान सभा एवं संविधान*

एक इतने बड़े महान कार्य को पूरा करने पर मैं इस सभा को बधाई देना चाहता हूं। मेरा प्रयोजन यह नहीं है कि इस सभा ने जो कार्य किया है उसका मैं मूल्य आकूं अथवा जो संविधान इसने बनाया है उसके गुण और दोषों को बताऊं। इस कार्य को औरों पर तथा आगे आने वाली संतति पर छोड़ने में मुझे संतोष है। मैं केवल उसकी कुछ मुख्य बातें बताने तथा उस रीति को बताने का प्रयास करूंगा जिसका इस संविधान के निर्माण करने में हमने अनुसरण किया है।

ऐसा करने से पूर्व मैं कुछ उन तथ्यों का वर्णन करना चाहूंगा जो इस कार्य की महानता को प्रकट करेंगे जिसको हमने लगभग 3 वर्ष पूर्व हाथों में लिया था यदि आप उस जनसंख्या का विचार करेंगे जिसका इस सभा को ध्यान रखना पड़ा तो आपको विदित होगा कि वह रूस रहित समस्त यूरोप की जनसंख्या से अधिक है। यह जनसंख्या 31 करोड़ 90 लाख है और रूस रहित यूरोप की जनसंख्या 31 करोड़ 70 लाख है। एक एकात्मक सरकार के अधीन आना तो दूर रहा यूरोप के देश कभी संगठित तक नहीं हो पाये हैं या एक संयुक्त मंडल (कान्फीडरेशन) तक नहीं बना पाये हैं। यहां जनसंख्या और देश के इतने बड़े आकार के होते हुये भी हम एक ऐसा संविधान बनाने में सफल हुए हैं जिसके अन्तर्गत सारा देश और सारी जनसंख्या आ जाती है। आकार के अतिरिक्त और भी कठिनाइयां थीं जो इस समस्या ही के अन्तर्गत थीं। हमारे यहां देश में कई सम्प्रदाय रहते हैं। हमारे यहां देश के भिन्न-भिन्न भागों में कई भाषा प्रचलित हैं। हमारे यहां और भी अन्य प्रकार की भिन्नतायें हैं जो भिन्न-भिन्न भागों में मनुष्यों को परस्पर विभाजित करती हैं। हमें केवल उन क्षेत्रों के लिये ही उपबन्ध नहीं बनाने पड़े जो शैक्षणिक तथा आर्थिक रूप में उन्नत हैं; हमें जनजातियों जैसे पिछड़े लोगों के लिये भी तथा जनजाति क्षेत्रों के समान पिछड़े क्षेत्रों के लिये भी उपबन्ध बनाने पड़े। साम्प्रदायिक समस्या एक बहुत ही जटिल समस्या थी जो इस देश में एक अरसे से प्रचलित थी। दूसरा गोल-मेज सम्मेलन जिसमें महात्मा गांधी गये थे इसी कारण असफल हुआ कि

*संविधान सभा वाद-विवाद (खण्ड VI), 26 नवम्बर, 1949।

साम्प्रदायिक समस्या हल न हो सकी। इसके बाद का देश का इतिहास इतना आधुनिक है कि उसके कहने की यहां आवश्यकता नहीं है। पर हम यह जानते हैं कि परिणामस्वरूप देश का विभाजन करना पडा और पूर्वोत्तर तथा पश्चिमोत्तर में हमारे देश में से दो भाग निकल गये।

दूसरी महान समस्या देशी राज्यों की समस्या थी। जब अंग्रेज भारत में आये तो उन्होंने सारे देश को एकदम एक ही बार नहीं जीता। वे समय-समय पर थोड़ा-थोड़ा करके उसको लेते चले गये। वे टुकड़े जो उनके प्रत्यक्ष कब्जे तथा नियंत्रण में आ गये ब्रिटिश भारत के नाम से ज्ञात हुये; परन्तु एक बड़ा भाग भारतीय राजाओं के शासन तथा नियंत्रण में रहा। उस समय अंग्रेजों ने यह सोचा कि यह उनके लिये आवश्यक तथा लाभदायक नहीं है कि उन राज्य-क्षेत्रों पर प्रत्यक्ष रूप से नियंत्रण रखें और इस कारण उन्होंने पुराने शासकों को अपनी प्रभुता के अधीन बने रहने दिया। पर उन्होंने उनसे भिन्न-भिन्न प्रकार की संधियां कीं और सम्बन्ध स्थापित किये। हमारे यहां लगभग छः सौ रियासतें थीं जो भारत के राज्य-क्षेत्र के तिहाई भाग से अधिक भाग को घेरे हुये थीं और जिनमें देश की एक चौथाई जनसंख्या थी। छोटे-छोटे ठिकानों से लेकर मैसूर, हैदराबाद, काश्मीर इत्यादि बड़ी-बड़ी रियासतों तक वे भिन्न-भिन्न आकार प्रकार की थीं। जब अंग्रेजों ने इस देश को छोड़ना निश्चित किया तो उन्होंने हमको शक्ति दी, पर इसके साथ-साथ उन्होंने यह भी घोषणा की, राज्यों से जो संधियां या सम्बन्ध उनके थे वे सब भंग हो गये। वह प्रभुता भी मिट गई जिसका वे इतने काल तक प्रयोग करते रहे और जिससे वे शासकों को व्यवस्थानुसार चला सकते थे। इस समय भारतीय सरकार को इन राज्यों से सुलझने की समस्या का सामना करना पड़ा जिनमें भिन्न-भिन्न प्रकार की शासन व्यवस्थायें थीं, कुछ राज्यों की सभाओं में लोकप्रिय प्रतिनिधान का कुछ रूप था और कुछ में ऐसी कोई बात न थी और उन पर पूर्णतया स्वतन्त्र शासन था।

इस घोषणा के परिणामस्वरूप कि देशी राजाओं के साथ संधियां और उन पर प्रभुता भंग हो गई थी किसी राजा या राजाओं के गुट को यह अधिकार मिल गया था कि वे स्वाधीन हो जायें और यहां तक कि किसी विदेशी शक्ति से संधि सम्बन्धी बातचीत भी करें और इस प्रकार इस देश में स्वाधीन राज्य क्षेत्र के भागों की स्थापना हो। यद्यपि भौगोलिक अथवा अन्य ऐसी अनिवार्यतायें अवश्य थी जिनके कारण उन राज्यों में से अधिकांश के लिये यह नितान्त असंभव था कि वे भारत सरकार के विरुद्ध हो सकें पर संविधानिक रूप में ऐसा को सकता था। अतः आरम्भ में ही उनके प्रतिनिधियों को सभा में लाने के लिये संविधान सभा को उनसे बातचीत करनी पड़ी जिससे कि उनसे परामर्श कर संविधान बनाया जा सके। प्रथम प्रयास में ही सफलता मिली और कुछ रियासतें शुरू ही में इस सभा में आ गई और कुछ रियासतें संकोच करती रहीं। यह आवश्यक नहीं है

कि उन घटनाओं के गुप्त भेदों को खोला जाये जो उन दिनों परदे की आड़ में हो रही थीं। केवल यह कहना पर्याप्त होगा कि अगस्त 1947 तक जब कि स्वाधीनता अधिनियम प्रवृत्त हुआ लगभग सब रियासतें भारत में प्रवेश कर गईं सिवा दो उल्लेखनीय अपवादों के—उत्तर में काश्मीर और दक्षिण में हैदराबाद। काश्मीर ने तुरन्त ही अन्य राज्यों के उदाहरण का अनुसरण किया और प्रविष्ट हो गया। हैदराबाद सहित सब रियासतों से आगे कार्रवाई न करने (स्टैन्डस्टिल) के करार हुये और हैदराबाद की स्थिति पूर्ववत बनी रही। जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया यह स्पष्ट होता गया कि छोटे छोटे राज्यों के लिये अपनी पृथक स्वाधीन सत्ता रखना किसी प्रकार संभव नहीं था अतः भारत में सम्मिलित होने का कार्य आरम्भ हुआ कुछ समय में केवल छोटी-छोटी रियासतें ही भारत के किसी न किसी प्रान्त से मिलकर एक नहीं हो गई वरन् कुछ बड़ी-बड़ी रिआसतें भी मिल गईं। बहुत सी रियासतों ने अपने संघ बना लिये और ये संघ भारतीय संघ के भाग बन गये हैं। यह कहना चाहिये कि रियासतों की जनता और शासकों को श्रेय प्राप्त है और सरदार पटेल के बुद्धिमत्तापूर्ण तथा दूरदर्शी पथप्रदर्शन के अधीन राज्य मंत्रालय के लिये भी यह कम श्रेय की बात नहीं है कि अब जब कि हम यह संविधान पारित कर रहे हैं रियासतों की स्थिति न्यूनाधिक रूप में वही है जो कि प्रान्तों की है और देशी रियासतों और प्रान्तों के सहित सब का हम इस संविधान में राज्यों के रूप में वर्णन कर सके हैं। जो घोषणा सरदार पटेल ने अभी की है उससे स्थिति बहुत स्पष्ट हो गई है, और अब इस नये संविधान में रियासतों और प्रान्तों में वह अन्तर नहीं है जो पहले था।

इसमें सन्देह नहीं कि इस कार्य को पूरा करने में हमें तीन वर्ष लगे हैं, पर जब हम, जो काम पूरा हो चुका है उस पर और जो दिन इस संविधान के बनाने में हमने लगाये हैं उनकी संख्या पर, विचार करें—इसका विवरण कल डा० अम्बेडकर ने दिया था—तो जो समय हमने व्यतीत किया है उसके प्रति खेद करने के लिये कोई कारण नहीं मिल सकता है।

इसके कारण राज्यों की वह समस्या, जो न सुलझने वाली प्रतीत होती थी, और साम्प्रदायिक समस्या हल हो गई। जो बात गोल मेज सम्मेलन में न सुलझने वाली सिद्ध हुई थी और जिसके परिणाम स्वरूप देश का विभाजन हुआ वह सब सम्बद्ध पक्षों की सम्मिलित से हल कर ली गई है और यह कार्य भी माननीय सरदार पटेल के बुद्धिमत्तापूर्ण मार्गप्रदर्शन के अधीन हुआ।

"आरम्भ में हम पृथक निर्वाचक मंडलों से छुटकारा पा चुके थे जिन्होंने हमारे राजनैतिक जीवन को इतने वर्षों तक विषमय बना दिया था, पर उन सम्प्रदायों के लिये, जो पृथक निर्वाचक मंडलों का पहले उपभोग करते रहे थे स्थानों का रक्षण स्वीकार करना पड़ा और

यह उनकी जनसंख्या के आधार पर है न कि जैसा 1919 के अधिनियम में और 1935 के अधिनियम में किया गया था कि उनको तत्कथित उन ऐतिहासिक तथा अन्य श्रेष्ठताओं के आधार पर अतिरिक्त प्रतिनिधान दिया गया था जिसका कुछ सम्प्रदाय दावा करते थे। यह केवल इसी कारण हो सका है कि संविधान जल्दी पारित नहीं हो पाया और इस समय में सम्बद्ध सम्प्रदायों ने स्थान-रक्षण को भी छोड़ दिया अतः हमारे संविधान में साम्प्रदायिक आधार पर स्थानों के रक्षण की व्यवस्था नहीं है वरन् हमारी जनसंख्या में केवल दो प्रकार के लोगों के लिये रक्षण रखा गया है, अर्थात् दलित जातियां जो हिन्दू हैं और जनजाति के लोग जो शिक्षा तथा अन्य बातों में पिछड़े हुये हैं।

जिन बातों पर खर्च हुआ है यदि आप उन बातों पर विचार करें तो जो खर्च सभा ने अपने तीन वर्ष के जीवन में किया है वह बहुत अधिक नहीं है। मैं समझता हूं कि 22 नवम्बर तक 63,96,729 रुपया खर्च में आया है।

संविधान के सम्बन्ध में जिस रीति को संविधान सभा ने अपनाया वह यह थी कि सर्व प्रथम 'विचारणीय बातें' निर्धारित का जो कि लक्ष्य मूलक संकल्प के रूप में थीं जिसको एक ओजस्वी भाषण द्वारा पंडित जवाहरलाल नेहरू ने पेश किया था और जो अब हमारे संविधान की प्रस्तवना है। इसके बाद संविधानिक समस्याओं के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर विचार करने के लिये कई समितियां नियुक्त की। डा० अम्बेडकर ने इन समितियों के नामों का वर्णन किया था। इन में से कई समितियों के सभापति या तो पंडित जवाहरलाल नेहरू होते थे या सरदार पटेल अतः इस प्रकार हमारे संविधान की मूलभूत बातों का श्रेय इन्हीं को है। मुझे केवल यही कहना है कि इन सब समितियों ने उचित और ठीक रीति से कार्य किया और अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जिन पर सभा ने विचार किया और उनकी सिफारिशों को उन आधारों के रूप में ग्रहण किया गया जिन पर संविधान का मसौदा तैयार किया गया था। यह कार्य श्री बी० एन० राउ ने किया जिन्होंने अपने इस कार्य में अन्य देशों के संविधानों के पूर्ण ज्ञान और इस देश की दशा के व्यापक ज्ञान तथा अपने प्रशासी ज्ञान को भी पुट दिया। इसके बाद सभा ने मसौदा समिति नियुक्त की जिसने श्री बी० एन० राउ द्वारा निर्मित मूल मसौदे पर विचार किया और संविधान का मसौदा बनाया जिस पर द्वितीय पठन की स्थिति में इस सभा ने विस्तारपूर्वक विचार किया। जैसा कि डा० अम्बेडकर ने बताया था 7635 से कम संशोधन नहीं थे जिनमें से 2473 संशोधन पेश किये गये। मैं केवल यह सिद्ध करने के लिये यह कह रहा हूं कि केवल मसौदा समिति के सदस्य ही इस संविधान पर दत्तचित होकर अपना ध्यान नहीं दे रहे थे वरन् अन्य सदस्य भी सचेष्ट थे और मसौदे की पूर्णरूप से जांच परख कर रहे थे। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि मसौदे में केवल प्रत्येक अनुच्छेद पर ही नहीं वरन् लगभग प्रत्येक वाक्य पर और कभी-कभी तो प्रत्येक अनुच्छेद के प्रत्येक शब्द पर हमें विचार

करना पड़ा। माननीय सदस्यों को यह जान कर खुशी होगी कि इस कार्यवाई में जनता बड़ी दिलचस्पी ले रही थी और मुझे यह विदित हुआ है कि जितने समय तक संविधान विचाराधीन रहा उस समय में 53,000 दर्शकों को दर्शक गैलरी में जाने दिया गया। परिणाम यह हुआ कि संविधान के मसौदे का आकार बढ़ गया और जब यह पारित हुआ तो श्री बी० एन० राउ के मूल मसौदे के 243 अनुच्छेद और 13 अनुसूचियों के स्थान में उसमें 395 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां हो गईं। मैं उस शिकायत को कोई महत्व नहीं देता हूं जो कभी-कभी इस रूप में की जाती थी कि यह संविधान बहुत विशाल हो गया है। यदि उपबन्धों पर भली प्रकार से विचार कर लिया गया है तो इस बृहदाकार से हमारे चित्त की स्थिर वृत्ति में कोई विघ्न नहीं पड़ना चाहिये।

अब हमें इस संविधान की मुख्य बातों पर विचार करना है। सब से पहले प्रश्न यह है और इस पर वाद-विवाद हो चुका है कि यह संविधान किस श्रेणी का है। मैं स्वयं उस श्रेणी को कोई महत्व नहीं देता हूं जो इस संविधान को दी जायेगी—चाहे आप उसे फ़ेडरल संविधान कहें या एकात्मक शासन तंत्र का संविधान कहें या और कुछ कहें। जब तक संविधान हमारे प्रयोजनों की पूर्ति करता है तब तक इस बात से कोई फरक नहीं पड़ता है। हमारे लिये यह कोई बन्धन नहीं है कि हम एक ऐसा संविधान रखें जो संसार के संविधानों की ज्ञात श्रेणियों के पूर्णतया अनुरूप हो। हमें अपने देश के इतिहास के कुछ तथ्यों को लेना पड़ेगा और इतिहास के तथ्यों जैसी इन वास्तविकताओं का इस संविधान पर कोई कम प्रभाव नहीं पड़ा है।

आप सब को यह विदित है कि 1930 के गोल-मेज सम्मेलन तक भारत में पूर्णतया एकात्मक शासन व्यवस्था थी और प्रांतों को जो कुछ भी शक्तियां थीं वे भारत सरकार से प्राप्त होती थीं। प्रथम बार फेडरेशन का प्रश्न व्यावहारिक रूप में उठा जिसके अन्तर्गत केवल प्रान्त ही नहीं रखे गये वरन् उन अनेक रियासतों को भी रखा जो उस समय वर्तमान थीं। 1935 के संविधान में एक फेडरेशन की व्यवस्था की गई जिसमें सम्मिलित होने के लिये दोनों भारत के प्रान्तों और रियासतों से कहा गया। पर उस संविधान का फेडरल भाग प्रवर्त्तन में नहीं आ सका क्योंकि बहुत समय तक बात चीत करने पर भी ये बातें निश्चित न हो सकीं जिनके अनुसार शासक सम्मिलित होने के लिये सहमत हो सकते थे। और जब युद्ध छिड़ गया तो संविधान के उस भाग का निराकरण करना पड़ा।

वर्तमान संविधान में लगभग उन सब रियासतों को जो हमारी भौगोलिक सीमाओं के भीतर हैं प्रविष्ट ही नहीं कराया गया है वरन् उनमें से अधिकांश को पूर्ण एकक के रूप में भारत में मिला दिया गया है, और जिस रूप में यह संविधान है इसमें जहां तक राज्य के विभिन्न एककों का सम्बन्ध है पहले जो प्रान्त थे और जो देशी रियासतें थीं उनके आधार

पर प्रशासन और शक्ति विभाजन के विषय में कोई अन्तर नहीं रखा गया है। न्यूनाधिक रूप में उनकी स्थिति अब समान वही है और कुछ समय बीतने पर जो कुछ थोड़ा सा अन्तर इस समय है वह भी मिट जायेगा। अतः जहां तक संविधान की श्रेणी का सम्बन्ध है हमें इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

सब से पहला और अति स्पष्ट तथ्य जो किसी भी पर्यवेक्षक का ध्यान आकर्षित करेगा वह यह है कि हम एक गणराज्य बना रहे हैं। भारत में प्राचीन काल में गणराज्य थे, पर यह व्यवस्था 2000 वर्ष पूर्व थी इससे भी अधिक समय पूर्व थी और वे गणराज्य बहुत छोटे-छोटे थे। जिस गणराज्य की हम अब स्थापना कर रहे हैं उस गणराज्य जैसा गणराज्य हमारे यहां कभी नहीं था, यद्यपि उन दिनों में भी और मुगल काल में भी ऐसे साम्राज्य थे जो देश के विशाल भागों पर छाये हुये थे। इस गणराज्य का राष्ट्रपति एक निर्वाचित राष्ट्रपति होगा। हमारे यहां ऐसे बड़े राज्य का निर्वाचित मुखिया कभी नहीं हुआ जिसके अन्तर्गत भारत का इतना बड़ा क्षेत्र आ जाता है। और यह प्रथम बार ही हुआ है कि देश के तुच्छ से तुच्छ और निम्न से निम्न नागरिक को भी यह अधिकार मिल गया है कि वह इस महान राज्य के राष्ट्रपति या मुखिया के योग्य हो और बने जो आज संसार के विशालतम राज्यों में गिना जाता है। यह कोई छोटा विषय नहीं है। चूंकि हमारे यहां निर्वाचित राष्ट्रपति होगा कुछ ऐसी समस्यायें खड़ी हो गई हैं जो बड़ी जटिल प्रकार की हैं। हमने राष्ट्रपति के निर्वाचन की व्यवस्था की है। हमने निर्वाचित विधान मंडल की व्यवस्था की है जिसको सर्वोच्च प्राधिकार प्राप्त होंगे। अमरीका में विधान-मंडल और राष्ट्रपति दोनों का निर्वाचन होता है और वहां दोनों को न्यूनाधिक रूप से समान शक्तियां होती हैं—प्रत्येक को अपने-अपने क्षेत्र में, राष्ट्रपति को कार्यपालिका क्षेत्र में और विधान-मंडल को विधायी क्षेत्र में।

हमने विचार किया कि हम अमरीका का आदर्श ग्रहण करें या ब्रिटिश आदर्श जहां राजा वंशानुगत होता है और वह समस्त आदर और शक्ति का स्रोत है, पर जो वास्तव में किसी शक्ति का उपभोग नहीं करता। सब शक्तियां विधान-मंडल में निहित होती हैं और मंत्री विधान मंडल के ही प्रति उत्तरदायी होते हैं। हमें एक निर्वाचित राष्ट्रपति की स्थिति का एक निर्वाचित विधान-मंडल से मेल बिठाना था और ऐसा करने में हमने राष्ट्रपति के लिये न्यूनाधिक रूप में ब्रिटेन के बादशाह की स्थिति को अपनाया है। यह संतोषजनक हो या न हो। कुछ लोग सोचते हैं कि राष्ट्रपति को बहुत अधिक शक्तियां दे दी गई हैं। कुछ लोग सोचते हैं कि निर्वाचित राष्ट्रपति होने के कारण उसे जो शक्तियां दी गई हैं उनसे अधिक शक्तियां होनी चाहियें।

यदि आप इस विषय की ओर उस निर्वाचक-मंडल के दृष्टिकोण से ध्यान दें जो संसद्

का निर्वाचन करता है और जो राष्ट्रपति का निर्वाचन करता है तो आपको विदित होगा कि देश की लगभग पूरी की पूरी वयस्क जनसंख्या संसद् के निर्वाचन करने में भाग लेती है और केवल भारत की इस संसद् के सदस्य ही नहीं वरन् राज्यों की विधान सभाओं के सदस्य भी राष्ट्रपति के निर्वाचन करने में भाग लेते हैं। अतः परिणाम यह निकलता है कि संसद् और विधान सभाओं का निर्वाचन देश की समूची वयस्क जनसंख्या द्वारा किया जाता है और राष्ट्रपति का निर्वाचन उन प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है जो समस्त जनसंख्या का दो बार प्रतिनिधान करते हैं—एक बार राज्यों के प्रतिनिधि के रूप में और दूसरी बार देश की केन्द्रीय संसद् में उसके प्रतिनिधि के रूप में। यद्यपि राष्ट्रपति का निर्वाचन उसी निर्वाचक-मंडल द्वारा किया जाता है जो केन्द्रीय और राज्य के विधान-मंडलों का निर्वाचन करता है परन्तु उसकी स्थिति एक संविधानिक राष्ट्रपति की स्थिति जैसी है।

इसके बाद हम मंत्रियों पर आते हैं। वे वास्तव में विधान-मंडल के प्रति उत्तरदायी हैं और राष्ट्रपति को मंत्रणा देंगे और राष्ट्रपति के लिये यह आवश्यक है कि उस मंत्रणा के अनुसार कार्य करें। जहां तक मैं जानता हूं यद्यपि स्वयं इस संविधान में ऐसे विशिष्ट उपबन्ध नहीं हैं जो राष्ट्रपति को अपने मंत्रियों की मंत्रणा स्वीकार करने के लिये बाध्य करते हों पर यह आशा की जाती है कि उस परम्परा को इस देश में भी स्थापित किया जायेगा जिसके अधीन इंगलैंड का बादशाह सदैव अपने मंत्रियों की मंत्रणा के अनुसार चलता है और संविधान में लिखित शब्द के कारण नहीं वरन् इस कल्याणकारी परम्परा के फलस्वरूप राष्ट्रपति सब विषयों में एक संविधानिक राष्ट्रपति होगा।

केन्द्रीय विधान-मंडल में लोक सभा और राज्य-परिषद् नाम से ज्ञात दो सदन होंगे जो मिलकर भारत की संसद् का गठन करेंगे। सब प्रान्तों में जिनको अब राज्य कहा जायेगा हम विधान सभा रखेंगे सिवा उनके जिनका अनुसूची 1 के भाग ग और घ में वर्णन है, पर प्रत्येक राज्य में द्वितीय सदन नहीं होगा। कुछ प्रान्तों में, जिनके प्रतिनिधियों ने यह अनुभव किया कि उनके लिये द्वितीय सदन अपेक्षित है, द्वितीय सदन के लिये व्यवस्था कर दी गई है। परन्तु संविधान में एक ऐसा भी उपबन्ध है कि यदि कोई प्रान्त ऐसे द्वितीय सदन को बनाये रखना नहीं चाहता है या यदि कोई प्रान्त जिसमें द्वितीय सदन नहीं है वह द्वितीय सदन चाहता है तो यह इच्छा विधान मंडल द्वारा मत देने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से और विधान सभा के कुल सदस्यों के बहुतम से प्रकट करनी होगी। अतः यद्यपि कुछ राज्यों के लिये द्वितीय सदनों की व्यवस्था करते हुये भी हमने उनको सरलता से मिटाने या सरलता से स्थापित करने की भी व्यवस्था संविधान में इस प्रकार का संशोधन करके की है और यह संशोधन कोई संविधानिक संशोधन नहीं है वरन् एक साधारण संसदीय विधान का विषय है।

हमने वयस्क मताधिकार की व्यवस्था की है जिसके द्वारा प्रान्तों में विधान-सभाओं और

केन्द्र में लोक सभा का निर्वाचन होगा। यह हमने एक बहुत बड़ा कदम उठाया है यह केवल इस कारण ही बड़ा कदम नहीं है कि हमारा वर्त्तमान निर्वाचक-मंडल एक बहुत ही छोटा निर्वाचक-मंडल है और वह अधिकतर संपत्ति-अर्हता पर आश्रित है; पर वह इस कारण भी बड़ा कदम है कि उसके अन्तर्गत एक बहुत बड़ी संख्या हो जाती है। हमारी जनसंख्या यदि अधिक नहीं तो लगभग 32 करोड़ है और मतदाताओं की सूचियां जो कि प्रान्तों में बनाई जा रही हैं उनके बनाने में जो अनुभव हमें हुआ उस से यह विदित हुआ है कि मोटे रूप में वयस्क जनसंख्या 50 प्रतिशत है। और इस आधार से हमारी सूचियों में 16 करोड़ से कम मतदाता नहीं होंगे। इतनी बड़ी संख्या में मतदाताओं द्वारा निर्वाचन को संगठित करने का कार्य बहुत बड़ा कार्य है और ऐसा अन्य कोई देश नहीं है जहां इतने बड़े परिमाण मे कभी निर्वाचन हुआ हो।

इस संबंध में आपके सामने कुछ तथ्यों का वर्णन करूंगा। मोटे रूप में यह अनुमान लागया गया है कि प्रांतों की विधान सभाओं में 3800 सदस्यों से अधिक सदस्य होंगे और जिनका निर्वाचन उतने ही निर्वाचक क्षेत्रों में से या शायद कुछ कम क्षेत्रों में से होगा। और फिर लोक सभा के लिये लगभग 500 सदस्य होंगे और राज्य-परिषद् के लिये लगभग 220 सदस्य। इस प्रकार हमें 4500 से अधिक सदस्यों के लिये निर्वाचन की व्यवस्था करनी होगी और देश को लगभग 4000 निर्वाचन-क्षेत्रों में विभाजित करना होगा। एक दिन मनोविनोद के रूप में यह अनुमान लगा रहा था कि हमारी निर्वाचक सूची का क्या आकार प्रकार होगा। यदि आप फूल्सकेप नाप के एक पृष्ठ पर 40 नाम छापें तो सब मतदाताओं के नाम छापने के लिये हमें फूल्सकेप नाप के 20 लाख पृष्ठों की आवश्यकता होगी और यदि आप इन सब की एक प्रति बनायें तो उस प्रति की मुटाई लगभग 200 गज होगी। केवल इसी एक बात से हमें यह अनुमान हो जाता है कि यह कार्य कितना विशाल है और इन सूचियों को अन्तिम रूप देने निर्वाचन-क्षेत्रों का परिसीमन करने, मतदान करने के स्थलों को नियत करने और अन्य उन प्रबन्धों को करने में कितना काम बढ़ जाता है और यह सब अब से लेकर 1950-51 के शीत काल तक हो जाना चाहिये जिस समय के लिये यह आशा की जाती है कि निर्वाचन होंगे।

कुछ लोगों ने इस बात के प्रति संदेह किया है कि वयस्क मताधिकार बुद्धिमानी की बात होगी। यद्यपि मैं इसे एक ऐसे प्रयोग के रूप में देख रहा हूं जिसके परिणाम के सम्बन्ध में आज कोई भी व्यक्ति भविष्य वाणी नहीं कर सकता है पर मैं इससे आश्चर्य चकित नहीं हुआ हूं। मैं एक ग्रामीण व्यक्ति हूं और यद्यपि अपने कार्य के कारण मुझे बहुत अधिक समय तक नगरों में रहना पड़ा है परन्तु मेरी जड़ अब भी वहीं है। अतः मैं उन ग्रामीण व्यक्तियों से परिचित हूं जो इस महान निर्वाचक-मंडल का एक बड़ा भाग होगा। मेरी सम्मति में हमारे इन लोगों में बुद्धि और साधारण ज्ञान है। उनकी एक संस्कृति

भी है जिसको आज की आधुनिकता में रंगे हुए लोग चाहे न समझें पर है वह एक ठोस संस्कृति। वे साक्षर नहीं हैं और पढ़ने लिखने का मंत्रवत् कौशल उनमें नहीं है। पर इस बात में मुझे रचमात्र भी सन्देह नहीं है कि यदि उनको वस्तुस्थिति समझा दी जाये तो वे अपने हित तथा देश के हित के लिये उपक्रम कर सकते हैं। कुछ बातों में तो मैं वास्तव में उनको किसी भी कारखाने के श्रमिक से भी अधिक चतुर समझता हूं जो अपने व्यक्तित्व को खो देता है और जिस यंत्र का उसे संचालन करना पड़ता है न्यूनाधिक रूप से वह उसी यंत्र का एक भाग बन जाता है। अतः मेरे मन में इस बात के प्रति कोई सन्देह नहीं है कि यदि उनको वस्तुस्थिति समझा दी जाये तो वे केवल निर्वाचन की बारीकियों को ही नहीं समझेंगे बल्कि बुद्धिमानी पूर्वक अपना मत भी देंगे और इसलिये इनके कारण भविष्य के प्रति मुझे कोई शंका नहीं है। अन्य उन लोगों के प्रति में यह बात नहीं कह सकता हूं जो नारों द्वारा तथा उनके सामने अव्यवहारिक कार्यक्रमों के सुन्दर चित्र रख कर उन पर प्रभाव डालने का प्रयत्न करें। फिर भी मेरा यह विचार है कि उनका पुष्ट साधारण ज्ञान वस्तुस्थिति को ठीक ठीक समझने में उनकी सहायता करेगा। अतः हम यह आशा कर सकते हैं कि हमारे विधान-मंडलों में ऐसे सदस्य होंगे जो वास्तविकता से परिचित होंगे और जो वस्तुस्थिति पर यथार्थ दृष्टिकोण से विचार करेंगे।

यद्यपि संसद में द्वितीय सदन के लिये और कुछ राज्यों में द्वितीय सदन के लिए उपबन्ध बना दिया गया है परन्तु सर्वोच्च स्थान लोक सभा का ही है। वित्त तथा धन सम्बन्धी सब विषयों में लोक सभा की सर्वोच्चता कितने ही शब्दों में निर्धारित की गई है। और अन्य विषयों में भी जहां उत्तर सदन को विधियों का सूत्र पात करने और पारित करने की समान शक्तियां कही जा सकती हैं वहां भी लोक सभा की सर्वोच्चता सुनिश्चित की गई है। जहां तक संसद का सम्बन्ध है यदि दोनों सदनों में मतभेद हो जाता है तो एक संयुक्त सत्र किया जा सकता है; पर संविधान यह उपबन्ध करता है कि राज्य-परिषद के सदस्यों की संख्या लोक सभा के सदस्यों की संख्या के 50 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी। अतः संयुक्त सत्र की दशा में भी लोक सभा की सर्वोच्चता का निर्वाह किया गया है जब तक कि स्वयं लोक-सभा में ही बहुमत थोड़ा न हो जो वास्तव में एक ऐसी दशा हो जायगी जिस में उसकी सर्वोच्चता नहीं रहेगी। प्रान्तीय विधान मंडलों में यदि प्रथम सदन किसी विनिश्चय को दूसरी बार करता है और वह विनिश्चय माना जायगा। अतः उत्तर सदन कुछ समय के लिये विधेयकों में केवल विलम्बन कर सकता है पर उन्हें रोक नहीं सकता। किसी विधान पर राष्ट्रपति या राज्यपाल को, यथास्थिति, अपनी अनुमति देनी होगी, पर यह अनुमति उसके मंत्रालय की मंत्रणा के आधार पर ही होगी जो अन्ततोगत्वा लोक-सभा के प्रति उत्तरदायी है। अतः लोक-सदन में जनता के प्रतिनिधियों द्वारा व्यक्त किये गये रूप में जनता की इच्छा ही अन्त में सब विषयों का निश्चय करेगी। द्वितीय सदन

और राष्ट्रपति या राज्यपाल केवल पुनर्विचार के लिये निदेश दे सकते हैं और कुछ विलम्ब कर सकते हैं; परन्तु यदि लोक-सभा दृढ़ है तो संविधान के अधीन उसे सफलता मिलेगी। अतः समूचे देश की सरकार दोनों केन्द्र में तथा प्रान्तों में, जनता की इच्छा पर निर्भर होगी जो दिन प्रति दिन विधान-मंडलों में उस के प्रतिनिधियों द्वारा व्यक्त हुआ करेगी और कभी-कभी साधारण निर्वाचनों में प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा व्यक्त होगी।

संविधान में हम ने एक न्यायपालिका की व्यवस्था की है जो स्वाधीन होगी। उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों को कार्यपालिका के प्रभाव से मुक्त करने के लिये इस से अधिक कुछ और सुझाव देना कठिन है। अवर न्यायपालिका को भी किसी बाह्य या असम्बद्ध प्रभाव से मुक्त रखने का संविधान में प्रयास किया गया है। हमारा एक अनुच्छेद राज्य की सरकारों के लिये कार्यपालिका के कृत्यों को न्यायिक कृत्यों से पृथक करने के विषय को प्रस्तुत करने के कार्य को सरल कर देता है और उस दण्डाधिकारी न्यायालय को, जो आपराधिक मामलों पर विचार करता है, व्यवहार-न्यायालयों के आधार पर लाने के कार्य को सरल कर देता है मैं केवल यही आशा प्रकट कर सकता हूं कि यह सुधार, जो बहुत समय पूर्व हो जाना चाहिये था, राज्यों में तुरन्त कर दिया जायेगा।

कुछ विशेष विषयों को निपटाने के लिये हमारे संविधान में कुछ स्वाधीन अभिकरणों की योजना की गई है। अतः इस में दोनों संघ और राज्यों के लिये लोक-सेवा आयोगों की व्यवस्था की गई है और इन आयोगों को स्वतंत्र आधार पर रखा है जिस से कि कार्यपालिका से प्रभावित हुए बिना ये अपने कर्तव्य का निर्वहन कर सकें। एक बात जिस से हमें बचना है वह यह है कि जहां तक मानवीय रूप से सम्भव हो सकता है स्वार्थ साधन, कुल-पोषण और पक्षपात के लिये कोई गुंजाइश नहीं होनी चाहिये। मेरा विचार है कि जिन उपबन्धों को हमने अपने संविधान में पुरःस्थापित किया है वे इस दशा में बड़े सहायक होंगे।

एक और स्वाधीन प्राधिकारी नियंत्रक-महालेखापरीक्षक है जो हमारी वित्त व्यवस्था की देखभाल करेगा और इस बात पर ध्यान रखेगा कि भारत या किसी भी राज्य के आगमों के किसी अंश का बिना समुचित प्राधिकार के किसी प्रयोजनों या मदों के लिये उपयोग न हो और जिस का यह कर्तव्य होगा कि वह हमारे हिसाब किताब को ठीक रखे। जब हम इस बात पर विचार करें कि हमारी सरकार को अरबों में काम करना होगा तो यह स्पष्ट हो जाता है कि यह विभाग कितना महत्वपूर्ण और आवश्यक होगा। हमने एक और महत्वपूर्ण प्राधिकारी की व्यवस्था की है अर्थात् निर्वाचन-आयुक्त जिस का कार्य विधान मंडलों के निर्वाचनों का संचालन तथा निरीक्षण करना होगा और इस सम्बन्ध में अन्य आवश्यक कार्रवाई करनी होगी। एक संकट जिसका हमें सामना करना होगा वह किसी

ऐसे भ्रष्टाचार से उत्पन्न होता है जिस का शायद पक्ष, अभ्यर्थी या शक्ति प्राप्त सरकार आचरण कर बैठे। हमें एक दीर्घ काल से लोकतंत्रात्मक निर्वाचनों का कोई अनुभव प्राप्त नहीं है सिवा पिछले कुछ वर्षों के और अब जब कि हमें यथार्थ शक्ति प्राप्त हो गई है भ्रष्टाचार का संकट केवल काल्पनिक मात्र ही नही है। अतः यह बात ठीक ही है कि हमारा संविधान इस संकट के प्रति सतर्क है और मतदाताओं द्वारा एक ठीक तथा यथार्थ निर्वाचन के लिये उपबन्ध करता है। विधान-मंडल, उच्च न्यायालयों, लोक-सेवा आयोग, नियंत्रक-महालेखा-परीक्षक और निर्वाचन आयुक्त के विषय में जो कर्मचारी वृन्द इन को इन के कार्य में सहायता प्रदान करेगा उस कर्मचारी वृन्द को भी इन के नियंत्रण ही में रख दिया है और अधिकांश विषयों में उन की नियुक्ति पदवृद्धि और अनुशासन उन की अपनी-अपनी विशिष्ट संस्थाओं में निहित है और इस प्रकार उन की स्वाधीनता के लिये और भी अधिक रक्षाकवच दे दिये गये हैं।

इस संविधान की दो अनुसूचियों में अर्थात् ५ और ६ अनुसूचियों में अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन और नियंत्रण के लिये विशेष उपबन्ध रखे गये हैं। आसाम को छोड़ कर अन्य राज्यों में की जनजातियों के और जनजाति-क्षेत्रों के विषय में जन-जाति मंत्रणादात्री परिषद् के द्वारा जन-जातियां प्रशासन पर प्रभाव डाल सकेंगी। आसाम की जनजातियों के और जन-जाति-क्षेत्रों के विषय में जिला परिषदों और स्वायत्त शासी प्रादेशिक परिषदों के द्वारा उन को अधिक व्यापक शक्तियां दे दी गई हैं। राज्य मंत्रालयों में एक मंत्री के लिये भी आगे और उपबन्ध हैं जिस पर जन-जातियों और अनुसूचित जातियों के कल्याण का भार होगा और एक आयोग उस रीति के बारे में प्रतिवेदन प्रस्तुत करेगा। जिस के अनुसार इन क्षेत्रों पर प्रशासन किया जाता है। इस उपबन्ध का बनाना इस कारण आवश्यक था कि जन-जातियां पिछड़ी हुई हैं और उन को रक्षा की आवश्यकता है और इस कारण भी कि अपनी समस्याओं को सुलझाने की उनकी अपनी ही रीति है और जन-जातिवृत जीवन बिताने का उन का अपना ढंग है। इन उपबन्धों ने उन को पर्याप्त संतोष प्रदान किया है जैसे कि अनुसूचित जातियों के कल्याण और रक्षण के उपबन्धों ने उन को संतोष दिया है।

संघ और राज्यों के प्रशासी तथा अन्य कार्यों के सब रूपों में संघ और राज्यों में परस्पर शक्ति तथा प्रकार्यों के विभाजन संबन्धी विषय को इस संविधान में बड़े विवरण पूर्ण ढंग से लिया गया है। कुछ लोगों ने यह कहा है कि जो शक्तियां केन्द्र को दी गई हैं वे बहुत अधिक हैं और बहुत ही व्यापक है और राज्यों को उस शक्ति से वंचित कर दिया है जो उन के अपने क्षेत्र में वास्तव में उन की ही होनी चाहिये थी। इस आलोचना पर मैं कोई निर्णय देना नहीं चाहता हूं और केवल यही कह सकता हूं कि अपने भविष्य के प्रति हम आवश्यकता से अधिक सतर्क नहीं हो सकते हैं विशेषकर जब हम इस देश

के कई शताब्दियों के इतिहास को याद रखें। पर वे शक्तियां जो केन्द्र को राज्यों के क्षेत्र के अन्तर्गत कार्रवाई करने के लिये दी गई हैं वे केवल आपात सम्बन्धी हैं जो चाहे राजनैतिक हो या वित्तीय और आर्थिक आपात हो, और मुझे यह आशा नहीं है कि केन्द्र की ओर से उस शक्ति की अपेक्षा और अधिक शक्ति हथियाने की प्रवृत्ति होगी जो इस समूचे देश के सुप्रशासन के लिये आवश्यक है। किसी दशा में भी केन्द्रीय विधान-मंडल में राज्यों के प्रतिनिधि होंगे और जब तक उन को यह विश्वास नहीं होगा कि उन पर अतिक्रमण करने की आवश्यकता है तब तक इस बात की संभावना नहीं हो सकती कि वे उन राज्यों के विरुद्ध जिन की जनता के वे प्रतिनिधि हैं केन्द्रीय कार्यपालिका द्वारा किसी ऐसी शक्ति के प्रयोग से सहमत हो जायें। मैं इस शिकायत को कोई महत्व नहीं देता हूं कि अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र को सौंप दी गई हैं। सप्तम अनुसूची की तीन सूचियों में शक्तियों की बड़े व्यापक तथा विस्तृत रूप में परिभाषित तथा सीमांकित कर दिया गया है और जो कुछ भी अवशेष रह गई हों उन के अन्तर्गत किसी बड़े क्षेत्र के आने की सम्भावना नहीं है और इस कारण इन अवशिष्ट शक्तियों के सौंपने का अभिप्राय यह नहीं है कि जो शक्तियां राज्यों की होनी चाहियें उन का वास्तव में बहुत अधिक अल्पीकरण कर दिया गया हो।

उन समस्याओं में से एक समस्या जिन के सुलझाने में संविधान सभा ने बहुत समय लिया देश के राजकीय प्रयोजनों के लिये भाषा सम्बन्धी समस्या है। यह एक स्वाभाविक इच्छा है कि हमारी अपनी भाषा होनी चाहिये और देश में बहुत सी भाषाओं के प्रचलित होने के कारण कठिनाइयों के होते हुए भी हम हिन्दी को अपनी राज भाषा के रूप में स्वीकार कर सके हैं जो एक ऐसी भाषा है जिसे देश में सब से अधिक लोग समझते हैं। जब हम यह विचार करते हैं कि स्विट्जरलैंड जैसे एक छोटे से देश में तीन राज भाषाओं से कम राज भाषा नहीं हैं और दक्षिणी अफ्रीका में दो राज भाषाएं हैं तो मैं इस विनिश्चय को एक बड़े ही महत्वपूर्ण विनिश्चय के रूप में देखता हूं। देश को एक राष्ट्र के रूप में संघटित करने के दृढ़ निश्चय की ओर सुविधा-क्षमता की भावना इस बात से प्रकट होती है कि वे लोग जिन की भाषा हिन्दी नहीं है उन्होंने स्वेच्छापूर्वक इसे राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकार किया है। अब भाषा के आरोपण करने का प्रश्न ही नहीं है। अंग्रेजी राज्य में अंग्रेजी और मुस्लिम राज्य में फारसी कचहरी और राज की भाषायें थीं। यद्यपि लोगों ने इन भाषाओं का अध्ययन किया और उन में विशेष योग्यता प्राप्त की, पर कोई यह दावा नहीं कर सकता है कि उन को इस देश के अधिकांश लोगों ने स्वेच्छापूर्वक ग्रहण किया। अपने इतिहास में पहली बार इस समय हम ने एक भाषा स्वीकार की है जिस का समस्त राजकीय प्रयोजनों के लिय सारे देश में प्रयोग होगा और मुझे यह आशा करने दीजिये कि यह उन्नत हो कर एक ऐसी राष्ट्रीय भाषा का रूप धारण करे जिस में सब को समान रूप

से गौरव मिले, और इस के साथ-साथ प्रत्येक क्षेत्र को अपनी निजी भाषा की उन्नति करने की स्वतन्त्रता ही नहीं होगी वरन् उन को उस भाषा को उन्नत बनाने के लिये प्रोत्साहित भी किया जायेगा जिस में उस की संस्कृति और परम्परा पवित्र रूप से स्थापित है। व्यावहारिक कारणों-वश इस अन्तर्कालीन समय में अंग्रेजी का प्रयोग अनिवार्य समझा गया और इस विनिश्चिय से किसी को निराश नहीं होना चाहिये जिस को विशुद्ध व्यावहारिक विचारों के आधार पर किया गया है। अब यह इस समूचे देश का कर्तव्य है और विशेषकर उन का जिन की भाषा हिन्दी है कि इस को ऐसा रूप दें और इस प्रकार से विकसित करें कि यह एक ऐसी भाषा बन जाये जिस में भारत की सामाजिक संस्कृति की पर्याप्त तथा सुन्दर रूप में अभिव्यक्ति हो सके।

हमारे संविधान की एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि इस में किसी अधिक कष्ट के बिना संशोधन किया जा सकता है। यहां तक कि संविधानिक संशोधन भी ऐसे कठिन नहीं हैं जैसे कुछ अन्य देशों में हैं। और इस संविधान के बहुत से उपबन्धों का संशोधन तो साधारण अधिनियमों द्वारा संसद् कर सकती है और संविधानिक संशोधनों के लिये निर्धारित प्रक्रिया का पालन करना आवश्यक नहीं है। एक समय एक ऐसा उपबन्ध रखा गया था जिस में यह प्रस्थापित किया गया था कि इस संविधान के प्रवृत्त होने के बाद पांच वर्ष तक इस में संशोधन करना सरल बना दिया जाये पर इस कारण ऐसा उपबन्ध अनावश्यक हो गया कि इस संविधान में संविधानिक संशोधनों के लिये निर्धारित प्रक्रिया के बिना संशोधन करने के लिये अनेक अपवाद रख दिये गये हैं। समष्टि रूप से हम एक ऐसा संविधान बना सके हैं जो मेरा विश्वास है कि देश के लिये उपयुक्त सिद्ध होगा।

हमारे निदेशक सिद्धान्तों में एक विशिष्ट उपबन्ध है जिसको मैं बहुत महत्व देता हूं। हम ने केवल अपने लोगों की भलाई के लिए ही उपबन्ध नहीं बनाये हैं वरन् अपने निदेशक तत्वों में हमने यह निर्धारित किया है कि राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की उन्नति का, राष्ट्रों के बीच न्याय और सम्मान पूर्ण सम्बन्धों को बनाये रखने का, अन्तर्राष्ट्रीय विधि और सन्धि बन्धनों के प्रति आदर बढ़ाने का और अन्तर्राष्ट्रीय विवादों में मध्यस्थता द्वारा निबटारे के लिये प्रोत्साहन देने का प्रयास करेगा। संघर्षों से जर्जरित संसार में, एक ऐसे संसार में जो दो विश्व युद्धों के संहार के पश्चात् अब भी शान्ति और सद्भावना स्थापित करने के लिये शस्त्रीकरण में विश्वास कर रहा है, यदि हम राष्ट्रपिता की शिक्षाओं का सच्चे रूप में पालन करें और अपने संविधान के इस निदेशक तत्व पर चलें तो यह निश्चित है कि हम अवश्य ही एक महान् कार्य करने में सफल होंगे। इन कठिनाइयों के होते हुए भी जो हमें घेरे हुये हैं और एक ऐसे वातावरण के होते हुए भी जो हमारा मार्ग भली प्रकार रोक सकता है हे ईश्वर! तू हमें इस मार्ग पर चलने की सद्बुद्धि और शक्ति

है। हम स्वयं अपने में और उस स्वामी की शिक्षाओं में विश्वास रखें जिसका चित्र मेरे सर पर टंगा हुआ है और केवल अपने देश की ही नहीं वरन् इस सारे संसार की आशाओं को हम पूरा करेंगे और केवल अपने देश के ही नहीं वरन् सारे संसार के सर्वोत्तम हितों के प्रति हम सच्चे सिद्ध होंगे।

मैं उस आलोचना के प्रति कुछ नहीं कहना चाहता हूं जो विशेषकर मूलाधिकारों संबन्धी भाग में के उन अनुच्छेदों के सम्बन्ध में है जिन के द्वारा परमाधिकारों को कम कर दिया गया है और जो उन अनुच्छेदों के सम्बन्ध में है जो आपात शक्तियों के विषय में हैं। अन्य सदस्यों ने इन आपत्तियों पर विस्तारपूर्वक विचार प्रकट किया है। इस समय मुझे केवल यही कहना है कि देश की वर्तमान दशा और जो प्रवृत्तियां स्पष्ट दिखाई दे रही हैं उन्होंने इन उपबन्धों को आवश्यक बना दिया है और ये उपबन्ध अन्य देशों के अनुभव पर आधृत हैं जिनको उन देशों ने न्यायिक विनिश्चयों द्वारा प्रवृत्त किया, यद्यपि इन उपबन्धों की व्यवस्था उनके संविधान में नहीं थी।

ऐसी केवल दो खेद की बातें हैं जिनमें मुझे माननीय सदस्यों का साथ देना चाहिये। विधान मंडल के सदस्यों के लिये कुछ अर्हतायें निर्धारित करना मैं पसंद करता। यह बात असंगत है कि उन लोगों के लिये हम उच्च अर्हताओं का आग्रह करें जो प्रशासन करते हैं या विधि के प्रशासन में सहायता देते हैं और उनके लिये हम कोई अर्हता न रखें जो विधि का निर्माण करते हैं सिवा इसके कि उनका निर्वाचन हो। एक विधि बनाने वाले के लिये बौद्धिक उपकरण अपेक्षित हैं और इससे भी अधिक वस्तुस्थिति पर संतुलित विचार करने की सवतंत्रता पूर्वक कार्य करने की सामर्थ्य की आवश्यकता है और सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि जीवन के उन आधारभूत तत्वों के प्रति सच्चाई हो—एक शब्द में यह कहना चाहिये कि चरित्रबल हो। यह संभव नहीं है कि व्यक्ति के नैतिक गुणों को मापने के लिये कोई मापदण्ड तैयार किया जा सके और जब तक यह संभव नहीं होगा तब तक हमारा संविधान दोषपूर्ण रहेगा। दूसरा खेद इस बात पर है कि हम किसी भारतीय भाषा में स्वतंत्र भारत का अपना प्रथम संविधान नहीं बना सके। दोनों मामलों में कठिनाइयां व्यावहारिक थीं और अविजेय सिद्ध हुई। पर इस विचार से खेद में कोई कमी नहीं हो जाती है।

हमने एक लोकतन्त्रात्मक संविधान तैयार किया है। पर लोकतंत्रात्मक सिद्धान्तों के सफल क्रियाकरण के लिये उन लोगों में, जो इन सिद्धान्तों को कार्यान्वित करेंगे, अन्य लोगों के विचारों के सम्मान करने की तत्परता और समझौता करने तथा श्रेय देने के लिये सामर्थ्य आवश्यक है। बहुत सी बातें जो संविधान में नहीं लिखी जा सकती हैं अभिसमयों द्वारा की जाती हैं। मुझे यह आशा करने दीजिये कि हममें ये योग्यतायें होंगी

और इन अभिसमयों का हम विश्वास करेंगे। मतदान तथा सभाकक्षों (लौबी) में मत विभाजन की शरण लिये बिना जिस रीति से हम यह संविधान बना सके हैं वह इस आशा को प्रबल बनाती है।

यह संविधान किसी बात के लिये उपबन्ध करे या न करे, देश का कल्याण उस रीति पर निर्भर करेगा जिसके अनुसार देश का प्रशासन किया जायेगा। देश का कल्याण उन व्यक्तियों पर निर्भर करेगा जो देश पर प्रशासन करेंगे। यह एक पुरानी कहावत है कि देश जैसी सरकार के योग्य होता है वैसी ही सरकार उसे प्राप्त होती है।

हमारे संविधान में ऐसे उपबन्ध हैं जो किसी न किसी रूप में कुछ लोगों को आपत्तिजनक प्रतीत होते हैं। हमें यह मान लेना चाहिये कि दोष तो अधिकतर स्वयं देश की परिस्थिति और जनता में है। जिन व्यक्तियों का निर्वाचन किया जाता है यदि वह योग्य चरित्रवान और ईमानदार हैं तो वे एक दोषपूर्ण संविधान को भी सर्वोत्तम संविधान बना सकेंगे। यदि उनमें इन गुणों का अभाव होगा तो यह संविधान देश की सहायता नहीं कर सकेगा। आखिर संविधान एक यंत्र के समान एक निष्प्राण वस्तु ही तो है। उसके प्राण तो वे लोग हैं जो उस पर नियंत्रण रखते हैं और उस का प्रवर्तन करते हैं और देश को आज एक ऐसे ईमानदार लोगों के वर्ग से अधिक किसी अन्य वस्तु की आवश्यकता नहीं है जो अपने सामने देश के हित को रखें। हमारे जीवन में भिन्न-भिन्न तत्वों के कारण भेदमूलक प्रवृत्तियां पैदा हो जाती हैं। हममें साम्प्रदायिक भेद हैं, जातिगत भेद हैं, भाषा के आधार पर भेद हैं, प्रान्तीय भेद हैं और इसी प्रकार के अन्य भेद हैं। इसके लिये ऐसे दृढ़ चरित्र व्यक्तियों की, ऐसे दूरदर्शी लोगों की और ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता है जो छोटे-छोटे समूहों और क्षेत्रों के लिये पूरे देश के हितों का परित्याग न करें और जो इन भेदों से उत्पन्न हुए पक्षपात से परे हों। हम केवल यह आशा ही कर सकते हैं कि इस देश में ऐसे लोग बहुत मिलेंगे। स्वतंत्रता आन्दोलन के समय जो संघर्ष हमने किया था उसके अनुभव के आधार पर मैं यह कह सकता हूं कि नये अवसरों ने नये व्यक्तियों को जन्म दिया; केवल एक बार ही नहीं बल्कि प्रत्येक बार जबकि कांग्रेस के नेताओं को यकायक जेल में बन्द कर दिया गया और उनको इस बात का भी समय नहीं मिला कि वे दूसरों को कुछ हिदायतें दे जाते और अपना युद्ध जारी रखने की योजना बना जाते, जनता में से ऐसे व्यक्ति निकले जिन्होंने उन संघर्षों का इस योग्यता, सूझ और संगठन-शक्ति सहित चालन किया और उनको जारी रखा कि किसी भी व्यक्ति को यह आशा न थी कि उनमें ऐसे गुण होंगे। इस बात में मुझे सन्देह नहीं है कि जब देश को चरित्रवान व्यक्तियों की आवश्यकता होगी तो ऐसे व्यक्ति मिलेंगे और जनता ऐसे व्यक्तियों को पैदा करेगी। जो लोग पहिले से सेवा करते चले आ रहे हैं वे यह कहकर अपनी पतवार न डाल दें कि वे अपना सेवा-कार्य समाप्त कर चुके हैं और अब वह समय आ गया है कि वे अपने

श्रमलाभ का उपभोग करें। जो मनुष्य सच्चे हृदय से अपने कार्य में संलग्न रहता है उसके लिये ऐसा कोई समय नहीं आता है। मैं समझता हूं कि भारत वर्ष में आज जो कार्य हमारे सम्मुख है वह उस कार्य से भी अधिक कठिन है जो उस समय हमारे सम्मुख था जब कि हम संघर्ष में लगे हुए थे। उस समय हमारे सामने ऐसी कोई विरोधी मांगें नहीं थीं जिन में परस्पर मेल बिठाना हो, दाल रोटी का प्रश्न नहीं था और शक्तियों को बांटने की बात नहीं थी। इस समय हमारे सामने ये सब बातें हैं और बड़े-बड़े प्रलोभन भी हैं। ईश्वर करे इन प्रलोभनों से ऊपर उठने की और उस देश की सेवा करने की जिसको हमने आज़ाद किया है बुद्धि और शक्ति हममें हो।

अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये जिन साधनों को अपनाना होता है उनकी पवित्रता पर महात्मा गांधी ने ज़ोर दिया था। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि यह शिक्षा चिरस्थायी है और यह केवल संघर्ष काल के लिये ही नहीं थी वरन् आज भी इसका उतना ही प्राधिकार तथा मूल्य है जितना पहले था। यदि कोई लाभ मूलतः हो जाता है तो हमारी यह प्रवृति है कि हम दूसरों को दोष देते हैं परन्तु अन्तर्परीक्षण कर यह देखने का प्रयास नहीं करते कि हमारा दोष है या नहीं। यदि कोई व्यक्ति अपने कर्मों और उद्देश्यों का विवेचन करना चाहे तो दूसरों के कर्मों और उद्देश्यों को सही-सही जानने की अपेक्षा अपने कर्मों और उद्देश्यों का विवेचन करना बहुत सरल है। मैं यही आशा करूंगा कि वे सब लोग जिन को भविष्य में इस संविधान को कार्यान्वित करने का सौभाग्य प्राप्त होगा, यह याद रखेंगे कि वह एक असाधारण विजय थी जिसको हमने राष्ट्रपिता द्वारा सिखाई गई अनोखी रीति से प्राप्त किया था और जो स्वाधीनता हमने प्राप्त की है उसकी रक्षा करना और उसको बनाये रखना और जनसाधारण के लिये उसको उपयोगी बनाना उन पर ही निर्भर करता है। विश्वासपूर्वक सत्य तथा अहिंसा के आधार पर और सबसे अधिक यह कि हृदय में साहस धारण कर और ईश्वर में विश्वास कर हम अपने स्वाधीन गणराज्य के संचालन करने के इस नये कार्य में संलग्न हों।

समाप्त करने से पूर्व इस महान सभा के सब सदस्यों के प्रति मुझे अपनी कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिये जिन्होंने मेरे साथ केवल विनम्र व्यवहार ही नहीं किया बल्कि मैं यह कहूंगा कि उन्होंने सम्मानपूर्ण तथा प्रेमपूर्ण व्यवहार किया। इस कुर्सी पर बैठे-बैठे दिन प्रतिदिन की कार्रवाई देखते हुए मैंने जो अनुभव किया है वह कोई भी अन्य व्यक्ति नहीं कर सकता कि मसौदा समिति के सदस्यों ने और अपना स्वास्थ्य खराब होने पर भी उसके सभापति डा० अम्बेडकर ने कितने उत्साह और लगन के साथ कार्य किया है। हम कोई ऐसा विनिश्चय नहीं कर सकते थे जो कभी भी इतना ठीक हो सकता था जितना कि वह तब हुआ जबकि हम ने डा० अम्बेडकर को मसौदा समिति में सम्मिलित किया और उसका सभापति बनाया। उन्होंने अपने चुनाव को ही न्याययुक्त सिद्ध नहीं किया वरन् जो

कार्य उन्होंने किया है उसमें चार चांद लगा दिये हैं। इस सम्बन्ध में समिति के अन्य सदस्यों में परस्पर भेद विभेद करना अस्याजनक होगा। मैं जानता हूं कि उन सबों ने उतने ही साहस और उतनी ही लगन के साथ कार्य किया जितना उसके सभापति ने और वे देश की कृतज्ञता के पात्र हैं।

यदि आप मुझे अनुज्ञा दें तो मैं अपनी ओर से तथा इस सभा की ओर से भी अपने सांविधानिक परामर्शदाता श्री बी० एन० राउ को धन्यवाद दूं जिन्होंने उस सारे समय में जबकि वे यहां रहे अवैतनिक रूप में कार्य किया और अपने उच्च ज्ञान से इस सभा को ही सहायता न दी वरन् अन्य सदस्यों को भी वह सामग्री दे कर, जिसके आधार पर वे कार्य कर सकते थे, पूर्ण रूप से योग्यतापूर्वक अपने कर्तव्य पालन करने में उनको सहायता दी। इस कार्य में उनको अनुसंधानकों तथा अन्य कर्मचारियों ने सहायता दी जिन्होंने उत्साह और लग्न के साथ कार्य किया। श्री एस० एन० मुकर्जी की प्रशंसा सही की गई है जिन्होंने मसौदा समिति की बहुत ही अमूल्य सहायता की।

28

अन्तरिम राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचित होने पर*

मैं इसे स्वीकार करता हूं कि यह एक पवित्र अवसर है। बहुत काल तक संग्राम करने के पश्चात् हम ने एक मंजिल तय की है और अब हम दूसरी मंजिल की ओर बढ़ने जा रहे हैं। आप ने कृपा कर के मुझे बहुत बड़ी जिम्मेदारी सौंपी है। मेरा हमेशा यही विचार रहा है कि बधाई उस अवसर पर नहीं दी जानी चाहिये जब कोई व्यक्ति किसी पद पर नियुक्त किया जाता है बल्कि उस अवसर पर दी जानी चाहिये जब वह अपनी सेवा से निवृत होता है। मैं उस समय तक प्रतीक्षा करूंगा जब कि आपने मुझे जो काम सौंपा है उस से मैं निवृत हो जाऊंगा और इस पर विचार कर सकूंगा कि सभी ओर से तथा सभी मित्रों द्वारा मेरा जिस प्रकार विश्वास किया गया और मेरे प्रति जिस प्रकार सद्भावना दिखाई गई उस के योग्य मैं रहा या नहीं रहा। इस प्रशंसापूर्ण भाषणों में मैंने सीमित करने का प्रयास किया है किन्तु फिर भी मुझे उन्हें सुनना ही पड़ा और उन्हें सुनते हुए मुझे महाभारत के एक कथानक का स्मरण हो आया। उस ग्रन्थ मे बहुत ही विषम स्थितियों का तथा उन के फलस्वरूप जो जटिल समस्याएं उठ खड़ी होती हैं और श्री कृष्ण उन्हें किस प्रकार हल करते हैं उसका वर्णन है। एक दिन अर्जुन ने यह प्रण किया कि सूर्यास्त के पूर्व मैं अमुक कार्य समाप्त कर दूंगा और यदि समाप्त न कर पाया तो चिता जला कर भस्म हो जाऊंगा। दुर्भाग्य से वे उसे पूरा नहीं कर सके। तब प्रश्न यह उठा कि क्या किया जाये। अपना प्रण पूरा करने के लिये उन्हें भस्म हो जाना चाहिये था किन्तु पांडव यह कैसे होने देते। साथ ही अर्जुन भी अपने प्रण पर अटल थे। श्री कृष्ण ने यह कह कर यह समस्या हल की थी "यदि आप बैठ कर अपनी प्रशंसा करें, अथवा अन्य लोगों से अपनी प्रशंसा सुनें तो वह आत्मघात करने और भस्म होने के समान ही है। इसलिये आप ऐसा ही करें और आप का प्रण पूरा हो जायेगा।" प्रायः इसी भावना से मैंने इसी प्रकार के भाषणों को सुना है। मैंने यह अनुभव किया है कि मैं कई बातों को पूरा नहीं कर सका हूं और कई कार्यों को नहीं कर सका हूं और यह भी विचार किया है कि उन्हें पूरा

---

* संविधान सभा वाद विवाद (खण्ड XII); 24 जनवरी, 1950.

करने का एक उपाय यह है कि इस प्रकार का आत्मघात कर लिया जाये। किन्तु यहां स्थिति भिन्न है। जब हमारे प्रधान मंत्री अथवा उपप्रधान मंत्री मेरे संबंध में भावना से कुछ कहते हैं तो मेरे लिये भी अपनी भावना का परिचय देना आवश्यक हो जाता है। हम पच्चीस वर्ष से अधिक काल तक बढ़ी घनिष्टता से एक साथ रहे हैं और हम ने एक साथ कार्य किया है और संघर्ष किया है। हम कभी विचलित नहीं हुए और साथ ही सफल भी हुए हैं। आज मैं एक आसन पर बैठा हूं तो वे भी मेरे निकट ही अन्य आसनों पर बैठे हुए हैं तथा अन्य मित्र, जिन के साथ संबंध रहने का मुझे उतना ही गर्व है उन के निकट बैठेंगे और मेरी सहायता करते रहेंगे। जब मैं यह विचार करता हूं कि मुझे इस सभा के सभी सदस्यों तथा इस सभा के बाहर अनेक मित्रों की सद्भावना प्राप्त है तो मुझे विश्वास होता है कि जो कर्तव्य मुझे सौंपा गया है उसे मैं संतोषजनक ढंग से पूरा कर सकूंगा—इस कारण नहीं कि मैं उसे पूरा करने में समर्थ हूं बल्कि इस कारण कि सभी लोगों के प्रयत्नों के फलस्वरूप वह पूरा हो जायेगा।

इस समय देश को कई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है और मेरी यह धारणा है कि अब हमें जो कार्य करना है वह उस कार्य से भिन्न है जो हम दो वर्ष से करते आये हैं। उस के लिये अधिक लगन, अधिक सावधानी, अधिक तन्मयता और अधिक बलिदान की आवश्यकता है। मुझे आशा है कि देश ऐसे स्त्री पुरुषों को प्रतिनिधि बना कर भेजेगा जो कर्तव्य भार उठा सकेंगे और लोगों की ऊंची से ऊंची आकांक्षाओं को पूरा कर सकेंगे। इस के लिये ईश्वर हमें शक्ति दे।

29

संसद सदस्यों के समक्ष प्रथम अभिभाषण*

माननीय संसद सदस्यों देश के संविधान के अनुसार भारत गणतंत्र की निर्वाचित प्रथम संसद के सदस्यों के रूप में आपका मैं आज स्वागत करता हूं। अब हमने देश में विधानमण्डलों के गठन और राष्ट्राध्यक्ष से सम्बन्धित संविधान के उपबंधों को पूर्ण रूप से लागू कर लिया है तथा इस प्रकार अपनी यात्रा का एक पड़ाव पूरा कर लिया है। किन्तु एक मंजिल को पूरा करते ही हम दूसरी की ओर बढ़ना आरम्भ कर देते हैं। विशेषरूप से एक देश अथवा राष्ट्र की यात्रा में कोई विश्राम स्थल नहीं होता और उसे निरन्तर आगे बढ़ना होता है। हमारे देश के 17 करोड़ से भी अधिक लोगों द्वारा संसद सदस्यों के रूप में हाल ही चुने गये आप सभी तीर्थयात्री हो जिन्हें अपनी यात्रा इन्हीं लोगों के साथ मिलकर पूरी करनी है। आपको यह भी याद रखना है कि आपको जो विशेषाधिकार मिले हैं उनके साथ भारी जिम्मेदारियां जुड़ी हैं।

इस ऐतिहासिक अवसर पर बोलते हुए मैं इस भावना से ओत-प्रोत हूं कि इस प्राचीन भारत-भूमि और इसमें रह रहे असंख्य पुरुषों एवं महिलाओं के पुण्य भाग्य का अब उदय हुआ है। भाग्योदय एक प्रकार का आह्वान है और यह हमारे ऊपर है कि हम उसका प्रत्युत्तर कितनी अच्छी प्रकार देते हैं। यह आह्वान उस महान भारत भूमि की सेवा के लिए है जिसने हजारों वर्ष पुराने अपने इतिहास में अनेक बार उतार-चढ़ाव, अच्छे-बुरे दिन देखे हैं। अब हम भारत की इस लम्बी यात्रा के दूसरे चरण में प्रवेश कर रहे हैं। इसीलिए हमें नये सिरे से यह तय करना है कि हम अपने देश की बेहतर सेवा किस तरह से कर सकते हैं। आपने और मैंने हम सभी ने देश की सेवा करने के लिए शपथ ली है। भगवान करे कि हम अपनी शपथ के प्रति सच्चे रहें तथा इसको पूरा करने के लिए भरसक प्रयास करें।

भारत ने लम्बे समय की गुलामी के बाद स्वतंत्रता प्राप्त की है। इस स्वतंत्रता की हर कीमत पर सुरक्षित रखना है, कायम रखना है और इसका विस्तार करते रहना है, क्योंकि केवल इसी स्वतंत्रता के रहते ही कोई भी प्रगति की जा सकती है। परन्तु स्वतंत्रता अपने

*संसदीय वाद-विवाद (लोक सभा) खण्ड I, 16 मई, 1952

आप में ही पर्याप्त नहीं है - इससे हमारे लोगों के कष्ट कम होने चाहिए ताकि वे प्रसन्नता का अनुभव कर सकें। इसलिए हमारे लिए यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि हम अपने देशवासियों के तीव्र गति के आर्थिक विकास के लिए परिश्रम करें और उन्हें संविधान के अनुसार समानता के अवसर तथा सामाजिक एवं आर्थिक न्याय प्रदान करने के प्रयास करें।

भारत का सम्पूर्ण इतिहास इस बात का साक्षी है कि यहां मनुष्यों के रूप में कुछ उदान्त आत्माएं भी प्रकट होती रही हैं। शायद, यह भारत की एक ऐसी विशेषता रही है जिससे उसकी अलग पहचान बनती है और हाल के वर्षों में भी हमने भारत में महात्मा गांधी के रूप में एक ऐसी ही आदर्श जीवात्मा के दर्शन किये हैं, जिन्होंने हमें स्वतंत्रता दिलाई है। उनके लिए राजनीतिक स्वतंत्रता अत्यधिक महत्वपूर्ण तो थी परन्तु उनके लिए यह मनुष्यों की सर्वांगीण स्वतंत्रता की दिशा में एक कदम था। उन्होंने हमें केवल शांति और अहिंसा का पाठ पढ़ाया लेकिन श्मशान वाली शांति अथवा डरपोक वाली अहिंसा नहीं। उन्होंने भारत के आदि ऋषियों और महापुरुषों के उपदेश के अनुसार ही हमें यह सिखाया कि घृणा और हिंसा से महान लक्ष्य प्राप्त नहीं किये जाते हैं तथा सही लक्ष्य सही तरीके से ही प्राप्त किए जा सकते हैं। यह एक ऐसा मूल पाठ है जो न केवल भारत के लोगों के लिए है बल्कि सम्पूर्ण विश्व के लोगों के लिए है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि अपने समक्ष आने वाली बड़ी से बड़ी चुनौतियों के समय आप भारत के इस प्राचीन और नित्य नये संदेश को याद रखेंगे तथा राष्ट्र और सम्पूर्ण मानवता के हितों को अपने शुद्र लक्ष्यों से ऊपर उठकर संयुक्त प्रयास करेंगे। हमें भारत की एकता तथा खुशहाली के लिए और इस कार्य में जुटे स्वतंत्र देश के लोगों की एकता को बनाये रखने के लिए कार्य करना है। इसलिए हमें उन सभी प्रवृत्तियों को नष्ट करना है जो इस एकता को कमजोर करती हैं और हमारे बीच साम्प्रदायिकता प्रान्तीयता और जातिवाद की बाधाएं खड़ी करती हैं। राजनीतिक एवं आर्थिक मामलों में मतभेद हो सकते हैं तथा होने भी चाहिएं, परन्तु यदि भारत और भारतवासियों की भलाई ही सर्वाधिक चाहते हैं, जैसा कि हमें करना चाहिए, तो ऐसा शांतिपूर्ण सहयोग और लोकतांत्रिक प्रक्रिया द्वारा ही किया जा सकता है। तब ये मतभेद हमारे जन जीवन को और अधिक समृद्ध बनाने में सहायक सिद्ध होंगे।

मैं चाहता हूं कि आप इस दृष्टिकोण से देश की समस्याओं का सामना करें तथा विश्व

को मैत्रीपूर्ण नजर से तथा निडर होकर देखें। सन्निकट संकट का भय विश्व पर छाया हुआ है। कोई भी व्यक्ति अथवा राष्ट्र भयभीय होकर विकास नहीं कर सकता, बल्कि वह अभय होकर विकास करता है जैसा कि हमारे पुरातन ग्रन्थों में बताया गया है।

हमने विश्व के सभी राष्ट्रों के साथ हमेशा दोस्ती की नीति अपनाई है और हालांकि इस नीति को कभी-कभी गलत भी समझा गया है, किन्तु धीरे-धीरे अन्य देश इसे सराहते जा रहे हैं तथा इसके अच्छे परिणाम सामने आ रहे हैं। मुझे विश्वास है कि हम इस नीति का दृढ़ता पूर्वक अनुसरण करते रहेंगे और इस तरह विश्व के कई भागों में व्याप्त तनाव को कुछ सीमा तक दूर करने के लिए कोशिश करेंगे। मेरी सरकार अन्य देशों के मामलों में हस्तक्षेप नहीं करती है और इसीलिए हम यह नहीं चाहते कि कोई अन्य देश हमारे देश के मामलों में हस्तक्षेप करे। हमने यथासम्भव सहयोग का तरीका अपनाया है और शांति स्थापना के लिए हम मध्यस्थता करने के लिए हमेशा तैयार हैं। हम किसी पर भी अपनी इच्छा थोपना नहीं चाहते। हम यह महसूस करते हैं कि आज विश्व में कोई भी देश अलग-अलग नहीं रह सकता है और भविष्य में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग तब तक बढ़ते जाना चाहिए जब तक विश्व के सभी राष्ट्र सम्पूर्ण मानवता के विकास के लिए संयुक्त प्रयास न करने लग जायें।

लगभग एक वर्ष से कोरिया में शांति स्थापित करने के लिए प्रयास किये जा रहे हैं जिनसे सदूर-पूर्व एशिया क्षेत्र की अनेक समस्याओं का शांतिपूर्ण समाधान हो सके। मैंने अनेक बार यह आशा व्यक्त की है कि ये प्रयास सफल होंगे और शांति फिर कायम होगी। यह अत्यधिक दुखद बात है कि कोरियाई लोगों के लिए सद्भाव व्यक्त किये जाने के बावजूद यह प्राचीन देश युद्ध, भुखमरी और महामारी के कारण पूर्णतः नष्ट हो गया है। यह विश्व के लिए एक संकेत और चेतावनी है कि युद्ध का अर्थ क्या होता है चाहे इसे उचित ठहराने के लिए कोई भी तर्क क्यों न दिया जाये। युद्ध समस्याओं का समाधान नहीं करता है बल्कि समस्याएं पैदा करता है। अब यह लगता है कि कोरिया में शांति के रास्ते में आने वाली अधिकांश बाधाएं दूर हो गई हैं और एक जो बड़ी बाधा रह गई है वह है कैदियों की अदला-बदली। इस अन्तिम बाधा को दूर करना भी बुद्धिमान राजनेताओं के लिए मुश्किल नहीं है। ऐसा न होने पर हमें न केवल यह स्वीकार करना होगा कि हमारी बुद्धि का दिवाला निकल गया है बल्कि यह भी स्वीकार करना होगा कि मानवता अपना दायित्व पूरा करने में विफल हो गई है। विश्व शांति के लिए बहुत ही उत्सुक है जो राजनीतिज्ञ शांति लाने में सफल हो जायेंगे, वे ऐसा करके भय और आतंक से ग्रस्त विश्व के लाखों लोगों को राहत पहुंचायेंगे।

मैंने पहले भी कई अवसरों पर उल्लेख किया है कि एशिया और अफ्रीका के विभिन्न

अभी तक परतंत्र देशों में एक राष्ट्रवादी लहर उठी हुई है। विशेष रूप से, मैंने ट्यूनिशिया में हाल में घटी घटनाओं का उल्लेख किया है तथा उस देश के लोगों की स्वतंत्रता प्राप्त करने की इच्छा के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की है। मुझे भारी दुख है कि एशिया और अफ्रीका में अनेक देशों की ऐसी इच्छा के बावजूद संयुक्त राष्ट्र संघ में इस विषय पर चर्चा की अनुमति तक नहीं दी गई। संयुक्त राष्ट्र संगठन पूरे विश्व के सभी देशों की प्रतिनिधि संस्था है और इसका मुख्य उद्देश्य शान्ति बनाए रखना है। संयुक्त राष्ट्र संघ के संस्थापकों के महान उद्देश्य तथा इनके द्वारा तैयार किया गया घोषणा पत्र धीरे-धीरे धूमिल होता जा रहा है। व्यापक दृष्टिकोण अति सीमित होता जा रहा है। जब विश्व बंधुत्व की भावना संकीर्ण हो जाती है तब शांति की चाह सचमुच कमजोर पड़ जाती है। संयुक्त राष्ट्र संगठन की स्थापना, मानवता की मूल इच्छा को पूरा करने के लिए हुई थी। यदि वह इस उत्कृष्ट इच्छा को पूरा करने में असमर्थ रहता है तथा शांति बनाए रखने और परतंत्र देशों को स्वतंत्रता दिलाने में सक्रिय भूमिका अदा नहीं करता है तो यह वास्तव में एक दुखद बात है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह महान संगठन जिस पर विश्व की आशाएं टिकी हैं, अपने मूल उद्देश्यों को पूरा करेगा तथा शांति और स्वतंत्रता का एक ऐसा आधार स्तम्भ बन जायेगा, जैसा इसे वास्तव में होना चाहिए था।

मेरी सरकार ने अपने एक बड़े पड़ोसी देश, चीन को एक सांस्कृतिक शिष्टमंडल भेजा है। यह शिष्टमंडल चीन के लोगों के लिए भारत के लोगों की शुभकामनाएं और सद्भावना का संदेश ले कर गया है। मैं उस हार्दिक स्वागत के लिए अपना आभार व्यक्त करना चाहूंगा, जो इस शिष्टमंडल को चीन की सरकार और वहां के लोगों से मिला है।

मुझे अत्यधिक खेद है कि दक्षिण अफ्रीका संघ सरकार की रंगभेद की नीति अभी तक जारी है और इसके गम्भीर परिणाम निकले हैं। हमारे लोग इस नीति से बहुत ही चिंतित हैं क्योंकि दक्षिण अफ्रीका में भारतीय मूल के बहुत से लोग रह रहे हैं। लेकिन अब यह प्रश्न दक्षिण अफ्रीका में रह रहे केवल भारतीय लोगों का ही नहीं है बल्कि इससे कहीं अधिक विस्तृत और व्यापक महत्व का बन गया है। यह प्रश्न एक जाति के शासक होने और दूसरी जाति के शासित बने रहने का प्रश्न है। यह दक्षिण अफ्रीका में रह रहे भारतीय लोगों से कहीं ज्यादा अफ्रीका के लोगों के भविष्य का प्रश्न है। इस ओर इसी तरह के अन्य प्रश्नों का समाधान करने में विलम्ब करने से पूरी मानवता के लिए खतरा उत्पन्न हो जायेगा। मुझे खुशी है कि सम्पूर्ण अफ्रीका महाद्वीप में अफ्रीका के लोगों तथा वहां रह रहे भारतीयों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों का विकास हुआ है। अफ्रीकी देशों के विकास में किसी भी प्रकार से हस्तक्षेप करने की हमारी इच्छा नहीं है बल्कि हम उनकी अपनी क्षमता के

अनुसार अधिक से अधिक मदद करना चाहते हैं। मुझे दुख है कि श्रीलंका में लम्बे समय से रह रहे अनेक भारतीय लोगों को उनके मताधिकार से वंचित कर दिया गया है जबकि ये उस देश के वैसे ही नागरिक हैं जैसे कि वहां के अन्य वासी हैं। श्रीलंका के साथ हमारे संबंध हजारों वर्ष पुराने हैं और श्रीलंका तथा उसके लोगों के साथ हमारे संबंध मैत्रीपूर्ण रहे हैं। हमने उस देश की स्वतंत्रता का स्वागत किया तथा आशा की थी कि वहां के लोग स्वतंत्रता के बाद हर क्षेत्र में प्रगति करेंगे। परन्तु असंख्य नागरिकों को उनके नैसर्गिक अधिकारों से वंचित करके वास्तविक प्रगति नहीं की जा सकती। इससे पहले की ही भांति गंभीर समस्यायें और जटिलताएं पैदा होंगी।

गत कई वर्षों तक हमने खाद्यान की कमी का सामना किया है और हमें भारी मात्रा में खाद्यान्नों का आयात करना पड़ा है। इस संकट के दौरान हमें संयुक्त राज्य अमेरिका से काफी मदद मिली और उस देश के प्रति इस उदार सहायता के लिए आभार व्यक्त करते हैं। हाल के वर्षों में यह पहली बार है जब कि हमारे पास खाद्यान्नों का (चावल के अलावा) विशाल भंडार है तथा सुरक्षित भंडार में भी हम खाद्यान्न की मात्रा बढ़ा रहे हैं जिससे भविष्य में जरूरत पड़ने पर वह काम आ सके। यह व्यवस्था स्वागत योग्य है। हमारे देश के अधिकांश भागों में वर्षा न होने से लोगों के लिए एक कठिन स्थिति उत्पन्न हो गई है। निरंतर पांच वर्षों से रायलसीमा क्षेत्र में सूखे के संकट का सामना करना पड़ रहा है और आज उस क्षेत्र की सबसे बड़ी आवश्यकता जल की है। हमारी सेना कुएं खोदकर, जल सप्लाई करके तथा अन्य तरीकों से सामान्य नागरिकों की मदद के लिए महत्वपूर्ण कार्य कर रही है। सूखे और अभाव से ग्रस्त बड़े क्षेत्र में कार्य देने के लिए अनेक लघु परियोजनाएं शुरू की गयी हैं और वहां सस्ते दर पर खाद्यान्न बेचने के लिए दुकाने खोल दी गई हैं। जहां कहीं भी आवश्यक होता है भोजन मुफ्त भी दिया जाता है।

आयातित खाद्यान्नों पर आई अधिक लागत के कारण इनकी कीमतों में वृद्धि हुई है। खाद्यान्न पर दी जाने वाली राजसहायता के कम होने से इन मूल्यों में कुछ हद तक वृद्धि हुई है और इससे राशन वाले क्षेत्रों में दिक्कत और असंतोष पैदा हुआ है। हां, मूल्यों में आई आम गिरावट से लोगों को थोड़ी राहत मिली है। खाद्यान्न पर प्राप्त राजसहायता में कमी हो जाने से विभिन्न राज्य सरकारें अपने राज्यों की आयातित खाद्यान्नों की वास्तविक आवश्यकता का ठीक मूल्यांकन करने के लिए मजबूर हो गई और विभिन्न राज्यों से खाद्यान्नों की मांग कम हो गई तथा परिणामतः खाद्यान्नों का आयात भी कम हो गया। यह बचत न केवल इस वर्ष बल्कि भविष्य के लिए भी लाभप्रद सिद्ध होगी।

खाद्य पदार्थों पर दी जाने वाली राज सहायता से बची हुई धनराशि को छोटी सिंचाई योजनाओं को वित्तीय सहायता देने में लगाया गया है, जिससे भविष्य में अधिक खाद्यान्न

पैदा होगा और इससे हमारी खाद्य-समस्या के समाधान में सहायता मिलेगी। मेरी सरकार इन मामलों पर पूरा ध्यान दे रही है। इसे भी सरकार को देखना है कि वर्तमान में जिनसे लाभ मिले उनका लाभ भविष्य में भी मिले। इसके साथ ही सरकार को इस बात की भी चिंता है कि कोई परेशानी पैदा न हो और सरकार परेशानी से बचने के लिए वे सभी कदम उठाएगी जो इसके क्षेत्राधिकार में हैं।

योजना आयोग द्वारा पंचवर्षीय योजना पर अपनी रिपोर्ट को अंतिम रूप दिया जा रहा है। देश भर में 55 सामुदायिक योजनाएं प्रारम्भ करने के एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव को इस योजना में शामिल किया गया है। संयुक्त राज्य अमेरिका की तकनीकी सहयोग योजना के माध्यम से मिली सहायता से यह संभव हो सका है। इन सामुदायिक योजनाओं का उद्देश्य केवल हमारे खाद्यान्नों की पैदावार बढ़ाना ही नहीं है, बल्कि पूरे समुदाय के जीवन स्तर को ऊंचा उठाना है जो और भी अधिक महत्वपूर्ण है। ऐसी आशा की जाती है कि यह कार्यक्रम आगे बढ़ेगा और देश के अधिकांश भाग को इसका लाभ मिलेगा। परन्तु यह तभी आगे बढ़ सकता है जब इसे जनता का पूरा सहयोग प्राप्त होगा और मुझे पूरा विश्वास है कि जिस प्रकार योजना आयोग के अन्य प्रस्तावों को लागू करने में उनका सहयोग मिला है, उसी प्रकार इस मामले में भी उनका पूरा सहयोग प्राप्त होगा।

कृषि-उत्पादन संबंधी समेकित कार्यक्रम को सन्तोषप्रद सफलता मिली है। पटसन उत्पादन में समुचित वृद्धि हुई है, जो कि 1947-48 में 16.6 लाख गांठ था जबकि 1951-52 में बढ़कर 46.8 लाख गांठें हो गया है। इसी अवधि में कपास का उत्पादन 24 लाख गांठ से बढ़कर 33 लाख गांठ हो गया। खाद्यान्न के उत्पादन में 14 लाख टन की वृद्धि हुई, यद्यपि कुछ क्षेत्रों में सूखे के कारण इसका उत्पादन कम रहा है। चीनी का उत्पादन 1947-48 में 10.75 लाख टन था, जो कि 1951-52 में बढ़कर 13.5 लाख टन हो गया। इस्पात, कोयला, सीमेंट और नमक के उत्पादन में भी वृद्धि हुई है। भारत अब नमक के उत्पादन में आत्मनिर्भर हो गया है और वह फालतू नमक का निर्यात कर सकता है। सौराष्ट्र में एक केन्द्रीय नमक अनुसंधान केन्द्र की स्थापना की जा रही है।

मेरी सरकार द्वारा देश की सामान्य आर्थिक स्थिति पर सतत नजर रखी जा रही है। संसद के अपने पिछले भाषण में मैंने थोक मूल्यों में थोड़ी सी गिरावट का उल्लेख किया था। फरवरी और मार्च के महीनों में मूल्यों में थोड़ी वृद्धि हुई है। आंशिक रूप से ऐसा विश्व भर में मूल्यों के पुनर्समायोजन की उस प्रक्रिया के कारण हुआ, जो 1950 में शुरू हुई थी, परन्तु कोरिया युद्ध छिड़ जाने के कारण इसको धक्का लगा। कोरिया में युद्ध विराम की संभावना दिखाई देने पर पुनर्समायोजना की प्रक्रिया को बल मिला। देश में माल के उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ ऊंची कीमतों के प्रति लोगों के बढ़ते हुए विरोध के कारण इसे सहायता मिली। मेरी सरकार की वित्तीय और ऋण नीति मुद्रास्फीति रोकने के लिए

प्रारम्भ की गई है और इससे भी कीमतों में कमी आई है। कीमतों के स्तर में तेजी से गिरावट के कारण व्यापार और उद्योग में, विशेषकर वस्त्रोद्योग में लगे लोगों के लिए परेशानी हुई है। इससे निर्यात से होने वाली हमारी आय में भी कमी आएगी। मेरी सरकार यह सुनिश्चित करने के लिए स्थिति पर पूरी नजर रखे हुए है कि उत्पादन और रोजगार इससे प्रभावित न हो। उनका इरादा एक उचित स्तर पर मूल्यों के स्थिरीकरण के लिए आवश्यक कदम उठाने का है।

मुझे प्रसन्नता है कि एक नया मंत्रालय, उत्पादन मंत्रालय बनाया गया है। राज्य के स्वामित्व वाले उद्योगों द्वारा किए जाने वाले उत्पादन का काफी महत्व है और इस उद्देश्य से नये मंत्रालय का गठन इस बात का सूचक है कि इस ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

सरकार द्वारा गत वर्ष संसद को एक आश्वासन दिया गया था कि प्रेस से संबंधित अनेक मामलों पर विचार करने के लिए एक प्रेस आयोग नियुक्त किया जाएगा। मेरी सरकार को निकट भविष्य में ऐसा आयोग नियुक्त किए जाने की आशा है। प्रेस विधि जांच समिति की सिफारिशों के आधार पर संसद के समक्ष एक विधेयक लाने का भी प्रस्ताव है।

संसद का यह अधिवेशन मुख्य रूप से बजट से संबंधित होगा और संभवतः दूसरे कानूनों पर विचार करने के लिए अधिक समय नहीं होगा। आपके समक्ष वित्तीय वर्ष 1952-53 के लिए भारत सरकार की अनुमानित आय और व्यय का विवरण रखा जाएगा। लोक सभा के सदस्य अनुदानों की मांगों पर विचार करेंगे तथा इन्हें पारित करेंगे।

अन्तरिम संसद के अन्तिम सत्र के बाद सौराष्ट्र (स्थानीय समुद्र सीमा शुल्क का उत्सादन) के निरसन तथा पत्तन विकास शुल्क लगाने संबंधी अध्यादेश का जारी करना आवश्यक हो गया था। इस अध्यादेश को नये विधेयक के रूप में आपके समक्ष विचारार्थ और पारित करने के लिए लाया जाएगा। दूसरा अध्यादेश, विस्थापितों (दावे) से संबंधित अधिनियम 1950 के विस्तारण के लिए जारी किया गया था। इस अध्यादेश के स्थान पर भी एक विधेयक आपके समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा।

अन्तरिम संसद में पुरःस्थापित अनेक विधेयक व्यपगत हो गए हैं। जब भी समय मिलेगा इनमें से कुछ को आपके सामने लाया जाएगा। निवारक नजरबन्दी से संबंधित एक विधेयक भी संसद में लाने का प्रस्ताव है।

वैधानिक उपायों में से एक था हिन्दू कोड बिल जिस पर अन्तरिम संसद में व्यापक चर्चा हुई थी। इसे पारित नहीं किया जा सका और अन्य लम्बित विधेयकों के साथ व्यपगत हो गया। मेरी सरकार का विचार है कि इस विषय पर नया कानून बनाया जाए।

इस विधेयक को कुछ हिस्सों में बांट कर, प्रत्येक हिस्से को अलग-अलग रूप में संसद के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रस्ताव है, जिससे इस पर चर्चा करने तथा इसे पारित करने में सुविधा हो सके।

मैंने आपकी संसद् के इस सत्र के समक्ष लाए जाने वाले कुछ कार्यों (विधेयकों) के बारे में बताने का प्रयत्न किया है। मुझे विश्वास है कि आपके द्वारा लोगों की भलाई के लिए किए गए श्रम का लोगों को अवश्य फल मिलेगा और भारतीय लोकतांत्रिक गणतंत्र की यह नयी संसद मित्रवत् सहयोग और कुशल कार्यकरण का एक उदाहरण प्रस्तुत करेगी। आपकी सफलता, आपकी गतिविधियों को नियंत्रित करने वाली सहनशीलता की भावना तथा आपके प्रयत्नों को प्रेरित करने वाले विवेक पर निर्भर करेगी। इसलिए मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह विवेक और सहनशीलता की भावना आप में सदैव विद्यमान रहेगी।

C O R R I G E N D A

Page	Para	Line	For	Read
20	3	3	that I cannot move	I cannot move
64	3	8	al	all
66	3	11	provide	provides
76	3	6	beings	brings
79	2	9	delignted	delighted
154	2	5	They	There
158	1	6	more of less	more or less
161	1	8	as	us
162	2	7	intiating	initiating
162	2	16	provisioncial	provincial
168	3	16	tissiparous	fissiparous